१०० वर्ष निरोगी रहिए

लेखक : माणेकलाल म. पटेल

गाला पब्लिशर्स

मंगल कामनाएँ व्यक्त करने का श्रेष्ठ तरीका

यह पुस्तक उपहार-स्वरूप दीजिए।

१००

वर्ष निरोगी रहिए

लेखक

माणेकलाल म. पटेल

समाज से सविनय अनुरोध है कि :

जन्मदिन, विवाह या अन्य किसी शुभ प्रसग पर आप अपने इष्ट मित्रो, स्नेहीजनो तथा रिश्तेदारो को जो भी चीज-वस्तुएँ प्रदान करते है वे सभी प्राय नाशवान् होती है। वास्तव में प्रस्तुत पुस्तक उपहार-स्वरूप देकर मानो आप अपने आत्मीय जनो को दीर्घायुष्य ही उपहार मे देते है। इस पुस्तक का उपहार निस्सन्देह आपको शुभेच्छाओ को सार्थक एव साकार करेगा।

१०० वर्ष निरोगी रहिए

[मूल गुजराती से अनूदित हिन्दी आवृत्ति]

: लेखक :

माणेकलाल म. पटेल

: अनुवादक :

प्रा. भगवानदास जैन

मूल्य : रु. १४.००

गाला पब्लिशर्स

सरस्वती भवन * नवनीत भवन
सुखरामनगर के पीछे, गोमतीपुर, * भवानीशंकर रोड, शारदाश्रम,
अहमदाबाद-३८० ०२१. * दादर, बम्बई-४०००२८.
दूरभाप : ३६ ५७१९ * दूरभाप : ४३० ७२ ८६

धनलाल ब्रदर्स

७०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई-४०० ००२.
दूरभाप : २५ ३७ १६/३१ ७० २७

गाला पब्लिशर्स

नवनीत प्रकाशन केन्द्र

विकास प्रकाशन

नवनीत बुक पब्लिकेशन्स प्रा. लि.

१. शारदाश्रम के पास, भवानीशंकर रोड, दादर, बम्बई–४०००२८. फोन : ४३०७२८६
२. सुखरामनगर के पीछे, गोमतीपुर, अहमदाबाद–३८००२१. फोन : ३६५७१६
३. ३८३, शनिवार पेठ, कन्याशाला के सामने, पुणे–४११०३०. फोन : ४४६४९८
४. अग्रवाल निवास, टेकडी रोड, सीताबर्डी, नागपुर–४४००१२. फ़ोन : २६०३५
५. गाला भवन, ३०, श्रीरामनगर, नोर्थस्ट्रीट, अल्वारपेट, मद्रास–६०००१८.
६. मेसर्स ज्ञानभारती (प्रमुख वितरक) १७१-ए, महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता–७००००७. फोन : ३३७८२७.
७. धनलाल ब्रदर्स, ७०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई–४००००२. फोन : २५३७१६/३१७०२७

नये संस्करण के अवसर पर .....

प्रस्तुत ग्रन्थ मूलतः गुजराती में लिखित ग्रन्थ का हिन्दी संस्करण है। एक वर्ष के अल्प समय में प्रथम संस्करण का हाथोंहाथ बिक जाना ग्रन्थ की उपयोगिता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

पुस्तक को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के कार्य में श्री धनजी भाई आर. गाला ने हमें अपने जो अनुभवसिद्ध सुझाव दिये हैं, इसके लिए हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

प्रथम संस्करण का पाठकों ने हृदयपूर्वक स्वागत किया है। लगता है, हमारे समाज में आरोग्यविषयक प्रश्नों की जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। लोग खर्चीली चिकित्सा-पद्धति, दवादारू, इंजेक्शन, ऑपरेशन आदि से परेशान हो चुके हैं। इसीलिए स्वास्थ्य और आरोग्य से सम्बन्धित इस प्रकार के ग्रंथों का स्वागत कर रहे हैं।

यह ग्रन्थ वार्धक्य की सीमा पर पहुँचे हुए व्यक्तियों को लक्ष्य में रखकर लिखा गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में आहार-विहार, श्रम, कसरत-व्यायाम आदि विषयों पर एवं 'आग लगने के पूर्व कुआँ खोदने' वाली कहावत चरितार्थ करने के लिए रोग होने के पूर्व ही सतर्कता बरतने के लिए आवश्यक और उपयोगी नियमों पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है।

आरोग्यविषयक नियमों का पालन करते हुए यदि हमारे युवक और प्रौढ़ जन सतर्क और सावधान रहें तो निश्चय ही सौ वर्ष या इससे भी अधिक वर्षों तक सर्वदा निरोगी रहकर उत्तम जीवन प्राप्त कर सकते

हैं, ऐसा हमारा विश्वास है। आशा है, प्रथम संस्करण की तरह ही इस नये संस्करण का भी हमारे सुज्ञ पाठक हार्दिक स्वागत कर लाभ उठाएँगे।

— माणेकलाल म. पटेल

१, दरियापुर पटेल सो. लि.,
रणछोड़जी के मंदिर के सामने,
आश्रम रोड, उस्मानपुरा,
अहमदाबाद – ३८० ०१३.
फोन : ४४५५७

'१०० वर्ष निरोगी रहिए' ग्रन्थ के विषय में राजवैद्य श्री रसिकलाल जेठालाल परीख का अभिप्राय

यह ग्रन्थ मुझे बेहद पसन्द आया है, इस के तैंतीस अध्याय मनोयोगपूर्वक पठनीय हैं। इन अध्यायों में लेखक ने चिन्तन और मनन-पूर्वक मानव के तन-मन के विषय में अपना अनुभवसिद्ध जीवन-सत्त्व निचोड़ कर रख दिया है।

केन्सर का प्रमाण और मेद का रोग पचास प्रतिशत से भी अधिक बढ़ चुका है। इससे मृत्यु का अंक भी अत्यंत बढ़ गया है। लेखक ने इस स्थिति के प्रति हमें सावधान किया है।

भगवान चरक ने कहा है, 'संकल्प सबसे बड़ा टॉनिक है।' इसीलिए प्रथम अध्याय सुदीर्घ जीवन के विषय में लिखा गया है। "क्या हम दीर्घायु हो सकते हैं ?" इस विषय में प्रथम अध्याय लिख-कर लेखक ने पाठक के हृदय में आरोग्य का संकल्प-बीज बोया है।

प्रारब्धवाद का खण्डन और पुरुषार्थवाद का मण्डन विशेष ज्ञातव्य है।

स्वामी विवेकानन्द को लगन, जागृति और जोश की आवश्यकता है, इस प्रकार के प्रेरक वचनों से ग्रंथ प्राणवान् और समृद्ध है।

सूर्य सिर पर आता है तब पित्त का प्रकोप होता है, उस समय भोजन किया जाय जबकि सुबह का नाश्ता 'आम' करता है और महात्मा गांधी को यों उद्धृत किया गया है : "नाश्ते के साथ-साथ मेरा सर-दर्द भी गायब हो गया।" गांधीजी ने नाश्ता बंद कर दिया और कहा कि "शतायु के इच्छुक व्यक्ति को सुबह नाश्ता नहीं करना चाहिए।" Hunger is power, अर्थात् यहाँ जठराग्नि के उद्दीप्त होने की बात है।

'पाचन-क्रिया और श्रम एक साथ कदापि नहीं हो सकते' यह बात समझाकर जठराग्नि का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

एकदम ग्राम्य उदाहरण को उद्धृत करके लेखक ने सम्पूर्ण शरीर के स्वास्थ्य को समझाया है : "पाँव को रखो गरम, पेट को रखो नरम और सिर को रखो ठण्डा, फिर अगर आये डॉक्टर तो उसको मारो डण्डा।"

असीम आयु को भोगा जा सकता है। जो ऋषि वसिष्ठ भगवान राम के समय में थे, वही भगवान कृष्ण के समय में भी थे। अर्थात् वृद्धावस्था को रोका जा सकता है और असीम आयु प्राप्त की जा सकती है, इस बात को लेखक ने सुस्पष्ट चित्रित करके मानवमात्र पर बड़ा उपकार किया है और वैचारिक क्रान्ति भी की है।

जो स्थिरता और सुख लाए वस्तुतः उसी का नाम 'आसन' है। आसन की महत्ता लेखक ने बड़े सुन्दर ढंग से समझाई है।

स्थितप्रज्ञ बनने के लिए लेखक का अनुरोध समझाने योग्य है।

मेदवृद्धिवाले व्यक्ति को भाखरी या जौ की रोटी खानी चाहिए।

कसरतों के उपरांत विविध चित्रों से अच्छा मार्गदर्शन किया गया है। तथा अन्य मेदवालों के लिए भी वह मार्गदर्शन अत्यंत उपयोगी है।

मस्तिष्क का विकास करने के लिए और हृदय को आराम देने के लिए शीर्षासन का महिमा-गान किया गया है। लेखक शीर्षासन करने और आँखें बन्द रखने का मार्गदर्शन देते हुए कहता है कि इससे आँखों की शक्ति अनेक गुना बढ़ जाती है।

लेखक ने हर्रे का महत्त्व समझाकर तो जैसे मेरा हृदय ही जीत लिया है।

मेरे गुरु श्री प्रभाशंकर भाई का नामोल्लेख करके लेखक ने उन्हें वास्तव में अमर कर दिया है। चोरी करके भी हर्रे खाइए। हर्रे कोई रेच नहीं है। स्वस्थ के लिए हर्रे और बीमार के लिए लंघन। हर्रे

कोई दवा नहीं किन्तु भोजन है, ऐसा कहकर लेखक ने जनता को सच्ची राह दिखाई है। एक बार मेरे गुरु ने कहा था – "भाई; तुम प्रतिदिन हर्रे खाया करते हो तो तुम सौ वर्ष के पूर्व नहीं मरोगे।"

लेखक का यह ग्रन्थ अनेकों के हृदय में अच्छा प्रकाश फैलायेगा और उनका योग्य मार्गदर्शन करेगा। इस प्रकार का साहित्य समाज को अभ्युदय की ओर ले जाता है और अनेकों के लिए आशीर्वाद रूप होता है।

आत्मा शरीर के अभाव में नहीं रहती अतः उसे भगवान का मंदिर कहकर लेखक ने शरीर का माहात्म्य बढ़ाया है। 'जितनी महत्ता आत्मा की है उतनी ही महत्ता शरीर की भी है।' ऐसा लेखक ने समझाया है।

दुबला-पतला रहना अच्छा है किन्तु मेदस्वी या स्थूल बनना अच्छा नहीं। आधी मात्रा में आहार कीजिए, प्रातःकाल जल्दी उठिए; कब्जियत मत होने दीजिए; दिमाग शान्त रखिए आदि बातें एकदम सीधी-सादी और आरोग्यप्रद हैं।

आरोग्यविषयक प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक को मैं धन्यवाद देता हूँ। इस ग्रन्थ के पढ़ने में कहीं किसी प्रकार की ऊब पैदा नहीं होती, इसलिए पाठक एक बैठक में ही इसे पूरा कर सकता है।

स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं, "जिस घर में अच्छी पुस्तकें न हों वह घर स्मशान के समान है।" अतः पाठक इस पुस्तक को अपनाकर अपने घरेलू पुस्तकालय की समृद्धि बढ़ाएँगे ऐसी मुझे आशा है।

लेखक को सहस्रों अभिनन्दन !

राजवैद्य रसिकलाल जेठालाल परीख
भूतपूर्व कुलपति,
गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय,
जामनगर।

संजीवनी हॉस्पिटल,
अहमदाबाद – ३८० ००७

अनुक्रमणिका

विभाग १

१. क्या हम दीर्घायु हो सकते हैं ? ११
२. वृद्धावस्था क्या है ? १६
३. दीर्घायु होने के लिए अमरीका के 'मेयोक्लीनिक' के सुझाव २१
४. ब्राह्ममुहूर्त में – प्रातःकाल जल्दी उठने से लाभ ... २७
५. शरीर का रक्त सदा गतिशील रखिए ३३
६. भोजन के जितना ही व्यायाम भी महत्त्वपूर्ण ३७
७. कसरत के सामान्य नियम ४२
८. प्रमुख कसरतें ४६
९. आसनों के राजा : शीर्षासन और सर्वांगासन ६१
१०. मंदगति की दौड़ – जोगिंग ७५
११. आहार-शास्त्र के नियम ८७
१२. गहरी नींद : आरोग्य की नींव ९५
१३. इच्छा-शक्ति और मनोबल १००
१४. व्यसन आयु घटाता है १०६
१५. एकमात्र दवाओं पर आधार न रखें ११३
१६. गलतफहमी की ग्रंथियाँ ११८
१७. शतायु होने के बुनियादी सिद्धान्त : एक अंतिम दृष्टि ... १२७

विभाग २

१८. मेद-वृद्धि कम करके दीर्घायु हों १३९
१९. कब्जियत दूर करें १५३
२०. हृदय-रोग से बचें १६१
२१. यकृत को कार्यक्षम रखना अत्यावश्यक है १७८
२२. कॅन्सर से बचिए १८३
२३. मधुप्रमेह से बचें १८९
२४. वात-संधिवात रोग से बचें २११
२५. रीढ़ की रचना और उसकी देख-भाल २१९
२६. पैरों की नसों का फूलना २३०
२७. निरोगी रहने के लिए चमड़ी की सुश्रूषा करें २३४
२८. आँख की कसरत और देख-भाल २४०
२९. कान की रचना और देख-भाल २५७
३०. दाँतों की रचना और देख-भाल २७४
३१. सिर के बाल निरोगी रखिए २८९
३२. तोतलापन : एक लघुताग्रन्थि २९३
३३. हास्य और स्वास्थ्य २९९

१. क्या हम दीर्घायु हो सकते हैं ?

मनुष्य ईश्वर की प्रतिकृति है। ईश्वर ने मनुष्य को अपनी समस्त शक्तियाँ अर्पित करके उस पर असीम कृपा की है। यदि मनुष्य चाहे तो कृष्ण बन सकता है, राम बन सकता है या फिर शक्ति-पुंज हनुमान बन सकता है। यदि कोई युवक दृढ़ निश्चय के साथ पुरुषार्थ करना प्रारंभ कर दे तो वह गामा पहलवान के समान शक्ति प्राप्त कर सकता है। यदि मनुष्य ठान ले तो अध्यात्म-ज्ञान की गहराई में उतरकर परमज्ञानी अरविन्द, रमण महर्षि, स्वामी विवेकानन्द या महर्षि दयानन्द सरस्वती के समान महान सन्त या समाज-सुधारक भी हो सकता है। मनुष्य परमात्मा का अंश है। वह अपनी इच्छानुसार महान बन सकता है। इच्छानुसार सिद्धि प्राप्त करना उसके हाथ की बात है।

मनुष्य का शरीर परमात्मा का मन्दिर है। यदि यह मन्दिर हर प्रकार से सुगढ़ और सुन्दर होगा, तभी ईश्वर के निवास-योग्य बन सकेगा। जब साधारण स्थिति का व्यक्ति भी अपने निवास-स्थान को सुन्दर, सुगठित, रौनकदार, पवित्र, मजबूत और टिकाऊ रखने का प्रयत्न करता है, तो फिर जिस घर में परमात्मा का वास हो, उस घर को वैकुण्ठ लोक के समान सर्वश्रेष्ठ बनाना कितना अनिवार्य है—यह ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिए। अतः हम अपने शरीररूपी मन्दिर को वैकुण्ठ लोक के समान बनाएँ और आरोग्यशास्त्र सम्बन्धी नियमों का अनुसरण करके शतायु की मंजिल तक पहुँचें।

शरीरशास्त्र या आरोग्यशास्त्र एक महान जीवनशास्त्र है, इसी लिए तो आयुर्वेद को उपवेद माना गया है। आरोग्यशास्त्र बड़ा ही गहन, गंभीर और जटिल है। उसे समझने के लिए पर्याप्त अध्ययन, परिश्रम और एकाग्रता की आवश्यकता है। इस गहन-

गंभीर विषय को सरल और लोक-भोग्य बनाने के लिए आज अमरीका तथा अन्य पाश्चात्य देशों में जो भव्य पुरुषार्थ हो रहा है, उसका परिचय अमरीका के भूतपूर्व भारतीय राजदूत श्री नानी पालखीवाला ने दिया है। उसका ज्ञान अपनी आरोग्य विषयक कमियों को दूर करने में हमारे लिए प्रेरक बन सकता है।

श्री नानी पालखीवाला का कथन है कि, "वैज्ञानिक संशोधनों में अमरीका बहुत आगे है। विश्व में होनेवाले आविष्कारों के विश्व पेटण्ट के 70% पेटण्ट का श्रेय अमरीका को है।" तदुपरांत आज अमरीका में प्रतिदिन लगभग दो सौ पुस्तकों का प्रकाशन होता है। इनमें 50% अर्थात् लगभग सौ पुस्तकें आरोग्यशास्त्र विषयक होती हैं। धनवृद्धि के साथ-साथ ऐशोआराम बढ़ने तथा परिश्रम या मेहनत-मजदूरी कम होने से शरीर में मेद-वृद्धि होती है। आज अमरीका में आठ करोड़ लोग मेदवृद्धि के रोग के शिकार बनते हैं। इसके साथ ही यह देश मादक पदार्थ, सिगरेट, उच्छृंखल जीवन-व्यवहार आदि घातक व्यसनों की विकृतियों में डूबा हुआ है। फलस्वरूप वहाँ प्रजा का स्वास्थ्य निरंतर गिरता जा रहा है। मधुप्रमेह, उच्च रक्तचाप, विविध प्रकार के हृदय-रोग, कॅन्सर, क्षय, वात, संधिवात, गाउट, मानसिक रोग आदि अनेक प्रकार की व्याधियों ने वहाँ अड्डा जमा लिया है। आरोग्यशास्त्र के विद्वान डॉ. नॉर्वेल का कहना है कि, "अमरीका की कुल मौतों में से 50% मौतें केवल मेदवृद्धि के रोग के कारण होती हैं। यहाँ मेदवृद्धि और मादक द्रव्यों के व्यसन से उत्पन्न विकृतियाँ मृत्यु के आँकड़ों में वृद्धि कर रही हैं। केन्सर सोसायटी के रिपोर्ट में बताया गया है कि, "2,70,000 persons die of cancer every year in U.S.A. and three per cent increase is detected every year. 25,000 persons are cured every year and probably 1,50,000 other deaths postponed by proper treatments."

अर्थात् अमरीका में प्रतिवर्ष कॅन्सर से 2,70,000 मनुष्यों की मृत्यु होती है। इस आँकड़े में प्रतिवर्ष 3% की वृद्धि होती है।

इस राष्ट्रव्यापी महारोग से प्रजा को बचाने एवं अमरीकी प्रजा में स्वास्थ्य के प्रति जागृति उत्पन्न करने के लिए आज अमरीका पुस्तक-प्रकाशन के उपरान्त रेडियो और टी. वी. के माध्यम द्वारा भी व्यापक प्रचार कर रहा है, जबकि भारत में आरोग्य के प्रश्न की अत्यंत उपेक्षा की जा रही है। स्कूल-कॉलेजों में आरोग्यशास्त्र के विषय में उचित मार्गदर्शन नहीं दिया जाता। हमारे देश में आरोग्य-विषयक साहित्य का प्रकाशन भी बहुत कम मात्रा में होता है। अतः भारत के लोग आरोग्यशास्त्र के विषय में अज्ञान रूपी अंधकार में भटक रहे हैं, ऐसा लगता है। फल-स्वरूप सामान्य एवं अनेक तेजस्वी, प्रभावशाली और महान व्यक्तियों की अकाल मृत्यु हो जाती है। उनके ज्ञान, सामर्थ्य एवं अनुभव के लाभ से देश वंचित रह जाता है। इससे सम्पूर्ण देश को ऐसी राष्ट्रीय हानि हुई है जिसकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती। हमारे राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी अपने स्वास्थ्य के प्रति अत्यन्त जागरूक थे। यही-कारण है कि उन्होंने दीर्घजीवी बनकर दीर्घकाल तक देश की सेवा की थी। श्री मोरारजीभाई देसाई भी अपने स्वास्थ्य के प्रति अत्यंत जागृत हैं और दीर्घ आयुष्य भोग रहे हैं।

मनुष्य का शरीर एक दिव्य मंदिर है। उसे सुघड़, स्वच्छ दृढ़ और टिकाऊ बनाये रखने के लिए अपेक्षित ज्ञान सभी को प्राप्त करना चाहिए। ऐसे सुन्दर और पवित्र मंदिर को मदिरा, तम्बाकू, सिगरेट, अफीम, मांसाहार आदि अभक्ष्य और भ्रष्ट पदार्थों के सेवन से अपवित्र नहीं करना चाहिए। हमें प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए इस मन्दिर की रखवाली करनी चाहिए। शरीर को मजबूत, निरोगी और दीर्घजीवी बनाने के लिए हमें प्रतिदिन व्यायाम करना चाहिए। भोजन में मिताहारी रहना चाहिए।

सबके प्रति स्वच्छ और पवित्र व्यवहार रखना चाहिए तथा आहार-विहार में संयम रखना चाहिए। प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में उठना चाहिए और मन को स्थितप्रज्ञ अवस्था में स्थिर करना चाहिए। इन प्राकृतिक नियमों के पालन से पर्याप्त स्वस्थता, मानसिक शान्ति और दीर्घायुष्य की प्राप्ति हो सकती है। फिर तो दुर्घटना के सिवाय व्यक्ति की अकाल मृत्यु कदापि नहीं होगी, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ।

भारतवासियों की आयु-मर्यादा अत्यन्त कम होने तथा उनके स्वास्थ्य बिगड़ने के अनेक कारण हैं। उनमें एक विशेष कारण आध्यात्मिक मनोदशा भी है। कई लोगों के मन में ऐसी मान्यता घर कर गई है कि प्रारब्धवश हमें जो शरीर प्राप्त हुआ है वह भाग्य में होगा तब तक रहेगा। सभी अपना-अपना भाग्य लेकर जन्म लेते हैं। जितनी चित्रगुप्त के बही खाते में लिखी होगी, उतनी ही आयु हमें प्राप्त होगी। अतः इस सम्बन्ध में विशेष चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? हमारे वेदान्तियों ने भी कहा है कि, "यह शरीर क्षणभंगुर है और आत्मा अमर है। क्षणभंगुर शरीर देर-सबेर कभी-न-कभी तो नष्ट होगा ही, तो फिर उसकी अनावश्यक चिन्ता करने में शक्ति और समय बरबाद करने का कोई अर्थ नहीं है।" कुछ अज्ञानी लोगों से भी ऐसी ही निराशाजनक बातें सुनने को मिलती हैं, लख चौरासी के फेरे तो पूरे करने ही हैं, जितनी जल्दी ये फेरे पूरे हो जायँ उतनी ही जल्दी हम परमात्मा के धाम वैकुण्ठ में पहुँच सकेंगे।"

लोगों को प्रमादी, आलसी और शरीर के प्रति लापरवाह बनानेवाले लोग वेदान्त का सच्चा मर्म समझे ही नहीं हैं। ऐसे ही तथाकथित वेदान्ती किसी महारोग के शिकार बनते ही कैसे विवश हो जाते हैं! किस प्रकार वे डॉक्टर या वैद्य के तात्कालिक उपचार के लिए पहुँच जाते हैं! सर्वत्र ब्रह्म के दर्शन करनेवाला

व्यक्ति रोग का आक्रमण होते ही इतना व्याकुल क्यों हो जाता है ? शरीर की क्षणभंगुरता और आत्मा की अमरता का ज्ञान रोग का प्रतिकार करने में असमर्थ क्यों हो जाता है ?

वास्तव में शास्त्र तो कहता है 'आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि ।' (मनु. 7.213) अर्थात् धन और स्त्रीं की अपेक्षा भी आत्मरक्षा विशेष महत्त्वपूर्ण है। आवश्यकता पड़ने पर स्त्री और धन आदि को न्योछावर करके भी शरीर की रक्षा करनी चाहिए; यही उस समय मनुष्य का कर्तव्य है। सभी कार्य शरीर द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। इसीलिए तो हमारे शास्त्रकारों ने कहा है : 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।' अतएव शरीर की उत्तम प्रकार से सुरक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।

संक्षेप में उत्तम आरोग्य के लिए लगन, जागरूकता और उत्साह आवश्यक है।

आप अपने अधिकार के सौ वर्ष प्राप्त करनें के लिए कृत-निश्चयी बनिए। श्रम कीजिए, व्यायाम कीजिए, प्रमाद छोड़िए। प्राकृतिक नियमों को अच्छी तरह समझें और उनका पालन करें। ऐसा करने पर प्रकृति स्वयं आपको उल्लासपूर्ण स्वास्थ्य से युक्त सौ वर्ष प्रदान करेगी–यह निश्चित है।

२. वृद्धावस्था क्या है ?

सामान्यतः लोग वृद्धावस्था को एक प्रकार की असाध्य स्थिति मानते हैं। उसके प्रतिकार का कोई उपाय नहीं है, ऐसा मानकर उसका स्वीकार कर लेते हैं। वृद्धावस्था के आते ही उसके पीछे-पीछे वात, संधिवात, अजीर्ण, कब्ज, मोतिया-बिन्द, बहरापन आदि अनेक रोग अपने आप चले आते हैं—ऐसी लोगों की मान्यता है।

बुढ़ापा आते ही ऐसे निराशाजनक स्वर सर्वत्र सुनाई पड़ते हैं, किन्तु उस महायात्रा के मार्ग का उत्साहपूर्वक स्वीकार करने के लिए कोई तैयार नहीं होता और लोग डॉक्टरी इलाज के पीछे दौड़धूप शुरू कर देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि संसार में सभी मनुष्य दीर्घायु बनना चाहते हैं, किन्तु कोई स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक प्रयत्न करना नहीं चाहता।

वास्तविकता यह है कि वृद्धावस्था कोई रोग नहीं है, शरीर की एक प्रक्रिया है, प्राकृतिक क्रम है। इस प्राकृतिक क्रम का हमें स्वीकार कर लेना पड़ता है। प्राकृतिक नियमों के अधीन रहकर और प्राकृतिक नियमों का पालन करके हम अकाल वृद्धत्व को रोक सकते हैं, जितना दूर ठेलना चाहें उसे ठेल सकते हैं।

उम्र बढ़ने के साथ शुद्ध रक्तवाहिनियों और अशुद्ध रक्तवाहिनियों में अर्थात् धमनियों और शिराओं में एक प्रकार का विजातीय द्रव्य (एक किस्म के चूने के क्षार जैसा पदार्थ) इकट्ठा होता है और अतिरिक्त स्तर की तरह उसमें चिपक जाता है। फलस्वरूप नसें कनकनी (fragile) हो जाती हैं और रुधिराभिसरण की क्रिया में विघ्न पड़ता है। नसों की क्षमता में कमी आती है और बुढ़ापे के चिह्न उभरने लगते हैं। यदि इस द्रव्य को धमनियों और शिराओं में एकत्रित होने से न रोका जाय तो वह लगातार बढ़ता रहता है और संपूर्ण शरीर-तंत्र को भारी क्षति पहुँचाता है। ऐसी

स्थिति निर्माण होने पर यौवन-सुलभ स्फूर्ति, चपलता, उत्साह और लगन अदृश्य हो जाते हैं। पूरे शरीर में वृद्धावस्था की मंदता, शिथिलता और नीरसता दिखाई देती है। यह विजातीय द्रव्य मनुष्य की रग-रग में स्थिर होकर उसमें जड़ता और कमजोरी उत्पन्न करते हैं फलतः शरीर के विविध अंगों की चपलता नष्ट हो जाती है। उदाहरणार्थ वृद्धावस्था में मुख्य नसों में जड़ता उत्पन्न होने के कारण मस्तिष्क को पर्याप्त मात्रा में शुद्ध रक्त नहीं मिल पाता और मनुष्य की स्मरणशक्ति मन्द पड़ जाती है। इसी प्रकार शरीर के अन्य अवयव भी शिथिल हो जाते हैं। इस प्रकार शरीर में बुढ़ापे के चिह्न दिखाई देने लगते हैं।

शरीर की नसों में चिपके हुए इस विजातीय द्रव्य को किसी न किसी तरह गतिमान करके उसे शरीर के बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए। जितना ही हम इस द्रव्य को शरीर के बाहर निकाल सकेंगे उतना ही हम अपने बुढ़ापे को दूर ठेलने में समर्थ होंगे।

विजातीय द्रव्य को नसों में स्थगित होने से रोकना बड़ा सरल कार्य है। जैसे, ताँबे के लोटे में पानी भरकर रख देने से उसमें एक प्रकार की मैल (जंग) लग जाती है, जिसे दूर करने के लिए लोटे को मिट्टी से साफ करना पड़ता है। कई लोग नींबू या इमली की खटाई से उसे साफ करते हैं तो कई लोग नदी की रेत से माँजकर जंग को दूर करते हैं। इसी प्रकार यह विजातीय द्रव्य शरीर में जम न पाये और यदि जम गया हो तो उसे विविध व्यायामों के द्वारा स्थान-भ्रष्ट कर क्रमशः दूर करना चाहिए। ऐसा करने से शरीर पुनः स्फूर्तियुक्त, चेतनयुक्त और स्थितिस्थापक बन जाता है, साथ ही युवावस्था की ताजगी, स्फूर्ति, तन्दुरुस्ती और आरोग्य की पुनः प्राप्ति हो सकती है।

कदाचित किसी के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या गई हुई जवानी फिर से आ सकती है? अकाल में ही वृद्ध होने-

वाले लोग फिर से जवान हो सकते हैं क्या ? इसका उत्तर मि. सनफोर्ड बॅनेट ने दिया है । पचास वर्ष की आयु में ही वे अनेक रोगों के शिकार होकर अकाल ही वृद्ध हो गये थे । विविध प्रकार की दवाओं का सेवन करके वे मृतप्राय हो चुके थे; किन्तु एक शुभ क्षण में वे प्रमाद का त्यागकर जाग उठे। उन्होंने दवा और डॉक्टरों का त्याग कर दिया । केवल व्यायाम के द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य की पुनः प्राप्ति के लिए वे कृतनिश्चयी बने और उन्होंने साधना शुरू कर दी । विचारपूर्वक तथा विवेकपूर्वक व्यायाम करके अन्त में उन्होंने पुनः स्वास्थ्य और शारीरिक सौष्ठव प्राप्त कर लिया । बहत्तर वर्ष की आयु में उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर * 'Old age : Its Causes & Prevention' 'बुढ़ापा : उसके कारण और निवारण' इस विषय पर एक सुन्दर और उपयोगी ग्रंथ लिखा। २२ वर्ष के अपने प्रयोगों से सम्बन्धित विविध अनुभव लेखक ने उक्त ग्रंथ में प्रस्तुत किये हैं । प्रयोगों के द्वारा विजातीय द्रव्य को हटाकर शरीर की नसों की कोमलता पुनः प्राप्त करके वे स्फूर्तिमान युवक बने थे । वे कहते हैं—"कोई भी व्यक्ति अपने शरीर में वृद्धावस्था के चिह्न दिखाई देने पर, यदि चाहे तो, मेरे ग्रंथ में निर्दिष्ट उपायों को आजमाकर अपनी जवानी निःशंक पुनः प्राप्त कर सकता है ।"

मुख्य रक्तवाहिनियों, शिराओं और सूक्ष्मतम केशवाहिनियों को क्षार रहित करने का कार्य एकमात्र व्यायाम या कसरतों से ही संभव है । इसके लिए विविध प्रकार से स्नायुओं का हलन-चलन, संकोच-विकास, दबाव तथा खींचा-तानी करनेवाली कसरतें करनी चाहिए । संक्षेप में, व्यायाम ही एक मात्र ऐसा सीधा-सादा और व्यावहारिक उपाय है जो सर्वजन-सुलभ है, प्रभावशाली है और जिसमें कोई विशेष खर्च भी नहीं है ।

---

* Sunford Bennett द्वारा लिखित यह ग्रंथ नेचर क्योर आश्रम, उरुलीकाँचन, जि. पूना से प्राप्त हो सकेगा।

यद्यपि हम बुढ़ापे को पूरी तरह रोक नहीं सकते, मगर उसे एक लम्बे अरसे तक अर्थात् सौ वर्षों तक रोक सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। इस विषय में हमारे ऋषि-मुनियों ने अत्यंत प्रगतिकारक दृष्टांत प्रस्तुत किये हैं। योगासन, व्यायाम, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि आदि की सहायता से हमारे अनेक ऋषियों-महर्षियों से सैकड़ों वर्ष की आयु प्राप्त की थी। हम भी तो उन्हीं की संतानें हैं। हम भी उन्हीं की तरह उसी पद्धति का अनुसरण करके सौ वर्ष से अधिक क्यों नहीं जी सकते? प्रमाद छोड़िये और मानसिक रूप से तैयार हो जाइए। जिस प्रकार फूँक मारकर अंगारे के ऊपर की राख को उड़ाया जा सकता है उसी प्रकार प्रयत्नपूर्वक व्यायाम और योगासन आदि के द्वारा शरीर के भीतर जमी हुई गंदगी को दूर किया जा सकता है। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर आज से ही दृढ़ संकल्प करके व्यायाम और कसरत प्रारंभ कर दीजिए।

बुढ़ापे को रोकने के उपाय निम्नलिखित हैं :

(१) **कसरत-व्यायाम :** शरीर के छोटे-बड़े स्नायुओं को और अन्य अवयवों को जीवंत रखने के लिए रुधिराभिसरण को गतिशील रखना अनिवार्य है। कसरत-व्यायाम से स्नायुओं में संकुचन-प्रसरण और घर्षण होने से रुधिराभिसरण की क्रिया गतिशील होती है। प्रत्येक अवयव को अधिक मात्रा में रक्त मिलने लगता है। गतिशील रुधिराभिसरण से नसों में जमा हुआ विजातीय द्रव्य अलग होने लगता है। नसों की कठोरता या जरठता दूर हो जाती है और वे कोमल होती जाती हैं। पूरे शरीर में रक्त का व्यवस्थित परिभ्रमण होता रहे इसके लिए विविध प्रकार की कसरतें और व्यायाम अनिवार्य हैं।

(२) **मालिश :** मालिश करने से बारीक नसों में रक्त का भी परिभ्रमण होने लगता है। नसों में जमा हुआ विजातीय द्रव्य अलग पड़ता है और नया जम नहीं पाता। इस प्रकार अलग पड़ा

हुआ विजातीय द्रव्य पसीने और मलमूत्र के साथ शरीर के बाहर निकल जाता है। इस प्रकार बुढ़ापे को रोकने के लिए मालिश अनिवार्य है।

(३) **योगासन :** प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी दिनचर्या में निम्नलिखित कार्यक्रमों का समावेश अवश्य करें :

(क) स्नान करते समय ठण्डे-गर्म पानी का उपयोग करें। इससे रुधिराभिसरण को गति मिलती है। ठण्डे और गर्म पानी से क्रमशः स्नान करें।

(ख) ठण्डे पानी से शरीर को 'भीगा घर्षण' दो अर्थात् तौलिये को पानी में निचोड़कर उससे शरीर को रगड़ो।

(ग) स्नान करने के बाद सूखे तौलिये से शरीर को 'सूखा घर्षण' दो। कसरत-व्यायाम के बाद भी सूखे तौलिये से शरीर को 'सूखा घर्षण' दो।

(घ) सर्वांगासन प्रतिदिन एक-एक मिनट बढ़ाते हुए पाँच मिनट तक करो। रक्त की ऊर्ध्व गति होने से उसकी हलचल बढ़ जाती है। इससे शरीर के अंगोपांगों को भोजन के रूप में नया रक्त मिलने लगता है। यदि उच्च रक्तचाप या आँख की कोई तकलीफ न हो तो शीर्षासन भी शुरू कर देना चाहिए। क्रमशः समय बढ़ाते हुए यह आसन पाँच मिनट तक करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार, इस अध्याय में निर्दिष्ट विविध प्रवृत्तियों को विवेकपूर्वक करने से हमारा शरीर वृद्धत्व को दूर ठेलकर दीर्घायु होने की क्षमता प्राप्त करता है।

३. दीर्घायु होने के लिए अमरीका के 'मेयोक्लीनिक' के सुझाव

कोई मरना नहीं चाहता। अमीर और गरीब, सभी दीर्घायु होना चाहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक जीना और जीवन का आनन्द लूटना चाहता है।

इसी प्रकार के लक्ष्यवाले अमरीका के धन-कुबेर एक बार एकत्रित होकर यों सोचने लगे कि–

धन, धान्य और संपत्ति होने के बावजूद कई लोग जवानी में ही अकाल मृत्यु के शिकार क्यों हो जाते हैं ? कई प्रौढ़ावस्था में ही क्यों मर जाते हैं ? अनेक उद्योगपतियों और धनपतियों की आकांक्षाएँ अपूर्ण रह जाती है और वे समय के पहले ही चल बसते हैं। बहुत कम लोग 80–85 वर्ष या अधिक जीवित रहते हैं। ऐसा क्यों ?

स्वस्थ और लम्बी उम्र प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए ? इसी प्रयोजन से इन धनपतियों ने चिन्तन करना प्रारंभ किया। 81 वर्ष के डॉ. मेयो उनकी सहायता के लिए आगे बढे। उन्होंने 'मेयो-क्लब' की स्थापना की और उसके लिए धन इकट्ठा किया। इस क्लब ने देश-विदेश के 100 वर्ष से अधिक आयुवाले भाग्यशाली स्त्री-पुरुषों को एकत्रित करने का निर्णय किया। क्लब के खर्च पर ऐसे स्त्री-पुरुषों को नोकर-चाकर सहित अपने पूरे काफले के साथ पधारने के लिए आमंत्रण भेजे गये। उनके ठहरने का सुन्दर प्रबन्ध किया गया। वयोवृद्ध कुशल डॉक्टरों को भी इस क्लब का सदस्य बनाया गया। सभी मिलकर दीर्घायु होने के लिए उपयोगी संशोधनों में व्यस्त हो गये। उन्होंने 'मेयोक्लीनिक' की स्थापना की। वहाँ डॉक्टरों ने शतायु स्त्री-पुरुषों के जीवन-क्रम और उनकी दिनचर्या का अध्ययन शुरू किया। उन्होंने शतायु स्त्री-पुरुषों की शारीरिक जाँच शुरू की। वे सभी स्वस्थ, मस्तमौला और मन-

मौजी पाये गये। किसी को किसी प्रकार का दुःख-दर्द या किसी प्रकार की चिन्ता-फिक्र न थी। 'मेयो-क्लीनिक' के इन सारे प्रयोगों के समाचार अमरीका एवं दुनियाभर के अखबारों में प्रकाशित हुए। फिर क्या था, क्लीनिक में पत्रकारों का ताँता लग गया। ताजा खबरें प्राप्त करने के उद्देश्य से विभिन्न देशों से पत्रकारों के काफले अमरीका में उमड़ पड़े।

'मेयो-क्लीनिक' के डॉक्टरों ने गंभीर अध्ययन करने के बाद शतायु होने के लिए उपयोगी निम्नलिखित नौ मुद्दे निर्धारित किये :

१. रोग के चिह्नों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

मेयो-क्लब के अतिथि दीर्घायु स्त्री-पुरुष अपने शरीर में किसी भी बीमारी को टिकने ही न देते थे। विकृति उत्पन्न होते ही तुरन्त उसका उपाय कर वे रोगमुक्त हो जाते थे। अतः डॉक्टरों ने यह निष्कर्ष निकाला कि बीमारी की उपेक्षा न की जाय तथा बीमारी के लक्षण दिखाई देने पर तुरंत उसका उपाय किया जाय।

संक्षेप में, रोग के लक्षण दिखाई देने पर तुरंत ही कुशल डॉक्टर का परामर्श लेकर रोगमुक्त होना चाहिए। रोग जम ही न पाए।

२. दुबले-पतले लोग अधिक जीते हैं :

मेयो-क्लीनिक के एक डॉक्टर मि. डग्लास ने मुस्कराते हुए कहा है कि एक भी मोटा व्यक्ति उनके क्लीनिक का सदस्य नहीं है। डॉक्टर के कथन का तात्पर्य यह है कि वही व्यक्ति उनके क्लीनिक का सदस्य हो सकता है जिसकी आयु सौ वर्ष की हो, अर्थात् मोटे व्यक्ति सौ वर्षों तक जी ही नहीं सकते, तो वे इस क्लीनिक के सदस्य कैसे बन सकते हैं? मोटे लोग जल्दी रोग के शिकार हो जाते हैं और जल्दी मर भी जाते हैं।

डॉ. डग्लास का यह भी कहना है कि व्यक्ति की ऊँचाई जितने इंच हो उतने ही किलो उसका वजन भी होना चाहिए। इससे ज्यादा वजन हो तो प्रतिवर्ष एकाध किलो वजन घटाने का

कार्यक्रम अपनाना चाहिए और ऊँचाई के अनुसार वजन प्राप्त कर लेना चाहिए।

संक्षेप में दीर्घायु होने के लिए दुबलापन अर्थात् शरीर की सप्रमाणता आवश्यक है।

३. तम्बाकू दीर्घायु होने में बाधक है :

मेयो-क्लीनिक के सदस्य तम्बाकू के व्यसनी नहीं थे।

संक्षेप में, तम्बाकू खाना, पीना या सूँघना मनुष्य की आयु को कम करता है। तम्बाकू में 'निकोटिन' नामक विषैला तत्त्व होता है जो अनेक रोगों का कारण है। इसलिए दीर्घायु चाहनेवाले को तम्बाकू का व्यसन नहीं रखना चाहिए।

४. नशा न करें :

'मेयो-क्लीनिक' के सदस्यों के अध्ययन से यह मालूम हुआ है कि वे शराब के आदी न थे। 60 प्रतिशत सदस्य तो शराब पीते ही न थे। शेष प्रसंगोपात् ही मदिरापान करते थे, किन्तु उन्हें शराब का व्यसन नहीं था। उनकी शारीरिक जाँच करके डॉक्टरों ने यह निष्कर्ष निकाला कि उनके यकृत शेष चालीस प्रतिशत लोगों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ थे। अतः डॉक्टर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मदिरा पीने से यकृत खराब हो जाता है और रोग के प्रतिकार करने की शक्ति का ह्रास होता है।

संक्षेप में, लम्बी आयु चाहनेवालों को शराब या अन्य मादक पदार्थों का सेवन कभी नहीं करना चाहिए।

५. कम, प्रवाही और सुपाच्य भोजन करें।

'मेयो-क्लीनिक' के सदस्य अत्यंत मिताहारी थे। उनकी भोजन की मात्रा बहुत ही कम थी। वे प्रवाही खुराक अधिक मात्रा में लेते थे। बल्गेरिया और अरब देशों के कुछेक सदस्यों की खुराक में छाँछ (मट्ठे) की मात्रा विशेष थी। जबकि पूर्व के जापान,

चीन, भारत, इण्डोनेशिया आदि गर्म देशों के प्रतिनिधियों का मुख्य आहार चावल था। चावल के साथ वे दही, छाँछ, इमली दाल और क्वचित् मांस-मछली का उपयोग करते थे। अतः डॉक्टरों ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रवाही, सुपाच्य और कम भोजन लेने से आमाशय की पाचन-क्रिया सतेज रहती है। तेज पाचन-क्रिया से पेट के अस्सी प्रतिशत रोगों से मुक्ति मिल जाती है; क्योंकि पेट ही सभी रोगों का उद्गम-स्थान है।

संक्षेप में, दीर्घायु चाहनेवालों को आजीवन ऐसा ही भोजन ग्रहण करना चाहिए जो प्रवाही, सुपाच्य और कम हो।

६. जीवन श्रमयुक्त और व्यायाममय हो।

अनेक सदस्य खुले वातावरण में श्रम, मेहनत-मजदूरी, कृषि-कार्य आदि करते। कुछेक ढोर चराते और खेती के काम में मदद करते। कुछ कारीगर भी थे जो निरंतर कार्यरत रहा करते थे। आशय यह है कि क्लीनिक का कोई भी सदस्य निठल्ला जीवन नहीं बिताता था।

कुछ सदस्य नियमित रूप से व्यायाम करते, कुछ योगासनों जैसी दिन में पाँच बार नमाज पढ़ने की कसरत करते, कई सीढ़ियाँ और पहाड़ियाँ चढ़ने-उतरने या तैरने आदि की श्रमयुक्त कसरतें करते। कई ऐसे भी थे जो अपने-अपने इष्ट देवता के दर्शन-पूजन के लिए मीलों की पैदल यात्रा करते या रोज पहाड़ पर चढ़ते। वास्तव में यह उन लोगों का ऐसा दैनिक श्रमयुक्त कार्य-क्रम था जिसके साथ उनकी प्रबल इच्छा-शक्ति और आस्था जुड़ी हुई थी।

मेयो-क्लीनिक के एक सदस्य डॉक्टर थे। वे प्रॅक्टिस करते और लोगों का निःशुल्क उपचार करते थे। उनके पास एक पेटी थी। मरीज फीस के रूप में इच्छानुसार रकम उस पेटी में डाल देते थे। उसी रकम से दवाइयाँ खरीदकर डॉक्टर अपना दवाखाना चलाते थे। इस प्रकार 12 से 14 घण्टे अपना दवाखाना चालू

रखकर पर्याप्त श्रम किया करते थे। उनकी आयु 102 वर्ष की थी। स्वयं डॉक्टर यह मानते थे कि उनके दीर्घायु-शतायु होने की गुरु-चाभी उनका वह श्रमयुक्त सेवा-कार्य ही था।

संक्षेप में, डॉक्टर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि दीर्घायु होने के लिए श्रमयुक्त मेहनत-मजदूरी अथवा कसरत-व्यायाम अत्यावश्यक है।

७. सदैव आशावादी और उत्साही बने रहें।

उक्त मेयो-क्लीनिक के सदस्य उत्साही, लगनवाले और हँसमुख थे। किसी के भी चेहरे पर उदासी नहीं दिखाई पड़ती थी। सभी अपने कुटुम्बीजनों, बच्चों, पौत्रों, प्रपौत्रों आदि के साथ आनन्द-प्रमोद में मशगूल रहते थे। उन्होंने जीवन में कभी किसी प्रकार की निराशा या हताशा को अपने पास फटकने तक न दिया था। सभी 'गीता' में निरूपित 'स्थितप्रज्ञ' के अवतार थे। वे चिन्ता को तो जैसे घोल कर पी गये थे और मस्तमौला की तरह बेफिक्र बनकर घूमते और अपने विशाल परिवार में सबके साथ हिलमिल कर रहा करते।

संक्षेप में, दीर्घायु बनने के लिए निराशा दूर कर दीजिए और हमेशा के लिए आशावादी और उत्साही बने रहिए।

८. प्रवृत्ति के साथ निवृत्ति भी आवश्यक है।

प्रतिवर्ष कुछ दिनों के लिए कार्यों से मुक्त होकर, दैनिक प्रवृत्ति का त्याग कर आराम करना चाहिए। जीवन को समृद्ध बनाने के लिए प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति दीर्घायु व स्वास्थ्य प्राप्त करने की शक्तिवर्धक औषधि (Tonic) है।

मेयो-क्लीनिक के कुछ सदस्य संगीत और भजनों के शौक़ीन थे। वे जब प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर विश्राम करते, तब वे संगीत का सहारा लेते और निश्चिन्त होकर भजन या गीत गाया करते।

संक्षेप में, डॉक्टर ने यह निष्कर्ष निकाला कि शतायु होने के लिए प्रवृत्ति के साथ निवृत्ति भी अत्यावश्यक है।

९. धार्मिक भावना अपनाइए :

अधिकांश सदस्य अत्यन्त धार्मिक प्रकृति के थे। उनकी यह मान्यता थी कि जो कुछ अच्छे-बुरे कार्य होते हैं उन्हें भगवान ही करते हैं। और जो कुछ भगवान करते हैं वह भले के लिए ही करते हैं। इस प्रकार की दृढ़ मान्यता के कारण वे चिन्तामुक्त रहते। प्रत्येक भले-बुरे प्रसंग को वे भगवान का उपहार समझकर सहर्ष स्वीकार लेते थे और स्थितप्रज्ञ बनकर संतोषी जीवन व्यतीत करते थे एवं निश्चिन्त बनकर मस्ती से रहते थे।

संक्षेप में, भगवान पर अटल श्रद्धा रखिए। अपने सुख-दुःख और आवेग-उद्वेग सब कुछ भगवान पर छोड़ दीजिए। यदि आप जीवन के सारे आघात-प्रत्याघातों में निश्चित रहेंगे तो दीर्घायु होकर शतायु होने के ध्येय को प्राप्त कर सकेंगे।

यहाँ निरूपित सौ वर्ष तक जीने की अभिलाषावाले दो व्यक्तियों के जीवन-स्तर को ध्यान में रखते हुए उनके रहन-सहन, आहार-विहार, धार्मिक भावना आदि बातों को आप जीवन में उतारिये और दीर्घायु बनिए। सदैव निम्नलिखित सुनहरा सूत्र अपनी दृष्टि के सामने रखिए :

मन ! तू काहे को चिन्ता करे ?
श्रीकृष्ण को करना हो सो करे।
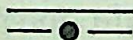
४. ब्राह्ममुहूर्त में — प्रातःकाल जल्दी उठने से लाभ

निशि में सोवें जल्द जो, उठें सबेरे वीर।
बल, विद्या अरु धन बढ़े, सुख में रहे शरीर॥

ब्राह्ममुहूर्त अर्थात् प्रातःकाल लगभग चार बजे उठकर शय्या का त्याग करना हमारी आर्य संस्कृति का शास्त्रोक्त विधान है। मनुष्य के तन, मन और धन की वृद्धि के लिए ऋषि-मुनियों का भी यही आदेश है। इस आदेश में भारी रहस्य छिपा हुआ है।

प्रातःकाल जल्दी उठने से लाभ :

(१) सामान्यतः प्रातःकाल जल्दी उठने से व्यायाम के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। देर से उठने पर व्यायाम के लिए उतना समय मिलना मुश्किल है। अन्य कार्य भी करने पड़ते हैं, अतः समय के अभाव में व्यायाम को जैसे-तैसे निपटाना पड़ता है।

(२) व्यायाम करते समय श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया अधिक तेज हो जाती है। बड़े भोर वातावरण भी अधिक शुद्ध होता है। हवा में मिट्टी के या अन्य रजकण कम होते हैं। इसलिए हम श्वासोच्छ्वास में निर्मल हवा अधिक मात्रा में ले सकते हैं।

(३) बड़े सबेरे हवा में ओझोन नामक वायु भी अल्प मात्रा में पाया जाता है; वह भी सूर्योदय के बाद अदृश्य हो जाता है। ओझोन, प्राणवायु (Oxygen) का ही सघन रूप है। ओझोन वायु में दहन-क्रिया की शक्ति अधिक प्रमाण में होती है। इसलिए यदि उसे यथेष्ट मात्रा में ग्रहण किया जाय, तो हमारी शारीरिक खराबियों का शुद्धीकरण और भी अच्छी तरह हो जाता है। सोते समय श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया मन्द होने के कारण ओझोन वायु का लाभ अधिक मात्रा में नहीं मिल पाता। फिर यह भी संभव है कि रात्रि में हमारे घर के सभी दरवाजे और खिड़कियाँ खुले न हों या हम मुँह ढँक कर सो गये हों।

(४) सोने के बाद सामान्यतः एक बार तो बड़े सबेरे हमारी नींद अवश्य खुल जाती है; उसी समय हमें निद्रा का त्याग कर देना चाहिए। उस समय शरीर अधिक स्फूर्तिवाला होता है। इसलिए विविध कसरतों में हमारा मन भी ठीक से लग जाता है। रुचिपूर्वक की गई हर प्रवृत्ति विशेष फलदायी होती है। प्रातः-कालीन वातावरण में जो शान्ति होती है वह धीरे-धीरे कम होती जाती है। वातावरण कोलाहलपूर्ण होने पर शान्ति कम होती है और व्यायाम करने में अपेक्षित रुचि नहीं रहती।

(५) एक बार जागने के बाद यदि हम फिर सो जाएँ तो शरीर में आवश्यक स्फूर्ति नहीं रह पाती। देर से उठनेवालों में से अधिकाँश लोगों की यह फरियाद रहती है कि उठने पर शरीर में बिल्कुल स्फूर्ति नहीं होती। इसके विपरीत अधिक आलस्य रहता है। किसी कार्य में उनका मन नहीं लगता। जब किसी काम मे मन नहीं लगता तब अधिकांश समय व्यर्थ ही बरबाद हो जाता है।

(६) बड़े सवेरे वृक्षों, फूलों और पत्तों से जो खुशबू फैलती है वह हमारे मस्तिष्क को अपूर्व उल्लास देती है। वास्तव में प्रातःकाल का वातावरण अत्यंत आह्लादक होता है।

(७) बड़े सबेरे उठकर जल पीने से बवासीर, सूजन, हृदयरोग, बुढ़ापा, मेद-विकार, मूत्रघात, कुष्ठरोग, मस्तिष्क तथा आँख के रोग एवं वात, कफ और पित्तजन्य अन्य रोग होते ही नहीं या नष्ट हो जाते हैं। — भावमिश्र

प्रकृति पर सूर्य का इतना अधिक प्रभाव है कि सवेरे के चार बजे से ही उसका प्रभाव आरंभ हो जाता है। सरोवर में उगे हुए कमल प्रातः चार बजे खिलते हैं। हमारे पूर्वजों ने हृदय को भी कमल ही माना है। हमारा यह हृदय रूपी कमल भी सबेरे चार बजे विकसित होकर खिल उठता है। उस समय हृदय को कार्यरत बना देने से वह सशक्त और निरोगी रहता है। यही

कारण है कि ब्राह्ममुहूर्त में उठनेवालों को हृदय-रोग कदापि नहीं होता और वे दीर्घायु बनकर शतायु की सीमा छूने के भाग्यशाली बनते हैं।

जिनका जन्म महान् बनने के लिए हुआ है ऐसे कई दम्पती सर्व प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध होने पर भी ब्राह्ममुहूर्त में उठने के प्राकृतिक नियम का भंग करके स्वयं के तथा भावी पीढ़ी के सर्वनाश को आमन्त्रित करते हैं। श्री कीर्तिकान्त शाह बड़े दिलचस्प आदमी हैं। वे डबल ग्रेजुएट हैं। साहित्य-पठन के शौक़ के कारण उन्हें रात में देर से सोने की आदत है। फलस्वरूप वे सवेरे नौ बजे उठते हैं। उनकी श्रीमतीजी भी बी.ए., बी. एड्.हैं। वैसे पति-पत्नी हर प्रकार से सुखी हैं, फिर भी उनके जीवन में कहीं कोई उल्लास नहीं है। उनके तीन बच्चे हैं। सभी स्कूल में पढ़ने जाते हैं, किन्तु न तो वे पढ़ने में तेज हैं और न ही खेल-कूद में। हमेशा बीमार और कमजोर ही रहते हैं।

कीर्तिकान्तजी की नींद में विक्षेप न पड़ने पाये, इसके लिए घर के अन्य लोग भी सवेरे जल्दी नहीं उठते। श्रीमानजी प्रतिदिन नौ बजे उठते हैं, चाय पीते हैं, अखबार पढ़ते हैं, हजामत बनाते हैं और फिर शौचकर्म से निवृत्त होते हैं। तब तक दस बज जाते हैं। इसलिए जल्दी-जल्दी स्नानादि से निपट कर कपड़े पहनने लगते हैं और तब तक दफ्तर पहुँचने का समय हो जाता है अतः कपड़े पहनकर तुरंत ही मेज पर खाना खाने के लिए बैठ जाते हैं। उनकी पत्नी भी जल्दी-जल्दी जो कुछ संभव होता है पका डालती है और पतिदेव को भोजन कराती है। पति महाशय दफ्तर चले जाते हैं फिर भी उन्हें वहाँ चैन नहीं मिलता। इसके बाद तुरन्त ही श्रीमतीजी को बच्चों को स्कूल भेजने की तैयारी करनी पड़ती है। उनके कपड़ों, पुस्तकों और नाश्ते की व्यवस्था करते-करते ही बच्चों को स्कूल पहुँचने में देर हो जाया करती है। इसलिए बच्चे भी घबरा उठते हैं। श्रीमतीजी बी. एड्. हैं। बच्चों को किस तरह पढ़ाना-लिखाना चाहिए, यह वे अच्छी तरह

जानती हैं। फिर भी बच्चों को पढ़ाने व संस्कार देने की उन्हें फुरसत नहीं मिलती। माता-पिता दोनों में से किसी के भी पास इतना समय नहीं है कि वे बच्चों को शिक्षा-संस्कार दे सकें। है न आश्चर्य की बात ? माँ-बाप के होते हुए भी ये बच्चे अनाथ बच्चों की तरह पल रहे हैं। समय के अभाव के कारण माता-पिता का स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो जाता है और बच्चों को प्यार के स्थान पर तिरस्कार ही मिलता है। नतीजा यह होता है कि बच्चे लापरवाह और आवारा हो जाते हैं। इस प्रकार देर से उठने की आदत के कारण दम्पती को अपने बच्चों को पढ़ाने या शिक्षा देने का तथा उनमें संस्कार-सिंचन करने का समय ही नहीं मिल पाता। न तो उनके पास तन को स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम सीखने या करने का समय है और न ही मन की शान्ति के लिए ध्यान, धारणा और समाधि का ही समय मिल पाता है। देर से उठने के कारण प्रातःकाल का मूल्यवान समय नष्ट हो जाता है। इस प्रकार तन-मन का लगातार नाश हो रहा है। यह तो हुई हमारे समाज के एक दम्पती की बात। हमारे समाज में ऐसे दम्पती कम नहीं हैं। खैर, आप तो ऐसे दम्पतियों में से नहीं हैं न ? सावधान रहिएगा।

ब्राह्ममुहूर्त में उठने से कितना चमत्कारिक एवं अद्भुत लाभ होता है, इसका एक जीवन्त दृष्टान्त पारसी जाति से प्रस्तुत है :

'जनसत्ता' नामक गुजराती दैनिक पत्र के आद्य संपादक स्व. रमणलाल सेठ से एक समारम्भ में मेरी मुलाकात हो गई। उसी समय तत्कालीन डी. एस. पी. श्री रुस्तम पटेल भी वहाँ आ पहुँचे। वे श्री सेठ के मित्र थे; इसलिए हम लोग साथ में बैठकर वार्तालाप में मशगूल हो गए। तभी श्री सेठ ने श्री रुस्तम पटेल से पूछा, "आपका पारसी समाज बहुत छोटा है, फिर भी आपके समाज के अधिकांश लोग बड़े ऊँचे-ऊँचे पदों पर पाये जाते हैं, इसका क्या कारण है ? कई लब्धप्रतिष्ठ डॉक्टर

पारसी हैं । नानी पालखीवाला जैसे वकालत के क्षेत्र में, नाणावटी जैसे नौ-सेना में, माणेकशा जैसे फौज में तो जमशेदजी टाटा औद्योगिक क्षेत्र में अपना कीर्तिमान स्थापित किये हुए हैं ।"

श्री रुस्तम पटेल ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, " हम पारसी लोग सूर्य के उपासक हैं । अग्नि को ही हम अपना इष्ट देवता मानते है । प्रातःकाल सूर्योदय का समय अर्थात् भगवान सूर्य की सवारी के आगमन की पवित्र वेला है । उस समय सूर्योदय के पूर्व ही सभी पारसी स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर, सुन्दर वस्त्र पहनकर रँगोली सजाकर और घर-द्वार-बैठक आदि सँवारकर भगवान सूर्य का स्वागत करने के लिए तैयार हो जाते हैं । 'भगवान सूर्य की सवारी का अदृश्य रथ अभी हमारे ही घर में प्रविष्ट होगा'—ऐसी धार्मिक भावना के साथ घर के सभी आबालवृद्ध प्रातःकाल छह बजे नित्यकर्म से निवृत्त होकर भगवान सूर्य की सवारी का स्वागत करने के लिए तैयार हो कर घर के दरवाजे पर खड़े रहते हैं । इस धार्मिक भावना के कारण प्रातःकाल के छह बजे तक घर का प्रत्येक सदस्य नित्यकर्म से निपट जाता है और उसे सुबह का पर्याप्त समय मिल जाता है । माता-पिता भी बच्चों में पूर्ण रुचि ले सकते हैं । इस कारण बच्चों को भी माता-पिता का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है और उनमें माता-पिता के संस्कारों का सिंचन होता है । प्रातःकाल में माता-पिता अपने बच्चों को चित्र-कला, इतर वाचन, समाचार-पत्र का पठन, सिलाई-काम और गूँथने-पिरोने आदि के लिए प्रेरित कर सकते हैं । प्रत्येक पारसी बालक को अपनी रुचि के विषय में विशेष अध्ययन के लिए प्रातःकाल के लगभग चार घण्टों का समय मिल जाता है । यही कारण है कि प्रत्येक पारसी अध्ययनशील होता है । अपनी रस-रुचि के विषय में वह सदा ही आगे रहता है । गृहणियों को भी बुद्धिपूर्वक भोजन बनाने और नाश्ता आदि के आयोजन के लिए भी पर्याप्त समय मिल जाता है ।

भगवान सूर्यनारायण की उपस्थिति में भला हम कैसे सो सकते हैं? यह धार्मिक भावना सभी पारसियों में है। सभी इस भावना का हृदय-पूर्वक पालन भी करते हैं और यही कारण है कि वे प्रातःकाल के सुनहरे समय का सर्वाधिक सदुपयोग करते हैं।

शारीरिक, मानसिक और आत्मिक – यह त्रिविध और परिपूर्ण 'स्वस्थ जीवन' मनुष्य की अन्य किसी भी सिद्धि या उपलब्धि की अपेक्षा अधिक बढ़कर और महत्त्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में स्वस्थ तन, स्वस्थ मन और स्वस्थ बुद्धि परमात्मा की ओर से मानव को प्राप्त उत्तमोत्तम उपहार हैं।

इस प्रकार की यह त्रिविध परिपूर्ण स्वस्थता की उपलब्धि हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, किन्तु यदि हम इसके लिए अपेक्षित मूलभूत आवश्यकताओं के निर्वाह में यथार्थतः ईमानदार नहीं रहेंगे तो हमारा यह सहज-सरल-पवित्र अधिकार मृगजल की भाँति हमसे निरन्तर दूर ही दूर भागता रहेगा।

५. शरीर का रक्त सदा गतिशील रखिए

सर्व प्रथम हम आयुर्वेद के महर्षियों के वचनों का स्मरण करें। महर्षि वाग्भट्ट कहते हैं –

"कसरत करने से शरीर हल्का और फुर्तीला रहता है, कार्य-शक्ति बढ़ती है, अग्नि प्रदीप्त होती है और मेद-वृद्धि नहीं होती।"

'भावप्रकाश' का विधान है –

"कसरत करने से जिनके अवयव दृढ़ हो गए हों उन्हें कभी कोई रोग नहीं होता। विशुद्ध अथवा ठीक से न पचनेवाला अन्न भी व्यायाम से पच जाता है। कसरत करनेवाले व्यक्ति के शरीर में शिथिलता नहीं आती और न वृद्धावस्था ही जल्दी आती है। कसरत तन और मन दोनों के लिए स्वास्थ्यकर है।"

शरीर-संरचना में रक्त का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। रक्त ही प्राण है। रक्त का यह प्राणतत्त्व ही शरीर के प्रत्येक अवयव की खूराक है, उसका जीवनाधार है। इसलिए शरीर में स्थित रक्त को व्यायाम या श्रम के द्वारा निरंतर गतिशील बनाए रखें। निरंतर बहते रहने के कारण नदी का जल स्वच्छ और पेय होता है। बहते पानी में कभी कीटाणु उत्पन्न नहीं होते, जब कि तालाब या हौज के स्थिर पानी में कीटाणु या सडाँध आदि विकृतियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। तालाब के पानी में काई जम जाती है, अनेक जीव-जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं और अन्त में पानी सड़कर बदबू मारने लगता है।

नदी के जल की भाँति हमें अपने शरीर के रक्त को भी सतत गतिशील बनाए रखना चाहिए। शरीर के जिस हिस्से में रक्त-परिभ्रमण नहीं हो पाता या स्थगित हो जाता है, वहाँ विकृति या सड़न

शुरू हो जाती है और फलस्वरूप अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अतः निरोगी बने रहने के लिए शरीर में स्थित रक्त को निरंतर गतिशील रखना अत्यावश्यक है। रक्त की इस गतिशीलता को 'रुधिराभिसरण' या 'रक्ताभिसरण' कहते हैं।

दौड़ने की क्रिया करने से श्वासोच्छ्वास में वृद्धि होती है। फेफड़ों को गहराई से श्वास लेना पड़ता है। रुधिराभिसरण की क्रिया में तेजी आ जाती है। नाड़ी के स्पन्दन बढ़ते हैं। शरीर में ऊष्मा उत्पन्न होने के कारण अंगोपांग गर्म हो जाते हैं। इस प्रकार दौड़ने की क्रिया से पैरों के स्नायुओं को हलन-चलन के कारण जो श्रम पड़ता है उसके कारण रुधिर के परिभ्रमण या कि रक्ताभिसरण की क्रिया में वेग तथा जोश उत्पन्न होता है। इस क्रिया को हमारे वैज्ञानिकों ने कसरत या 'व्यायाम' नाम दिया है। व्यायाम या श्रम शरीर के रक्त को गतिशील बनाए रखने का कार्य करता है।

इस प्रकार जीवन शरीर के दो महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर आधारित है:(१) प्राणतत्त्व को धारण करनेवाला गतिशील रक्त और (२) रक्त को निरंतर गतिशील रखनेवाली क्रिया अर्थात् व्यायाम। व्यायाम के अभाव में प्राणतत्त्वयुक्त रक्त स्थगित हो जाता है और तालाब के स्थिर पानी की भाँति वह गंदा हो जाता है। इस अवस्था को हम 'मृत्यु' कहते हैं।

श्रमयुक्त हलन-चलन से रक्ताभिसरण भली-भाँति होता है। रक्ताभिसरण अपने आप नहीं होता, इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को स्नायुओं में स्पन्दन उत्पन्न करनेवाला व्यायाम करना पड़ता है।

इससे सिद्ध होता है कि शरीर में रुधिर और व्यायाम समान रूप से आवश्यक हैं। रुधिर या व्यायाम के बिना जीवन संभव नहीं है। व्यायाम तो निरोगी जीवन की जड़ीबूटी है।

जिस प्रकार झूले में धक्का लगने से गति आती है, इसी प्रकार रुधिराभिसरण की क्रिया को निरंतर गतिशील बनाए रखने के लिए धक्के की जरूरत पड़ती है। अपनी-अपनी जीवनी-शक्ति के अनुसार हल्की या भारी कसरत यथाशक्ति अवश्य करें।

प्रकृति ने बालक में कुछ विशेष मात्रा में चेतना रखी है। बालकों और किशोरों को अधिक व्यायाम की आवश्यकता रहती है। उन्हें अपने शरीर का विकास और गठन करना होता है। इसीलिए उन्हें अधिक रक्त की आवश्यकता पड़ती है। यही कारण है कि उन्हें प्रकृति ने भी विशेष चेतनायुक्त बनाया है। बालक लगातार खेल-कूद में व्यस्त रहकर हलन-चलन करता रहता है। यहाँ तक कि चार-छह महीनों का शिशु भी बिस्तर में पड़ा-पड़ा हाथ-पैर हिलाता और किलकारियाँ भरता रहता है। प्रकृति शिशु के द्वारा इस प्रकार हाथ-पैर हिलाने का व्यायाम क्यों करवाती है ? कारण यह है कि छोटे बच्चों के लिए भी व्यायाम अनिवार्य है, अन्यथा रक्ताभिसरण की गति में मंदता आ जाने से बालक के रोगग्रस्त हो जाने की संभावना है। बालक की नाड़ी के स्पन्दन वयस्क व्यक्ति के नाड़ी के स्पन्दनों की अपेक्षा अधिक होने चाहिए; क्योंकि वयस्क व्यक्ति को केवल उतना ही प्राण-तत्त्व प्राप्त करना होता है जितना दिनभर में व्यय होता है। जबकि बालक को तो शारीरिक विकास और गठन करना होता है। बालक को अधिक प्रमाण में प्राणतत्त्व (रक्त) चाहिए। अतः प्रकृति ने उसमें रुधिर की गति वयस्कों की अपेक्षा अधिक रखी है।

नाड़ी के स्पन्दन :

१ से ५ वर्ष की उम्र के बालकों की नाड़ी के स्पन्दन १३५ से १०० के बीच होते हैं। उम्र बढ़ने के साथ वे घटते जाते हैं। ५ से २० वर्ष की उम्र में नाड़ी के स्पन्दन घटकर ७५ हो जाते हैं। अन्त में, वयस्क मनुष्य की नाड़ी के स्पन्दन घटकर ७०—७२ रह जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि प्रौढ़ मनुष्यों की अपेक्षा नौजवानों और बच्चों को व्यायाम की विशेष आवश्यकता होती है। यही कारण है कि वे निरंतर खेलने-कूदने में व्यस्त रहते हैं। बालक प्रौढ़ मनुष्य की भाँति कभी शांत स्थिर नहीं बैठता। उसके शरीर को अधिक व्यायाम की आवश्यकता है। इसीलिए तो प्रकृति ने उसे विशेष प्रमाण में चेतना प्रदान की है। यही कुदरत का कानून है। जीवित रहने के लिए, रक्त को गतिशील बनाए रखने के लिए कसरत अनिवार्य है।

६. भोजन के जितना ही व्यायाम भी महत्त्वपूर्ण

जीवन-निर्वाह के लिए मनुष्य को जितनी आवश्यकता भोजन की है, जीवन को स्वस्थ–निरोगी रखने के लिए उतनी ही आवश्यकता व्यायाम या कसरत की भी है । बुढ़ापे को दूर ठेलने के लिए कसरत अत्यावश्यक है । कसरत से कसा हुआ शरीर बड़ी उम्र तक जीर्ण नहीं होता । व्यायाम–वीर का शरीर शक्ति और चैतन्य से परिपूर्ण रहता है । उसका जीवन आनन्दोल्लास से भरपूर रहता है । कसरती व्यक्ति अपने जीवन का सर्वतोमुखी विकास कर सकता है ।

कसरत से स्नायु कस जाते हैं; दृढ़ और मजबूत बनते हैं । कसरत के कारण ही वे पुष्ट होकर, कसकर बढ़ते हैं : कसरत से शरीर स्नायु-बद्ध होता है और दीर्घकाल तक स्वस्थ और कार्यक्षम रहता है । देह-धर्म-विद्या के एक निष्णात अध्यापक का कथन है : "Food is making blood. Exercising is distributing blood. Breathing is purifying blood." अर्थात् "भोजन पचने से रक्त बनता है, व्यायाम से शरीर के सभी अंगों को रक्त पहुँचता है और श्वसनक्रिया से रक्त शुद्ध होता है ।"

शरीरशास्त्र के निष्णातों ने शरीर–यंत्र की तीन प्रमुख क्रियाएँ बताई हैं : (१) भोजन का रक्त में रूपांतरण, (२) व्यायाम के द्वारा रक्त को गति में रखना और (३) श्वासोच्छ्वास से रक्त का शुद्धीकरण । संक्षेप में आहार पचने से रक्त-वृद्धि होती है, व्यायाम से 'रक्ताभिसरण' होता है और श्वसनक्रिया से 'रक्त-शुद्धि' होती है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचारने पर हमें ज्ञात होगा कि ये तीनों अलग–अलग दिखनेवाली

क्रियाएँ वस्तुतः एक ही क्रिया है। अथवा यों भी कह सकते हैं कि एक क्रिया से तीनों क्रियाएँ सिद्ध होती हैं। जैसे, व्यायाम से आहार के पचने का कार्य अच्छी तरह होता है, श्वसन-क्रिया वेग से चलती है, फेफड़ों में अधिक मात्रा में हवा प्रविष्ट होती है, जिससे रक्त-शुद्धि की क्रिया सतेज बनती है। रुधिराभिसरण की क्रिया को गति मिलने से प्रत्येक स्नायु को रक्त रूपी आहार पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है और नसों में विजातीय तत्त्वों की जमावट नहीं होने पाती। इससे स्पष्ट है कि शरीर-यन्त्र को निरोगी एवं कार्यरत रखने के लिए व्यायाम अत्यावश्यक है।

शरीर के विभिन्न भागों में स्थित छोटे-बड़े स्नायुओं की कार्य-प्रणाली का प्राथमिक ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। यह जानना भी आवश्यक है कि कसरत से संकोच, विकास और दबाव होने से स्नायुओं का एक–दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है। सभी प्राणधारक अवयव स्नायुओं से ही बने हुए हैं और वे न्यूनाधिक मात्रा में एक-दूसरे पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए धीरे-धीरे चलने से जठर और आँतों को पाँच प्रतिशत व्यायाम मिलता है, जबकि तेज चाल से उन्हें दस प्रतिशत व्यायाम मिलता है। दौड़ने से पैरों, पिंडलियों, रानों (जाँघों) और कमर के स्नायुओं को अधिक कसरत मिलती है। तात्पर्य यह है कि स्नायुओं का संकोच–विस्तार जितना ही अधिक जलद होगा, कसरत भी उतनी ही अधिक होगी। चलने से पेट और पेड़ू को केवल पाँच प्रतिशत व्यायाम मिल पाता है। इसलिए पेट की मेदवृद्धि के रोग में केवल चलने या तेज चलने से कोई लाभ नहीं होता। उल्टे, अधिक चलने से तो थकावट लगती है, फलस्वरूप अधिक भूख लगती है और अधिक आहार लेने से पेट के मेद में वृद्धि होती है। परंतु मेद घटानेवाली सामान्य कसरतें करने से पेट का मेद कम किया जा सकता है। इसी प्रकार मुगदर घुमाने या भारोत्तोलन (Weight-lifting)

जैसी भारी कसरतों से पेडू को दस प्रतिशत व्यायाम मिलता है, जबकि यकृत को कोई विशेष कसरत नहीं मिल पाती ।

प्राणधारक अवयवों को सामान्य तरीके से ही कसें । उन्हें सुदृढ़ बनानेवाली कसरतें करें, ताकि ये प्राणधारक अवयव आवश्यक संकोच-विकास का व्यायाम पाकर रक्ताभिसरण की क्रिया का भलीभाँति निर्वाह कर सकें और सदा स्वस्थ रह सकें । स्नायु की कार्य--प्रणाली समझकर सम्बन्धित अवयव के लिए आवश्यक व्यायाम का आयोजन करना पड़ता है । जैसे, बीमार अंग का इलाज विशेष रूप से होना चाहिए अर्थात् उसके लिए आवश्यकतानुसार कसरतों का आयोजन करना चाहिए । बिना सोचे-समझे कोई भी कसरत करने से सम्बन्धित अवयव को अपेक्षित कसरत का लाभ नहीं मिल पाता । उदाहरण के लिए यकृत के लिए आठवें अध्याय में निर्दिष्ट प्रमुख कसरतों में से आसन नं. २ और ३ करने से जरूरी व्यायाम मिल जाता है । इसी प्रकार प्रत्येक प्राणधारक अवयव के लिए शरीरशास्त्र के विद्वानों ने विभिन्न प्रकार की कसरतों का आयोजन किया है ।

किशोर और युवक भारी कसरत कर सकते हैं । उनके लिए ऐसी कसरतें आवश्यक हैं । उन्हें तो अपने शरीर को सुगठित करना है । भारो-त्तोलन, मुक्काबाजी, फुटबॉल, हॉकी, लम्बे अन्तरवाली मेरेथन दौड़ जैसी भारी श्रमवाली कसरतें नवयुवकों के लिए अपेक्षित हैं । प्रत्येक युवक को चाहिए कि वह इस प्रकार की भारी कसरतों में दिलचस्पी ले ।

जिनकी उम्र भारी व्यायाम करने के योग्य न हो, उनके लिए योगासन लाभप्रद हैं । अर्थात् युवावस्था में भारी व्यायाम तथा प्रौढ़ा-वस्था और वृद्धावस्था में योगासन लाभप्रद हैं ।

जिन्होंने कभी भारी व्यायाम या योगासन किये ही नहीं, उनके लिए इस पुस्तक के आठवें अध्याय में कुछेक कसरतों का निर्देश किया गया है। ये कसरतें सभी के लिए हैं। पचास वर्ष से अधिक उम्र-वाले स्त्री-पुरुषों को भी आजीवन ये कसरतें करनी चाहिए। ये कसरतें अत्यन्त सादी, सरल और प्रभावकारी हैं। वर्षों के प्रयोग और संशोधन के वाद ये कसरतें प्रस्तुत की गई हैं। इन कसरतों के लिए न तो आप को किसी साधन की आवश्यकता है और न ही कुछ खर्च करने की। केवल बीस मिनट तक बिस्तर में लेटे-लेटे ही ये कसरतें करनी हैं। ताजगी, तन्दुरुस्ती और सौ वर्ष की आयु प्रदान करनेवाली ये कसरतें कुदरत की अमूल्य भेंट है। तनिक भी प्रमाद किये बिना और समय बरवाद किये विना आज से ही आप ये कसरतें करना शुरू कर दें।

व्यायाम के प्रखर समर्थक और व्रतधारी श्री मगनलाल व्यास का दृष्टान्त यहाँ उल्लेखनीय है। आप बम्बई के प्रसिद्ध वकील हैं। अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के आप सर्वेसर्वा हैं और स्व. वीर सावरकर के अनन्य भक्त हैं। स्व. वीर सावरकर व्यायाम, व्यायाम-शाला और सैनिक-शिक्षा आदि के भारी समर्थक थे। वीर सावरकर के अनन्य भक्त श्री मगनभाई व्यास ने तीस वर्ष की अवस्था से ही व्यायाम का व्रत लिया था।

इस समय मगनभाई की उम्र ७१ वर्ष है, किन्तु आज भी वे शीर्षासन-सर्वांगासन और अन्य कसरतें किया करते हैं। इतनी बड़ी उम्र में भी उन्हें पढ़ने के लिए ऐनक की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके सभी दाँत सुरक्षित हैं। वे कभी बीमार नहीं हुए। आज भी वे प्रतिदिन अपने शरीर से दस-बारह घण्टे काम ले सकते हैं। वस्तुतः यह व्यायाम का ही प्रभाव है!

इस ग्रंथ में निर्दिष्ट कसरतें पूर्णतः संशोधित और स्वयं अनुभूत हैं। साठ वर्ष की उम्रवाले लोग भी ये कसरतें कर सकते हैं। इन कसरतों से न तो दम फूलता है और न ही नाड़ी के स्पन्दन वढ़ते हैं। बड़े आराम के साथ ये कसरतें की जा सकती हैं। प्रत्येक पाठक यह विश्वास रखे कि इन कसरतों को अपनाने से कोई भी हानि या भय नहीं है, प्रत्युत् लाभ ही है।

शरीर की अधिकांश व्याधियाँ मानव के असंगत आहार से जन्म लेती हैं। यदि षड्रसयुक्त पोषक आहार पथ्यापथ्य का विवेक रख कर ग्रहण किया जाय तो किसी भी प्रकार की व्याधि का भय रखने की आवश्यकता नहीं है। वात, पित्त और कफ -- इन तीनों प्रकार के उपद्रवों से निरंतर वचने के लिए समय-समय पर मधुर, कटु, तिक्त, कषाय, अम्ल और लवण -- इन छहों रसों का प्रमाण अपनी प्रकृति के अनुसार विवेक-बुद्धि से निश्चित करते रहना चाहिए।

७. कसरत के सामान्य नियम

सर्वप्रथम व्यायाम के किसी निष्णात से तत्सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए कि कौन-सी कसरत कब और किस प्रकार करनी चाहिए। इसके बाद ही कसरत प्रारम्भ करें। अच्छी तरह समझे बगैर की गई कसरत से लाभ के स्थान पर हानि होने की ही संभावना विशेष होती है। इसी सम्बन्ध में हम अपने पाठकों का ध्यान निम्न-लिखित मुद्दों की ओर आकर्षित करते हैं :

(१) केवल घूमने जाने की कसरत करने से तोंद का मेद कम नहीं होता। इसके लिए मेद कम करने की वैज्ञानिक कसरतें करें। तोंद का मेद उतारने के लिए निर्दोष और विधिपूर्वक की कसरतें अपनाइए और अपेक्षित लाभ प्राप्त कीजिए।

(२) दौड़ने की या अन्य भारी कसरतें करने से कई लोगों को हानि होती है। यदि संधिवात का रोगी इस प्रकार की कसरत करता है तो नसों पर दबाव आने से विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। बिना समझे किया गया व्यायाम खतरे से खाली नहीं है।

(३) चलने, दौड़ने, तैरने और कूदने की—सभी कसरतें अच्छी हैं, यह निर्विवाद है। किन्तु जिनके दिल कमजोर तथा अन्य अंग अत्यन्त सुकुमार हैं उनके लिए ये कसरतें अनुकूल नहीं हैं। इन कसरतों से उन्हें भारी थकावट लगने, दिल की धड़कनों के बढ़ जाने और क्वचित् मूर्च्छित हो जाने का भय रहता है। अतः किसी गुरु या उस्ताद के मार्ग-दर्शन या उनकी उपस्थिति के अभाव में ऐसी श्रमसाध्य कसरतें कभी न करें।

श्रीमान् शरदकुमारजी का शरीर काफी स्थूल था। शरीर की स्थूलता कम करने के उद्देश्य से उन्होंने रोज प्रातःकाल उठकर डण्ड-

वैठक, दौड़, मुगदर घुमाना आदि कसरतें शुरू कर दीं। साथ ही वजन कम करने के लिए वे कम खाते और कभी-कभी उपवास करते। इससे उन्हें वहुत ही अशक्ति का अनुभव होने लगा।

शरदकुमारजी का यह ढंग विल्कुल अवैज्ञानिक था। जिसने कभी कोई कसरत की ही न हो, उसे ऐसी भारी और श्रमसाध्य कसरतों से आरम्भ नहीं करना चाहिए। परन्तु जानकार व्यक्ति की सहायता से अनुकूल कसरतें करने से अपेक्षित लाभ होता है। शरदकुमारजी ने भी अपनी भूल सुधारकर व्यायाम के जानकार व्यक्ति के मार्गदर्शन में जब व्यवस्थित कसरतें शुरू कीं; तव उन्हें अपेक्षित लाभ हुआ।

(४) व्यायाम के लिए हवा और प्रकाश की सुविधावाला कमरा पसन्द करना चाहिए। कसरत करते समय कोई व्यक्ति उस कमरे में आने न पाए; इसका प्रबन्ध करें। सर्वप्रथम फर्श पर शतरंजी विछा-कर उस पर कोई स्वच्छ तौलिया विछा दें। इस प्रकार आराम-देह विस्तर पर प्रसन्न मन के साथ कसरतें शुरू करें। प्रातःकाल उठते ही कसरतें करना विशेष अनुकूल रहेगा। शौच-क्रिया से निपटकर कुल्ला-दातून करके कसरत का शुभ प्रारम्भ करें। वैसे आप चाहें तो स्नान करने के वाद भी कसरत कर सकते हैं। किन्तु प्रातःकाल की नित्यक्रियाओं में अधिक समय न गँवा कर यथासंभव जल्दी कसरत कर लेनी चाहिए, ताकि सूर्योदय के पश्चात् आपके दैनिक कार्य उसमें विघ्नरूप न हों।

(५) कसरत करने की इच्छा होने पर अपनी शक्ति का अनुमान लगाकर तदनुसार प्रारंभ करें। वीमार व्यक्तियों को तो आराम का ही विशेष ध्यान रखना चाहिए और प्राकृतिक जीवन जीने की दिशा में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

(६) एक कसरत का ज्ञान हो जाने के वाद दूसरी कसरत करनी चाहिए। एक का पूरा अभ्यास होने के बाद ही दूसरी का प्रारंभ करें।

सभी कसरतें एकसाथ करने की जल्दबाजी कभी नहीं करनी चाहिए। शक्ति के अनुसार ही कसरत करें। शारीरिक शक्ति और समय की मर्यादा का ध्यान रखकर कसरत का आयोजन करें। यदि आप के पास पर्याप्त समय है तो मालिश करने के बाद ही कसरत करें।

(७) कसरत करते समय मन को हर्षोल्लास में रखिए। प्रसन्न-चित्त से कसरत शुरू करें। अपने गुरुमंत्र का स्मरण भी करते रहना चाहिए। इससे कसरत में एकाग्रता आएगी और मन कहीं अन्यत्र नहीं भटकेगा। कसरत के साथ मन को जोड़ने से निश्चय ही अपेक्षित परिणाम प्राप्त होगा।

(८) कसरत करते समय कमरे की खिड़कियाँ और दरवाजे खुले रखिए और वाहर की स्वच्छ हवा कमरे में आने दीजिए।

(९) श्वासोच्छ्वास की क्रिया नाक से ही हो। मुँह बन्द रखें। नाक और गला भी साफ रखें।

(१०) लम्बी और गहरी साँसें लें। इससे शरीर में स्फूर्ति उत्पन्न होगी और थकान नहीं लगेगी।

(११) कसरतें कितनी बार की हैं, इसकी निश्चित गिनती रखनी चाहिए।

(१२) कसरतें करने के बाद स्वच्छ तौलिये से शरीर रगड़कर पोंछ डालें। लगभग आधे घण्टे के बाद शीतल पानी से स्नान करना चाहिए। जाड़े की ऋतु में ठण्डे या साधारण गर्म जल से भी स्नान करें। नहाने के तुरन्त बाद भी कसरतें की जा सकती हैं।

(१३) कसरत करते समय शरीर को हवा का सीधा झोंका न लगे यह ध्यान रखें।

(१४) कसरतें करते समय शरीर के किसी भी जोड़ को उसके कुदरती मोड़ के अनुसार ही मोड़ना चाहिए। कभी उल्टे या तिरछे मोड़ देने का प्रयत्न न करें।

(१५) सामान्यतः कसरत करते समय आँखें बन्द रखनी चाहिए। ऐसा करने से कसरत की क्रिया में एकाग्रता आएगी तथा आँखों के तेज और शक्ति में वृद्धि होगी। लेटे-लेटे की जानेवाली कसरतों में यदि ऊपर खुला आकाश हो तो सुदूर आकाश की ओर देखने के लिए आँखें खुली रखी जा सकती हैं।

(१६) कसरत करते समय शरीर के जिस अंग को कसरत देनी हो, उसका 'ध्यान-बिन्दु' निर्धारित करना चाहिए। इस 'ध्यान-बिन्दु' की साधना से कसरत करते-करते इच्छा-शक्ति जागृत होती है और अपेक्षित परिणाम प्राप्त होता है। इसलिए कसरत करते समय ध्यान-बिन्दु पर पर्याप्त लक्ष्य दें। भिन्न-भिन्न कसरतों में भिन्न-भिन्न ध्यान-बिन्दु निर्धारित करना चाहिए।

(१७) छुट्टी के दिन या जिस दिन आपके पास पर्याप्त समय हो उस दिन पूरे शरीर में आराम से मालिश करने के बाद कसरत करें।

(१८) रात में यदि नींद न आती हो तो बिस्तर पर लेटे-लेटे कसरत करें। साथ ही सिर और ललाट को धीमे हाथों से थपथपाना चाहिए। इस क्रिया से शीघ्र ही नींद आ जाएगी।

८. प्रमुख कसरतें

इस अध्याय में वर्णित सभी कसरतें आप बिस्तर में लेटे-लेटे ही कर सकते हैं। फर्श पर बिस्तर के स्थान पर एक शतरंजी बिछाइए, फिर उस पर चार तहों में मुड़ा हुआ कम्बल रखिए। उस पर स्वच्छ चादर बिछाकर कसरत शुरू कीजिए। यहाँ प्रस्तुत सभी कसरतें शरीर की कष्टरहित हालत में करनी हैं। आँखें बन्द रखकर प्रत्येक कसरत के ध्यानबिन्दु पर लक्ष्य केन्द्रित करने से श्रम में एकरागता आएगी और आँखों का तेज बढ़ेगा। बन्द आँखें शक्तिप्रद हैं। इसलिए कसरत करते समय आँखें बन्द रखनी चाहिए।

आसन नं. १
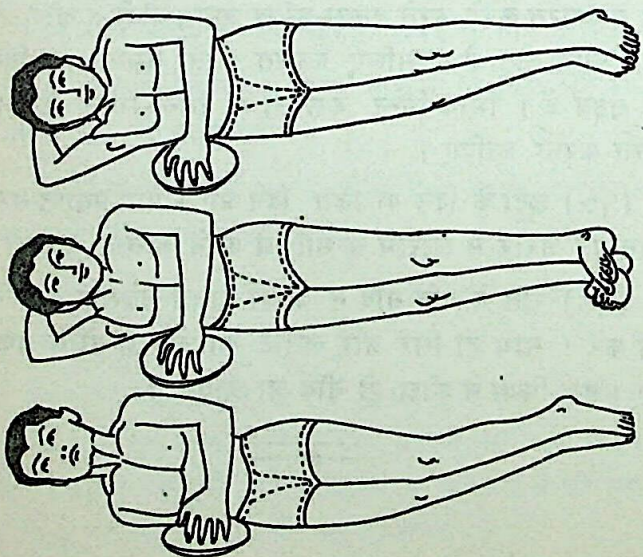
[आकृति – १ : आसन नं. १]

दोनों पैर सीधे रखकर करवट पर लेट जाइए। एक पर दूसरा इस प्रकार दोनों पैर सटाकर यह कसरत करनी चाहिए। न तो पैरों को अलग रखना है और न ही उन्हें मोड़ना है। विना मोड़े दोनों पैरों को एक साथ ऊपर उठाइए। जितना ऊपर उठा सकें उतना उठाइए। इस स्थिति में पैरों को ५० सेकण्ड तक उठाये रखिए। इसके बाद पैरों को पुनः मूल स्थिति में ले आइए। इसी प्रकार करवट पर लेटे-लेटे ही दोनों पैरों को सटाकर ऊपर उठाइए और पीछे की ओर ले जाइए। इस स्थिति में दोनों पैरों को पचास सेकण्ड तक रखिए। इसके बाद पुनः मूल स्थिति में आ जाइए।

इसी प्रकार करवट के बल लेटे-लेटे ही दोनों पैरों को ऊपर उठाइए और आगे की ओर ले जाइए। इस स्थिति में पैरों को पचास सेकण्ड तक रखिए और फिर मूल स्थिति में आ जाइए।

उपर्युक्त कसरतें करने के बाद करवट वदलिए और फिर उसी कसरत का पुनरावर्तन कीजिए।

इस कसरत का ध्यानबिन्दु पेडू है, अर्थात् पेडू की ओर ध्यान केन्द्रित करके उक्त कसरत दो से दस बार करनी चाहिए।

कसरत के इस प्रयोग से शरीर की दोनों करवटों को खींच-तान का व्यायाम मिलता है; साथ ही कटि-प्रदेश के समस्त अवयवों को संकोच—विकास और दवाव का व्यायाम मिलता है। फलस्वरूप अवयव सुडौल और सुगठित बनते हैं। दुबले-पतले अंगों में रक्त-संचार होता है और वजन में वृद्धि होती है। इस कसरत के प्रयोग से कटि-प्रदेश की स्थूलता कम होती है, शरीर सुडौल बनता है और चाल तेजस्वी हो जाती है। इस कसरत से रीढ़ की हड्डी को खींच-तान का व्यायाम मिलने से कमर का शूल या दर्द तुरंत अदृश्य हो जाता है।

वर्षाऋतु की नमी के कारण एक बार लेखक को रात में अचानक कमर में दर्द उठा। प्रातःकाल आसन नं. १ करते ही दर्द एकदम काफूर हो गया और कमर यथावत् स्वस्थ हो गई।

आसन नं. २
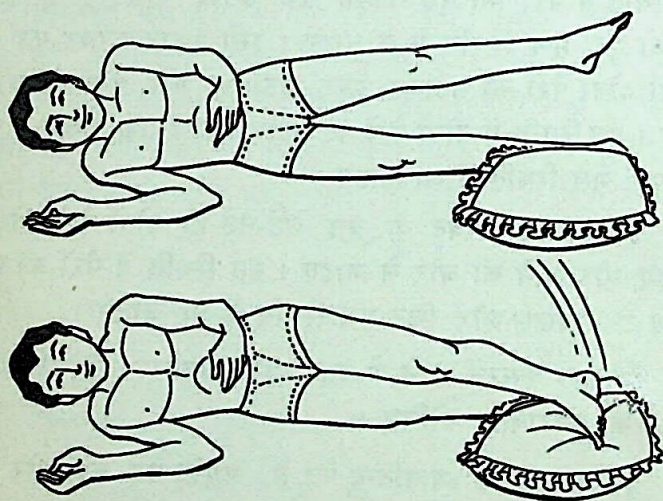
[आकृति २ : आसन नं. २]

बायीं ओर करवट लेकर एक पैर पर दूसरा पैर रखकर लेट जाइए। पैर के आगे एक तकिया रखिए। फिर बायें पैर को उसी अवस्था में एकदम सीधा रखकर दाहिने पैर को मोड़े बगैर यथाशक्ति ऊपर की ओर उठाइए। इसके बाद दायें पैर को कुछ आगे की ओर ले जाकर पूरी शक्ति से तकिये पर इस तरह पछाड़िए जैसे आप किसी को लात मार रहे हों। इस प्रकार बार-बार पैर को ऊपर उठाकर दसेक बार पछाड़िए। इसके बाद दायें पैर को पहले की तरह ऊपर की ओर उठाते हुए यथाशक्ति आगे की ओर झुकाइये और पचास सेकण्ड तक

उसी स्थिति में स्थिर रखिए। इसके बाद ठीक इसी प्रकार पैर को पीछे की ओर झुकाइये और पचास सेकण्ड तक उसी स्थिति में रखिए। अन्त में दायीं करवट लेटकर ऊपर बताये अनुसार बायें पैर की कसरतें करें।

इस कसरत की हलन-चलन की क्रिया की संख्या में यथाशक्ति वृद्धि करते जाएँ।

इस कसरत का ध्यानबिन्दु 'यकृत' (लीवर) है। इस कसरत से यकृत को संकोच-विकास-दबाव का श्रम मिलने से उसे अपेक्षित स्वास्थ्य प्राप्त हो जाता है।

इस कसरत को करनेवाला यकृत की विकृति से उत्पन्न होनेवाली मधुप्रमेह, पीलिया, चर्मरोग आदि बीमारियों का शिकार नहीं होता और यदि ये रोग हों तो उनमें आराम मिलता है और दीर्घकाल में मिट जाते हैं।

आसन नं. ३

यह कसरत चित लेट कर करनी है। सबसे पहले पेट की मालिश करें। पेट के अवयवों की भिन्न-भिन्न ढंग से मालिश करने के बाद निम्नलिखित कसरतें करें।

(क) श्वास को सम स्थिति में रखकर दोनों हाथों से धीमे-धीमे दो मिनट तक पेट की मालिश करें। इसके बाद एक मिनट तक
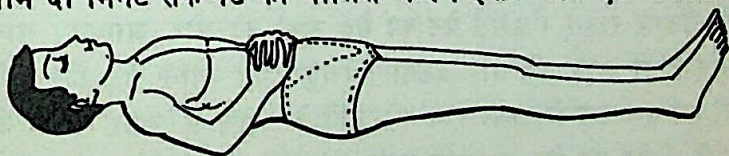
ऊपर से नीचे की ओर पेट की मालिश करें। अब दोनों हाथों की उँगलियाँ परस्पर फँसा कर दबाव के साथ मालिश करें। दोनों हथेलियों से आमने-सामने दबाव देकर घर्षण का व्यायाम एक मिनट तक दें।
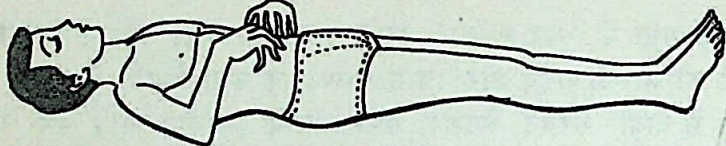
(ख) इसके बाद हल्के से दोनों हाथों की उँगलियाँ पेट में दबाएँ, ताकि पेट के भीतरी अवयवों को संकोच-विकास-दबाव का व्यायाम प्राप्त हो सके। यह क्रिया करते समय पेट ढीला रहे और श्वास-क्रिया सम स्थिति में रहे।
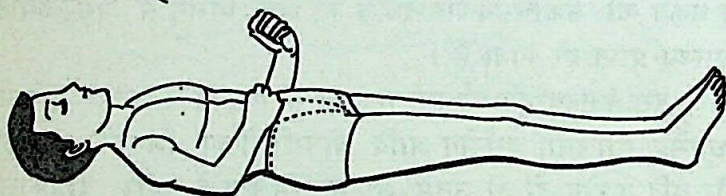
[आकृति ३ : आसन नं. ३]

(ग) तत्पश्चात् पेट के स्नायुओं को तंग करके दोनों हाथों की मुट्ठियों से थपथपाने की क्रिया करें, मतलब कि मुट्ठियों से पेट के तंग स्नायुओं को आहिस्ता-आहिस्ता ठोंकिये।

अब दोनों घुटने ऊपर कीजिए। दोनों पैरों की एड़ियों को गुदा के पास सटाकर जमीन पर रखिए और दोनों घुटने आकाश की ओर ऊपर उठाये रहिए। इससे पेट का मेद ऊपर की ओर आएगा; साथ ही यक्कृत भी ऊपर की ओर उठेगा। (यक्कृत का स्थान पेट की दायीं ओर, अन्तिम पसली तथा रान की हड्डी के बीच में जठर की दायीं ओर है।) पेट का मेद व यक्कृत ऊपर उठा हुआ हो उस अवस्था में आकृति ३ (ग) में बताए अनुसार सहन हो सके इतने जोर के साथ अपने हाथों से थपथपाइये।

इस कसरत से पेट और आँतों के स्नायुओं को एवं रक्ताभिसरण की गति को त्वरित वेग मिलता है। आवश्यक रक्तप्रवाह प्राप्त हो जाने से शिराएँ और केशवाहिनियाँ भी बड़ी पुष्ट और मजबूत बनती हैं। (पेट और आँतें भी स्नायुओं से ही निर्मित हैं।)

हमारे मित्र श्री कृष्णकान्त देसाई की २८ वर्ष की पुत्री का शरीर यकृत की खराबी के कारण बिल्कुल कृश और दुर्बल हो चुका था। सदा बीमार जैसी लगती थीं। उनके इसी अस्वास्थ्य के कारण उनकी शादी भी न हो पाई थी। समाज में उनके रोगिष्ठ होने की हवा फैल गई थी। एक बार श्री देसाई ने मेरे सम्मुख दुःख व्यक्त किया। मैंने दक्षावहन को सीख देते हुए कहा कि महात्मा गाँधी ने अपने ग्रंथ 'आरोग्य की कुंजी' में हम सबके लिए और विशेषतः आप जैसों के लिए लिखा है: "बीमारी मनुष्यमात्र के लिए लज्जास्पद बात होनी चाहिए। बीमारी किसी न किसी दोष की सूचक है। जिसके तन-मन सर्वदा स्वस्थ हैं उन्हें कभी कोई बीमारी हो ही नहीं सकती।"

हमारी सीख से दक्षाबहन में आवश्यक हिम्मत आई और उनमें इच्छाशक्ति जागृत हुई। हमने इस पुस्तक में निर्दिष्ट प्रमुख कसरतें और विशेषतः आसन नं. ३ प्रतिदिन दो वार सुबह-शाम उनसे कराए। १५-२० दिनों में वे स्वस्थतापूर्वक सभी कसरतें करने लगीं। परिणाम भी बड़ा चमत्कारिक रहा। ४-६ माह में उनके दुबले-पतले और रूखे-सूखे शरीर में रक्त बढ़ने लगा। चेहरे का फीकापन भी गायब होने लगा। शरीर सुन्दरता का साज सजने लगा। उनके शरीर की माँसपेशियाँ माँसल होकर गुलाबी रंग धारण कर सक्रिय हो उठीं। सचमुच स्वास्थ्य ही सबसे बड़ा सौन्दर्य है। दक्षाबहन के जीवन में ताजगी, तन्दुरुस्ती और सौंदर्य के फव्वारे छूटने लगे। उन्हीं दिनों उन्हीं की बिरादरी का एक युवा इंजीनियर विवाह करने के प्रयोजन

से अमरीका से भारत आया था। उसने कई कन्याएँ देखीं किन्तु सन्तोष नहीं हुआ। दक्षाबहन को देखते ही वह खुश हो गया। यही नहीं, दक्षाबहन का ताजगी व तन्दुरुस्ती से भरपूर यौवन देखकर वह चकित हो गया। दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया और आज दक्षा-बहन अमरीका के शिकागो शहर में अपना एक स्टोर्स चला रही हैं। उनके इंजीनियर पति नोकरी करते हैं और दक्षाबहन अपने स्टोर्स का संचालन करती हैं। वे दो पुत्रों की माता बन चुकी हैं। आज भी दक्षाबहन समय निकालकर कसरत करना नहीं चूकतीं।

आसन नं. ४

चित सो जाइए। दोनों घुटने मोड़कर आकाश की ओर उठाइए। दोनों एड़ियों को गुदाद्वार का स्पर्श हो, इस प्रकार रखिए। पीठ को तनिक भी हिलाए-डुलाए या ऊँचे-नीचे किये बगैर दोनों घुटनों को सटाये रखिए और दाहिनी ओर झुकाइए। इसी स्थिति में पचास सेकण्ड तक रहिए। इस दौरान दीर्घ श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया चालू रखें। इसके बाद इसी प्रकार घुटनों को बायीं ओर झुकाइए। पचास सेकण्ड तक इसी स्थिति में रहिए। इस प्रकार दायें-बायें दोनों बाजू मिलाकर यथाशक्ति उक्त क्रिया दस से शुरू करके पचास बार तक ले जाइए।
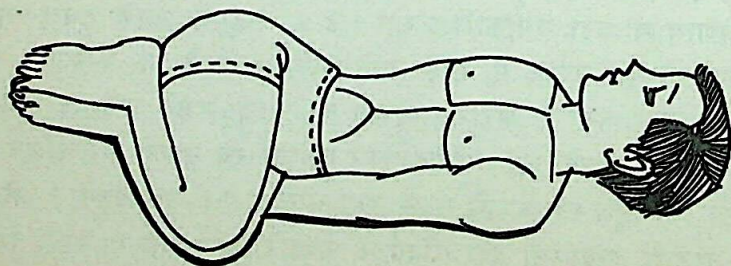
[आकृति ४ : आसन नं. ४]

इस कसरत का ध्यान-बिन्दु दोनों आँखों के बीच का प्रदेश है।

यह कसरत आबालवृद्ध सभी को करनी चाहिए। रात को सोते समय आप अपने गृह-मंत्र का उच्चारण करते-करते यह कसरत कर सकते हैं। इस कसरत से कटिप्रदेश के सभी प्राणधारक अंगों को कसरत मिल जाती है। इस प्रकार मनुष्य के अधिकांश रोगों की जड़ आपके हाथों में आ जाएगी।

आसन नं. ५

दोनों पैर एक-दूसरे से सटाकर चित लेट जाइए। दोनों भुजाओं को कुहनी से मोड़कर हाथों को पेट पर रखिए। इसके बाद बायें पैर को सीधा रहने दें और दायाँ पैर घुटने से मोड़कर, बायीं ओर कमर के पास लाकर पूरी तरह खींचकर जमीन पर रखिए। इसी स्थिति में पचास सेकण्ड तक रहिए। इसके बाद 'जैसे थे' की स्थिति में आ जाइए।
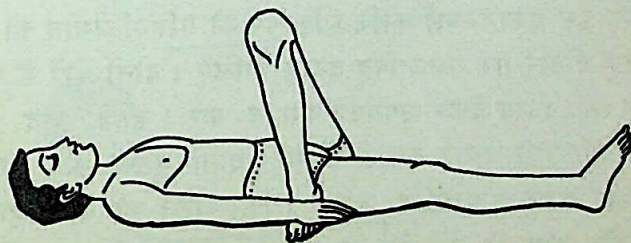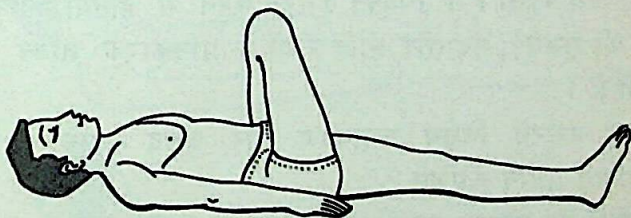
[आकृति ५ : आसन नं. ५]

अब दायाँ पैर सीधा रखकर बायाँ पैर घुटने से मोड़कर दायीं ओर कमर के पास तक लाकर पूरी तरह खींचकर जमीन पर रखिए। इसी स्थिति में ५० सेकण्ड तक रहिए। फिर मूल स्थिति में आइए। अब दाहिना पैर सीधा रहने दें और बायाँ पैर घुटने से मोड़कर दायीं ओर कमर के पास लाइए व पूर्णतः खींचकर जमीन पर रखिए। इसी स्थिति में ५० सेकण्ड तक रहिए।

इस कसरत का ध्यानबिन्दु 'गुदा' है।

इस कसरत से विशेषतः पेड़ू के निचले भाग के अंगों को व्यायाम मिलता है। इस प्रकार पेड़ू, मूत्रपिण्ड के आसपास के अंग, जाँघ के स्नायु और गुदा के स्नायु को संकोच-विकास का व्यायाम मिलता है। इन अंगों को हमेशा अधिक काम करना पड़ता है। इसलिए ये अंग बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। यदि ये अंग पर्याप्त मजबूत न हों तो हानि होने का भय रहता है। उपर्युक्त कसरत करने से हर्निया, अंत्रशोथ (आँतों की सूजन), बवाशीर आदि रोगों में प्रतिकारक शक्ति प्राप्त हो जाती है।

यह कसरत विशेष प्रभावपूर्ण और जलद बनाने के लिए निम्नलिखित प्रयोग कीजिए :

दोनों पैर परस्पर सटाकर लेट जाइए। दोनों पैरों के पंजों से दीवार को इस प्रकार स्पर्श कीजिए कि पैर की एड़ियाँ जमीन को छूती रहें। फिर दीवार पर यथाशक्ति दबाव डालिए। दोनों पैरों के पंजों से दीवार को दबाव देकर उपर्युक्त कसरत करें। इसके बाद दोनों घुटनों पर भी इसी प्रकार दबाव डालिए : दायाँ घुटना ऊँचा रखकर बायें पैर को कमर के पास ले जाइए। फिर घुटने को बायें हाथ से खींचिए और साथ ही बायें पैर के पंजे को दीवार के साथ सटाकर यथाशक्ति दबाइए। इस प्रकार दोनों जांघों को काफी बल मिलेगा।

इस आसन से जठर को खूब व्यायाम मिलता है। इस आसन से पेट का अल्सर और अम्लपित्त स्थानभ्रष्ट हो जाते हैं, फलतः पित्त अलग होकर मलद्वार से बाहर निकल जाता है। वायुविकारवाले व्यक्ति की अपानवायु आसानी से छूट जाती है। जठर में या मूत्राशय में पथरी जम गई हो तो वह भी स्थानभ्रष्ट होकर गल जाती है।

इस कसरत का ध्यान-बिन्दु 'गुदा' है।

आसन नं. ६

चित लेटकर सिर को ऊपर की ओर उठाकर पेडू को देखने का प्रयत्न कीजिए। यह आसन करते समय पीठ बिल्कुल ऊपर नहीं उठनी चाहिए। सिर को आगे की ओर खींचने का प्रयत्न करें। इस कसरत से पेट के स्नायु खिंचकर तंग होंगे। पचास सेकण्ड तक पेट के स्नायुओं
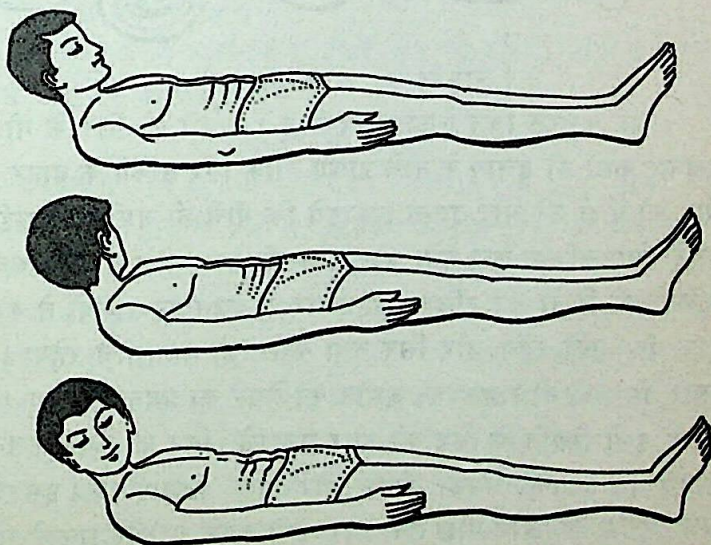
[आकृति ६ : आसन नं. ६]

को इसी तंग स्थिति में रखिए । इसके बाद मूल स्थिति में आ जाइये । इसी प्रकार सिर को उठाकर क्रमशः दायें-बायें देखने का व्यायाम पचास-पचास सेकण्ड तक कीजिए ।

इस कसरत का ध्यानबिन्दु 'सटाकर रखे हुए दोनों पैरों के अँगूठे' हैं ।

इस कसरत से 'आम' मुक्त होता है और पाचनक्रिया पर जादुई प्रभाव पड़ता है।

आसन नं. ७
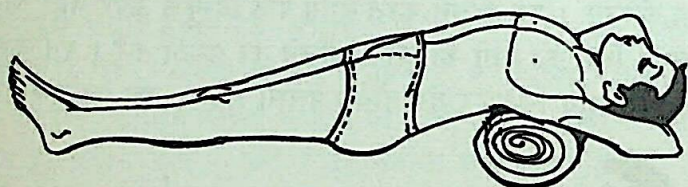
[आकृति ७ : आसन नं. ७]

यह कसरत चित लेटकर करनी है । तकिये को सिर के नीचे न रखकर कंधों की ढलान के नीचे रखिए ताकि सिर तकिये के बाहर रहे । सिर को पीछे की ओर इतना झुकाइये कि नीचे की जमीन दिखाई दे । इसके लिए तकिया कुछ बड़ा और रोल की तरह गोल हो । अथवा दो तकियों को मिला कर रखिए, इस प्रकार दो वजनदार तकियों से कंधे की ढाल-पीठ ऊँचे रहेंगे और सिर तथा कमर का भाग नीचे रहेगा। इस प्रकार सिर को नीचे झुकाकर जमीन को देखने का प्रयत्न कीजिए । इसी प्रकार इसी स्थिति में सिर को ऊपर उठाइये । सिर को केवल उतना ही उठाइये कि आपको अपना सीना और पेडू दिखाई दे । इस प्रकार क्रमशः सिर को आगे-पीछे एवं ऊपर-नीचे करने से और झुकाने से रीढ़, गले तथा सिर के आगे-पीछे के स्नायुओं में कसावट आती है और वे मजबूत होते हैं ।

ऊपर बताए अनुसार गले को झुकी हुई स्थिति में रखकर दोनों हाथों से दाढ़ी के नीचेवाले गर्दन के हिस्से को, टेंटुए के आसपास की ग्रंथियों को धीरे–धीरे मसाज करें। यदि तेल लगे हाथों से यह क्रिया की जाय तो निश्चित परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। (ध्यान रहे, टेंटुए पर किसी प्रकार भी दबाव न डाला जाय।)

इस कसरत से गर्दन के स्नायु कस जाते हैं। त्वचा ढीली पड़ गई हो तो स्नायु के कसाव से तंग हो जाती है। चेहरे पर झलकनेवाला वृद्धत्व दूर हो जाता है और वह भरावदार बनता है। ढीले पड़े हुए गले, गर्दन और चेहरे के अवयव चुस्त व स्फूर्तियुक्त बन जाते हैं। इस प्रकार अकाल ही वृद्ध बने हुए मनुष्य पुनः यौवन प्राप्त कर सकते हैं। इस कसरत से रीढ़ के अवयव मजबूत और मुलायम हो जाते हैं तथा जठराग्नि सदा प्रदीप्त रहती है।

इस कसरत का ध्यान-बिन्दु 'ठोड़ी' है। यह कसरत पाँच से लेकर पच्चीस बार तक करनी चाहिए।

आसन नं. ८

करवट पर सो जाइये और अदब की स्थिति में दोनों हाथों को सीने पर रखिए। हाथ के पंजों से कुहनियाँ पकड़िए। सिर को यथासंभव पीछे की ओर ले जाइये। इसके बाद पूरे शरीर को यथासंभव फैला-कर सीधा कीजिए। इस स्थिति में रहकर अदब की स्थिति में मोड़े हुए हाथों की शक्ति लगाकर कुहनी पर दबाव डालिए। यह दबाव डालते समय ही समूचे शरीर को खींचकर यथासंभव तंग कीजिए। दो-तीन सेकण्ड तक इसी स्थिति में रहकर फिर कुछ सेकण्ड के लिए शिथिल हो जाइये। फिर दुबारा इसी प्रकार तनाव दीजिए। इस प्रकार जिस समय कुहनी पर हाथ का दबाव पड़ता है उस समय शरीर तंग हो जाता है और जैसे ही दोनों हाथों का दबाव शिथिल होता है उसी समय शरीर भी शिथिल हो जाता है।

किसी मनुष्य को एक व्यक्ति सिर की ओर से तथा दूसरा व्यक्ति पैरों की ओर से पकड़ कर दोनों एक साथ अपनी-अपनी दिशा में खींचें । इस प्रकार यह कसरत दाईं-बाईं करवट लेटकर समानरूप से करनी है ।

करवट बदलकर ऊपर बताये अनुसार अदब—सीना, गर्दन, पेट और पैर के पंजों को शरीर के पीछे की दिशा में खींचिए । पूरे शरीर को तंग कीजिए । इस क्रिया से पूरे शरीर को चोटी से एड़ी तक व्यायाम मिलता है । (पैर की उँगलियों को भी तनाव देना है ।) यह कसरत बहुत ही धीमे-धीमे करनी चाहिए । यथाशक्ति जोर देकर दोनों ओर दो से दस वार करें ।

इस कसरत से केशवाहिनी जैसी सूक्ष्म नसों में रक्त जोर से बहने लगता है और पूरे शरीर के आरोग्य में सुधार होता है । सब कसरतें करने पर भी शरीर के भीतर गहराई में स्थित कुछ स्नायुओं (अंगों) तक उत्तेजना नहीं पहुँच पाती । जबकि इस कसरत से ये स्नायु भी उत्तेजित होते हैं और उनमें भी रक्तप्रवाह पहुँचाया जा सकता है ।

आसन नं. ९

[आकृति ८ : आसन नं. ९]
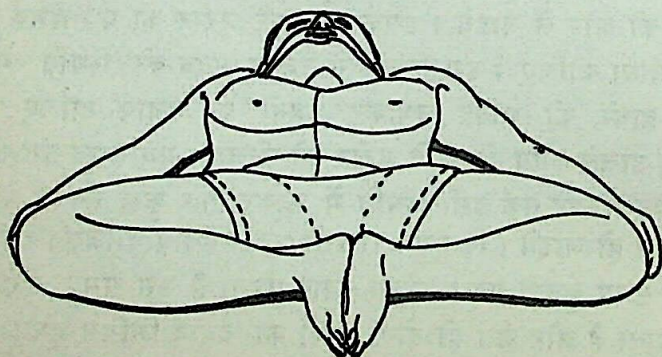
चित लेटकर दोनों पैरों के घुटनों को बाहर की ओर मोड़कर (नीचे झुकाकर) गोलाकार बनाइए। दोनों पैरों की एड़ियों और तलवों को एक-दूसरे से सटाइए। इस प्रकार लेटे-लेटे दोनों पैरों का गोलाकार बनाइए। अब दोनों एड़ियों को आमने-सामने दबाइए, इस प्रकार का दबाव गहरी साँस लेते हुए दो मिनिट तक दीजिए। इस कसरत से पैर, जाँघ, पिंडली (calf), कटि-प्रदेश के जननाँगों को व्यायाम मिलता है।

इस कसरत का ध्यानबिन्दु 'पेडू' है।

आसन नं. १०

[आकृति ९ : आसन नं. १०]

योगशास्त्र में इस कसरत को 'शवासन' कहा गया है। केवल चित सो जाइए। सभी अंगों को एकदम शिथिल रखिए। हाथ-पैर को अनुकूलता के अनुसार, एकदम आराम का अनुभव हो इस प्रकार आप कम-ज्यादा चौड़ा रख सकते हैं। आँखें मूँदकर मुर्दे की तरह पड़े रहिए। सिर को सीधा या दायें-बायें थोड़ा घुमाकर रख सकते हैं। संभव हो तो मस्तिष्क को भी एकदम विचारशून्य कर दीजिए या मन में ईश्वर का स्मरण करें।

योगशास्त्र में 'शवासन' को अंतिम आसन माना है। सभी कसरतें पूरी करने के बाद पूर्णाहुति के रूप में यह आसन आराम करने के लिए है। उपर्युक्त कसरतों में से जितनी शक्य हों उतनी ही करें। यदि किसी कसरत से शरीर को कोई तकलीफ महसूस हो तो उसे तुरंत

बन्द करके आराम करें। इन कसरतों को करते समय और करने के बाद शरीर में स्फूर्ति और ताजगी का आविर्भाव होना चाहिए। हमेशा आनंद-उल्लास के साथ कसरत करें। स्वस्थ और जागृत अवस्था में आँखें बन्द रखें। कसरत करते समय, मालिश करते समय और आराम करते समय सहज रूप में आँखें बन्द रखने का अभ्यास डालना चाहिए। स्मरण रहे कि 'बन्द आँखें शक्तिदायक हैं।'

ऐसे बहुत कम लोग होते हैं जो सहज-स्वाभाविक स्वस्थ हाथ-पैर हिलाते-डुलाते-सभी इन्द्रियों से काम लेते हुए-दवा और इंजेक्शनों से बचते हुए भगवत्स्मरण करते-करते मृत्यु का वरण करते हैं।

९. आसनों के राजा : शीर्षासन और सर्वांगासन

१. शीर्षासन

योगासनों में शीर्षासन को 'आसनों का राजा' कहा गया है। आसनों में शीर्षासन सर्वश्रेष्ठ है। मानव-शरीर में छोटे-बड़े ४३५ स्नायु हैं। इनका वजन शरीर के कुल वजन का लगभग ४५ प्रतिशत है। शीर्षासन करने से इन सभी स्नायुओं पर अच्छा असर पड़ता है। शीर्षासन से प्राणधारक अवयवों में रक्त-प्रवाह का संचार होने से वे नई जीवन-शक्ति प्राप्त करते हैं। संक्षेप में शीर्षासन करनेवाले व्यक्ति में जीवन-शक्ति की वृद्धि होती है और वह सदैव जवान रहता है।

हमारे भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों और महानुभावों ने शीर्षासन के द्वारा सुदीर्घ आयु प्राप्त की थी। शीर्षासन केवल ऋषि-मुनियों के लिए ही नहीं बल्कि सर्वसाधारण के लिए भी शक्ति का महास्रोत है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी दैनिक कसरतों में शीर्षासन का समावेश अवश्य करे।

शीर्षासन आबालवृद्ध सभी कर सकते हैं। यह आसन किसी भी स्थान में और किसी भी मौसम में बड़े आराम से किया जा सकता है। यह सबके लिए लाभप्रद है। शीर्षासन करने से रुधिराभिसरण और गुरुत्वाकर्षण की दिशा बदल जाती है। फलस्वरूप मस्तक के अवयवों—गर्दन, जबड़े, आँख, कान, ठोड़ी एवं मुँह के अंगों को पर्याप्त मात्रा में रक्तप्रवाह प्राप्त हो जाता है। यह आसन करने से रक्ताभिसरण में गति आती है तथा सिर और शरीर के प्राणधारक अंगों को रक्तप्रवाह प्राप्त होने से उन्हें नवजीवन प्राप्त होता है। परिणामस्वरूप ये सभी अवयव सौ वर्ष तक अर्थात् दीर्घकाल तक स्वस्थ रहते हैं। इस आसन

से केवल मस्तक और प्राणधारक अंगों में ही नहीं बल्कि शरीर के अणु-अणु में स्फूर्ति, ताजगी और स्वास्थ्य का सागर लहरा उठता है।

शीर्षासन प्रभावी व्यक्तित्व को विकसित करने में, मुख का तेज बढ़ाने में, मुखमुद्रा को आकर्षक बनाने में, गर्दन के स्नायु और सीने को पुष्ट और भव्य बनाने में सहायक बनता है।

अस्वस्थ यकृत (लीवर) के कारण पीलिया अथवा पांडुरोग जैसे रक्तविकार सम्बन्धी रोग होते हैं। अतः यकृत को स्वस्थ रखने के लिए शीर्षासन एक रामवाण इलाज है। शीर्षासन करने से यकृत सशक्त बनता है और रक्तविकार से होनेवाले चर्मरोग अपने आप नष्ट हो जाते हैं।

शीर्षासन से मस्तिष्क के ज्ञानतन्तु, स्मरण-शक्ति और बुद्धि तेज बनती है; कारण कि सुषुम्णा नाड़ी का जो प्रवाह हमेशा मस्तक से नीचे गुदा की ओर बहता है, वह शीर्षासन से मस्तिष्क की ओर बहने लगता हैं। मस्तिष्क की नसों में आवश्यक रक्त (प्राण) का संचार होने से मस्तिष्क की सूक्ष्मातिसूक्ष्म नसों को पर्याप्त रक्त मिलता है, मस्तिष्क के कोषों को पर्याप्त पुष्टि मिलती है और स्मरण-शक्ति खिल उठती है।

शीर्षासन से पाचन-सम्बन्धी सभी क्रियाएँ – पाचन, शोषण और पोषण नियमित, तेज और व्यवस्थित हो जाती हैं। शीर्षासन से अंत्र-रस और जठर-रस के मिल जाने से पाचन-क्रिया को गति मिलती है। इससे पाचन-तंत्र के अंग कार्यक्षम रहते हैं। शीर्षासन करनेवाले व्यक्ति की जठराग्नि हमेशा प्रदीप्त रहती है।

निष्क्रिय जीवन से पेट के भीतरी अंग कई बार स्थानभ्रष्ट होकर शिथिल हो जाते हैं। ऐसी दशा में शीर्षासन करने से शिथिल अंग यथास्थान आकर रोगमुक्त बनते हैं।

अम्ल पित्त, अल्सर (जठर का नासूर), खट्टी डकारें, वायु-प्रकोप और अपच आदि पेट की तकलीफें शीर्षासन से दूर हो जाती हैं। अंत्र-वृद्धि (हर्निया–आँत का नीचे उतर आना) में भी शीर्षासन करने से आँतें धीरे-धीरे यथास्थान आ जाती हैं।

शीर्षासन करने से थाइरोइड ग्रन्थि में प्राण-संचार होता है और उसे संकोच-विकास का श्रम मिलता है। रीढ़ के अवयवों को आवश्यक कसरत मिलने से रीढ़ के मनके बड़े और स्वस्थ होते हैं तथा ऊँचाई भी बढ़ती है। हमारी रीढ़ हड्डियों की बनी हुई है। उसमें गर्दन के पास की हड्डियों की अपेक्षा कमर की हड्डियाँ अधिक बड़ी और लम्बी हैं। शीर्षासन करने से पूरे शरीर का वजन सिर और गर्दन पर पड़ता है, इसलिए गर्दन की हड्डियाँ अपने आप बढ़ती हैं। इस प्रकार शीर्षासन नियमित रूप से करने से शरीर की ऊँचाई प्राकृतिक रूप से बढ़ती है।

सामान्यतः जबड़ों की हड्डियों के आसपास रक्त-प्रवाह कम रहता है। उम्र बढ़ने के साथ गुरुत्वाकर्षण का प्रतिकार करने की शक्ति भी कम हो जाती है। फलतः मंद रक्ताभिसरण के कारण इस अवयव के रोग–कंठमाल, बहरापन, मसूड़ों में मवाद और दाँतों में सड़न आदि होने लगते हैं। शीर्षासन से रक्ताभिसरण में त्वरित गति आ जाती है और इन अशक्त बनते हुए अंगों में नया प्राण-संचार होता है। परिणामतः ये अंग अकाल ही रोग के शिकार नहीं हो पाते। शीर्षासन करनेवाले के दाँत सौ वर्ष की आयु में भी सड़ते या गिरते नहीं। साथ ही सिर के बाल भी न तो झड़ते हैं और न ही सफेद होते हैं।

शीर्षासन करने की रीति
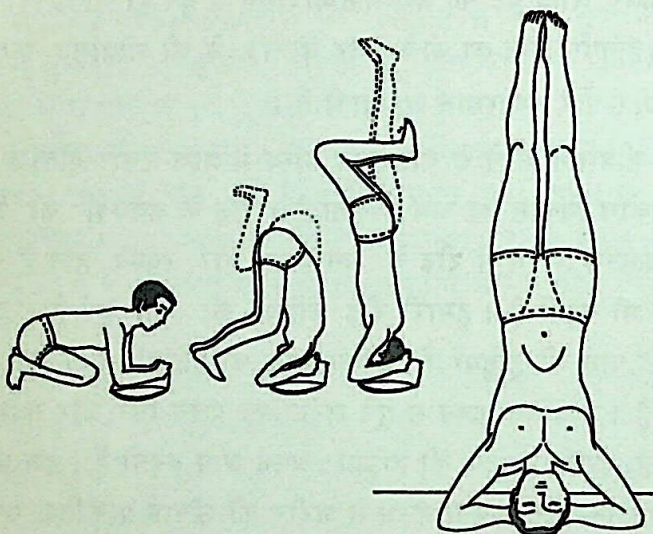
[आकृति १० : शीर्षासन]

एक कम्बल चार तहों में मोड़कर बिछा लीजिए। फिर उसपर स्वच्छ तौलिया बिछाइये। एक धोती को लपेट कर इंडुरी जैसी गोलाकार बना लीजिए ताकि आपका सिर उस पर ठीक ढंग से बैठ सके। कम्बल पर इस इंडुरी को रखिए। दोनों हाथों की उँगलियों को परस्पर फँसाकर सिर के पीछे रखिए। सबसे पहले घुटनों के बल अध-खड़ी स्थिति में बैठिए। कुहनियों को जमीन पर रखकर सिर को इंडुरी पर रखिए। इसके बाद कमर का हिस्सा उठाकर धीरे-धीरे पैरों उठाते हुए छत की ओर एकदम ऊँचे ले जाइए। घुटने से मोड़े बगैर दोनों पैर एक साथ रखिए। शीर्षासन में पूरे शरीर का वजन

कुहनियों और उँगलियों के त्रिभुज पर तथा इंडुरी पर टिके सिर के भाग पर पड़ता है। प्रारंभ में दीवार का सहारा लेकर शीर्षासन कीजिए। अन्य व्यक्ति की सहायता भी ली जा सकती है। इस प्रकार प्रारंभ में एकाध मिनट तक शीर्षासन करना चाहिए। अभ्यास हो जाने पर यथाशक्ति समय बढ़ाते जाना चाहिए।

शीर्षासन के लिए सामान्यतः पाँच, सात या दस मिनट पर्याप्त हैं।

शीर्षासन के दौरान साँस लेने की क्रिया अपेक्षाकृत धीमी और आँखें बन्द रखनी चाहिए। आँखें खुली रहने से दृष्टि खिचती है और क्वचित् दृष्टि को हानि होने की संभावना भी है।

सामान्यतः अन्य कसरतें करने के बाद अन्त में शीर्षासन करना हितकारी है।

शीर्षासन के बाद शवासन करना चाहिए।

शीर्षासन करते समय ध्यान में रखने योग्य बातें :

इंडुरी पर सिर रखकर शीर्षासन करना चाहिए। सिर के बाल और कपाल जहाँ मिलते हैं वह रेखा इंडुरी के बीच आ जाए इस ढंग से उसपर सिर रखना चाहिए। अर्थात् कपाल और सिर के बालों की रेखावाले प्रदेश पर शरीर का सारा भार आना चाहिए। उसके ऊपर का हिस्सा 'तालू' कहलाता है। बच्चों का तालू इतना नाजुक होता है कि उसमें नाड़ी का स्पन्दन स्पष्ट देखा जा सकता है। यह स्थान काफी नरम तथा सुकोमल होता है, जो उम्र बढ़ने के साथ सख्त हो जाता है। योगी इस भाग को 'ब्रह्मरंध्र' कहते हैं। इस स्थान पर ध्यान केन्द्रित करनेवाला योगी ब्रह्मवेत्ता, तत्त्ववेत्ता और समाधिनिष्ठ माना जाता है। सूक्ष्म यौगिक व्यायाम में इस ब्रह्मरन्ध्र को ध्यानबिन्दु के रूप में लेकर स्मरण-शक्ति का विकास किया जा सकता है।

शीर्षासन करते समय शरीर का सारा वजन इस तालू-प्रदेश पर न आ जाय -- इस बात का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि इससे हानि होने की संभावना है।

ललाट और सिर के बालों की रेखा के बीच के संधिस्थान को इंडुरी के मध्य में रखकर शीर्षासन करें। यह शीर्षासन का सही तरीका है। दोनों हाथों की उँगलियाँ फँसाकर मस्तक के पीछे के हिस्से को सहारा दें और दोनों हाथों की कुहनियों पर शरीर का अधिक से अधिक भार उठाने का प्रयत्न करें। इस प्रकार दोनों कुहनियों और दोनों हथेलियों की मिली हुई मुट्ठी के त्रिभुज पर शरीर का अधिकांश भार टिका कर शीर्षासन करें और गर्दन पर कम-से-कम भार आये इसका ख्याल रखें। शीर्षासन करते समय धीरे-धीरे दीर्घ व गहरी साँसें लें। शीर्षासन करते समय किसी अंग को किसी भी प्रकार की पीड़ा महसूस हो तो तुरन्त शीर्षासन बन्द करके विश्राम करें। किसी भी आसन से शरीर में स्फूर्ति और ताजगी का आविर्भाव हो तभी आसनों का व्यायाम चालू रखें। ध्यान रहे कि पीड़ा-रहित अवस्था में ही योगासन करने हैं।

जिन्हें उच्च रक्तचाप या हृदय-रोग हो, जिनकी आँखों की नसें संकुचित हों, दृष्टि लघु हो अर्थात् जिनके चश्मों का नम्बर दस से अधिक हो, उन्हें शीर्षासन नहीं करना चाहिए।

शीर्षासन और शीत : शीर्षासन करते समय शरीर को ठण्ड से बचाना चाहिए। शीर्षासन का व्यायाम करते समय शरीर गर्म हो जाता है और पसीना निकलता है। ऐसी स्थिति में हवा लगने से पसीने का बाष्पीभवन होता है और बदन में ठण्ड लगने लगती है। फलस्वरूप स्नायु की रक्ताभिसरण-क्रिया में अवरोध उत्पन्न होता है, जिससे

वातपीड़ा, कमर का दर्द तथा रीढ़ या पीठ का दर्द होने लगता है, क्वचित् चक्कर आने से आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। ऐसी दशा में शरीर का संतुलन न रहने से गिर पड़ने का भय रहता है। संक्षेप में, ऐसी जगह कभी कोई कसरत न करें जहाँ जोर की हवा चलती हो। खास करके शीर्षासन के लिए ऐसी जगह पसंद करें जहाँ शरीर को ठण्ड न लगने पाए। यदि शीर्षासन करते समय सर्दी या जुकाम के कारण नाक बन्द हो जाय तो शीर्षासन बन्द कर देना चाहिए। नाक बन्द होने पर मुँह से साँस न लेकर शीर्षासन बन्द करना ही हितावह है। स्मरण रहे कि शीर्षासन या अन्य कसरत करते समय नाक से ही साँस लेनी चाहिए।

शीर्षासन करते समय आँखें बन्द रखें :

शीर्षासन करते समय आँखें सहज भाव से बन्द रखनी चाहिए। आँखें खुली रहने से दृष्टि खिचती है जिससे आँखों को हानि पहुँचती है।

एक सज्जन शरीर को मजबूत बनाने के लिए प्रतिदिन ५०० डण्ड और १००० बैठक लगाते। इसके आलावा गर्दन और स्नायुओं को मजबूत और पुष्ट बनाने के आशय से वे शीर्षासन भी बड़ी देर तक-पौने घण्टे तक किया करते। किन्तु वे शीर्षासन करते समय आँखें खुली रखते और दूर-दूर तक दृष्टिपात किया करते। फलतः उनके चश्मे का नम्बर बढ़कर ९ से १० तक पहुँच गया। इसके बाद उन्होंने विशेषज्ञ का परामर्श लिया और अपनी भूल सुधारकर आँखें बंद रखकर शीर्षासन करना जारी रखा। थोड़े ही समय में बढ़ा हुआ नम्बर घटकर पूर्ववत् हो गया। इस प्रकार गलत ढंग से शीर्षासन करने से जो विकृति आती है वह भी शीर्षासन की पद्धति को सुधारने से दूर हो जाती है। इसलिए सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करके शीर्षासन के विशेषज्ञ की उपस्थिति में ही शीर्षासन शुरू करें।

गृहस्थ जनों को पाँच-दस मिनट से अधिक शीर्षासन करना उचित नहीं हैं । शीर्षासन के पूर्व अन्य कसरतों के द्वारा शरीर में रक्ताभिसरण को गतिमान् करना चाहिए । शरीर में श्वासोच्छ्वास की उष्णता उत्पन्न होने के बाद धीरे-धीरे शीर्षासन करना चाहिए । शीर्षासन का 'ध्यान-बिन्दु' दो आँखों के बीच का प्रदेश है । शीर्षासन का निर्धारित समय पूरा होते ही धीमे से पैरों को नीचे लाइए । आँखें बन्द रखकर सिर को धीरे-धीरे ऊँचा होने दीजिए । इस प्रकार दोनों पैरों पर बैठ कर गर्दन को सीधा होने दीजिए । इसके बाद दूरस्थ वनराजि की ओर नजर डालते हुए धीरे-धीरे आँखें खोलिए । धूप या प्रकाश की ओर दृष्टिपात न करें । खड़े होकर दोनों हाथों से मस्तक, चेहरा, गर्दन, सीना, पेट और हाथ-पैरों को धीमे हाथों से सूखा घर्षण दीजिए, उन्हें थपथपाइये और इसके बाद तुरंत शवासन कीजिए ।

यह आसन पूरा होने के बाद अन्य कोई कसरत, व्यायाम अथवा योगासन नं करें ।

२. सर्वांगासन

योगशास्त्र में सर्वांगासन का उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान है जितना शीर्षासन का । इस आसन से शरीर के सभी अंगों को समानरूप से व्यायाम मिल जाता है, इसीलिए इसे 'सर्वांगासन' कहा गया है । जैसा काम वैसा नाम !

शीर्षासन अपेक्षाकृत कठिन आसन है । उसमें समूचे शरीर का सन्तुलन (Balance) सिर पर उठाना पड़ता है । शीर्षासन सीखने के लिए थोड़े अभ्यास की भी आवश्यकता होती है । जबकि सर्वांगासन एक सरल आसन है फिर भी इसके गुण शीर्षासन के बराबर ही हैं । आबालवृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी इस आसन को कर सकते हैं । शीर्षासन

को आसनों का राजा कहा है तो सर्वांगासन सर सेनापति या प्रधानमंत्री है।

सर्वांगासन करने का तरीका :

शतरंजी बिछाइए। उस पर स्वच्छ तौलिया बिछाकर चित लेट जाइए। हाथ भी सीधे लम्बे रखिए। बताये हुए क्रम के अनुसार निम्नलिखित क्रियाएँ कीजिए :
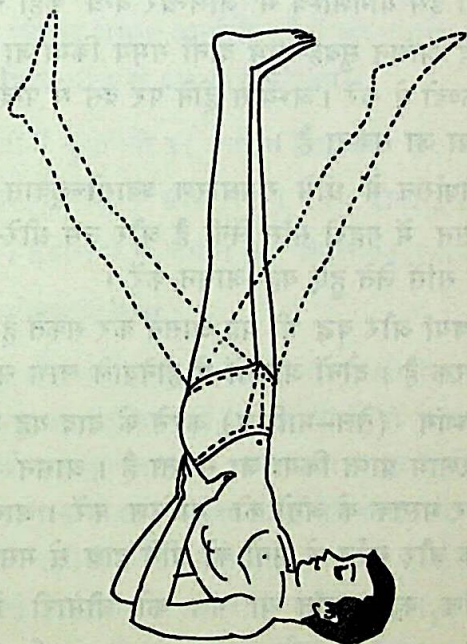
[आकृति ११ : सर्वांगासन]

(१) दोनों पैरों को घुटनों से मोड़े बगैर पुट्ठों के साथ ऊपर की ओर उठाइये। अब दोनों हाथों को कमर के ऊपरी हिस्से के पास

टिका कर, कमर और धड़ को सीधे ऊपर की ओर उठाइये। समूचे शरीर का वजन स्कन्ध-प्रदेश के ढलान पर पड़ेगा। सिर और कन्धे को छोड़कर पूरा शरीर उलटी दिशा में सीधी रेखा में आए, इस ढंग से शरीर को ऊपर की ओर उठाना है। दोनों कुहनियाँ फर्श पर टिकाये रहिए।

(२) इस आसन में ठोड़ी को सीने के साथ अच्छी तरह दबाकर रखनी चाहिए। इसे योगशास्त्र में 'जालन्धर बन्ध' कहा गया है।

(३) यह आसन सुबह-शाम दोनों समय किया जा सकता है। प्रारंभ कुछ सेकण्डों से करें। अभ्यास होने पर दस से पन्द्रह मिनट तक यह आसन किया जा सकता है।

(४) शीर्षासन में धीमे समधारण श्वासोच्छ्वास लेने होते हैं जबकि इस आसन में गहरी साँस लेनी है और उसे धीरे-धीरे छोड़नी है। खूब गहरी साँसें लेते हुए यह आसन करें।

(५) स्त्रियाँ और वृद्ध भी यह आसन कर सकते हैं। यह आसन शीर्षासन का पूरक है। दोनों आसनों से होनेवाले लाभ समान ही हैं।

(६) अभ्यंग (तेल–मालिश) करने के बाद यह आसन करने से अपेक्षित परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। आसन करने से पूर्व गर्दन, कन्धे और मस्तक के अंगों की मालिश करें। आसन करने के बाद भी मस्तक और गर्दन के अंगों को धीमे हाथ से मसाज दें।

(७) आँख, कान, दाँत या गले की बीमारी में यह आसन न करें।

सर्वांगासन को वैविध्यपूर्ण बनाने के तरीके :

(क) सर्वांगासन की स्थिति में दोनों पैरों को चौड़ा कीजिए। पच्चीस सेकण्ड तक पैरों को इसी स्थिति में रखिए। फिर पैरों को क्रमशः

आगे-पीछे (एक को आगे तो दूसरे को पीछे) झुकाव दीजिए। यह क्रिया पच्चीस बार कीजिए।

(ख) सर्वांगासन करके पैरों को घुटनों से मोड़कर क्रमशः इस तरह जोर से हिलाइए जैसे आप साइकिल चला रहे हों। यह क्रिया पचास वार कीजिए। इस क्रिया से घुटनों का दर्द दूर हो जाता है।

(ग) सर्वांगासन की स्थिति में इस ढंग से दोनों पैरों को सटाकर हिलाइये जैसे पतवार चलाई जाती है। पैरों को यथासंभव आगे-पीछे ले जाइये। यह क्रिया पाँच से दस वार कीजिए।

(घ) दोनों कुहनियों का आधार लिए वगैर सर्वांगासन कीजिए। दोनों हाथों को शतरंजी के साथ लगाये रहें। दोनों हथेलियाँ फर्श पर चिपकाये रहें। हथेलियों से जमीन पर यथाशक्ति दवाव करें।

सर्वांगासन से होनेवाले लाभ :

(१) सर्वांगासन करने से रक्ताभिसरण की दिशा बदलती है। इससे प्राणधारक जीवन्त अवयवों को पर्याप्त मात्रा में रक्त-प्रवाह प्राप्त हो जाता है और उन्हें चेतना व कार्यक्षमता प्राप्त होती है। नियमित रूप से सर्वांगासन करनेवाले व्यक्ति के शरीर के प्राणधारक जीवन्त अंग हमेशा कार्यक्षम रहते हैं। न उसके दाँत सड़ते हैं और न उसे बहरापन आता है। आँखें दीर्घकाल तक निरोगी रहती हैं। न आँखों में मोतिया-बिन्द आता है और न ही कभी चश्मे की जरूरत पड़ती है। दीर्घकाल-पर्यंत स्मरण-शक्ति सुरक्षित रहती है। संक्षेप में सर्वांगासन करनेवाले व्यक्ति को जल्दी बुढ़ापा नहीं आता। इन्द्रियाँ सौ वर्षों तक चेतना सम्पन्न और सक्रिय रहती हैं।

(२) इस आसन से थाइरॉइड और कण्ठ-ग्रन्थि पर चमत्कारिक असर पड़ता है। नियमित रूप से यह आसन करनेवाला व्यक्ति बुढ़ापे को दूर ठेल सकता है। यह आसन करने से यौन-शक्ति का आवेग दृढ़ होता है और व्यक्ति पुनः यौवन प्राप्त होता है।

(३) इस आसन से पेट के प्राणधारक अवयव कार्यक्षमता प्राप्त करते हैं। तोंद घट जाती है और शिथिल अवयव पूर्ववत् हो जाते हैं। यह आसन करनेवाले व्यक्ति को कभी हर्निया (आँत का स्थानभ्रष्ट होने का रोग) नहीं होता।

(४) यह आसन करने से मसूड़ों और दाँतों को रक्त-प्रवाह मिल जाता है और दन्त-रोग नहीं होते। यह आसन गुरुत्वाकर्षण के कारण होनेवाली रक्त की कमी को दूर करता है, साथ ही आँखों और कानों को भी हमेशा रोगमुक्त रखता है।

(५) इस आसन से छाती, गर्दन और सिर के हिस्सों में रक्तसंचार होता है जिससे आँख, सिर के बाल और ज्ञानतंतुओं के आरोग्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

(६) खाँसी, दमा, सर्दी, जुकाम आदि फेफड़ों की तकलीफों के लिए भी सर्वांगासन लाभप्रद है।

(७) यह आसन रक्ताभिसरण की क्रिया को नियमित करके हृदय को कार्यक्षम रखता है।

(८) स्वामी शिवानन्द सरस्वती लिखते हैं, "इस आसन से रीढ़ में रक्त-संचार होता है और वह स्थितिस्थापक (Elastic) बनती है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए यह आसन उपयोगी है। यह आसन रक्त-वर्धक और रक्त-शोधक है। इससे अपचाशय और मूत्राशय की शिकायतें

दूर हो जाती हैं। स्त्रियों के गर्भाशय सम्बन्धी रोगों और वन्ध्यत्व को दूर करता है। इससे कुण्डलिनी-शक्ति बढ़ती है। इससे जीर्ण-अजीर्ण दूर हो जाता है।"

(९) डॉ. बालकेश्वर प्रसाद लिखते हैं : "इस आसन से वृद्धावस्था और नपुंसकता (नामर्दी) के लक्षण दूर किये जा सकते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों के लिए यह समान रूप से लाभदायी है। ऐसे अनेक उदाहरण मेरे समक्ष हैं जिनमें इस आसन से स्त्रियों का वन्ध्यत्व दूर हुआ है। दीर्घकाल तक यह आसन करने से यकृत और तिल्ली (या प्लीहा) की विकृतियाँ दूर हो जाती हैं एवं मधुप्रमेह के रोग से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।"

कुछ उपयोगी स्वानुभव :

(१) मुझे हर जाड़े के मौसम में पैरों में झुनझुनी हो जाती थी और पैर झूठा या सुन्न पड़ जाता था। इस रोग से बचने के लिए मुझे इस ऋतु में हर दूसरे दिन विटामिन बी – १ और बी–१२ के इंजेक्शन लेने पड़ते थे। बाद में मैं शीतकाल शुरू होते ही दोनों पैरों में मालिश और केवल पाँच मिनट सर्वांगासन करने लगा। पिछले तीन वर्षों से यह प्रयोग जारी है। फलतः मैं पूर्णतः रोगमुक्त हूँ। अब मुझे इंजेक्शन नहीं लेते पड़ते। रक्तप्रवाह (रक्ताभिसरण) के गतिशील रहने से पैरों में कभी झुनझुनी नहीं होती। लगातार चार-छह घण्टों तक कुर्सी-टेबल पर कार्य करते रहने पर भी पैरों में कभी रक्त नहीं जमता।

(२) बरसात में काफी चलने के कारण नितम्ब (पुट्ठे), जाँघें और कटि-प्रदेश जकड़ गये थे। चलना भी दूभर हो गया था। उपाय के रूप में मालिश करने के बाद पाँच मिनट सर्वांगासन किया। इसी अध्याय में पहले बताये गये ढंग से पैरों को विभिन्न प्रकार से हलन-

चलन दिया । इसके बाद मसाज करने से दर्द में काफी राहत महसूस हुई । शाम को दुबारा इसी आसन और क्रिया का पुनरावर्तन करने से दर्द गायब हो गया और कटिप्रदेश के अवयव यथावत् हो गए ।

(३) एक महाशय को हमेशा कमर का दर्द रहता और अकसर पीठ में भी एकाएक दर्द उठ आता । इसके लिए उन्हें हफ्तों तक लगातार दवाएँ खानी पड़तीं । मैंने उन्हें सर्वांगासन के लाभ बताये । रक्ताभिसरण की प्रक्रिया समझाई । रोग होने से पूर्व सर्वांगासन शुरू करवा दिया । फलस्वरूप पिछले तीन वर्षों से उन्हें उस पुराने रोग के दर्शन फिर नहीं हुए ।

संक्षेप में, सर्वांगासन शक्ति का महास्रोत है । वह रोगों के आक्रमण के विरुद्ध ढाल का काम करता है । यह आसन सर्व अंगों को कार्यक्षम रखता है और अपना 'सर्वांगासन' नाम सार्थक करता है । केवल हाथ, पैर, कटि-प्रदेश, छाती, गर्दन जैसे बाह्य अवयवों को ही नहीं, वरन् यकृत, तिल्ली, पेन्क्रियाज, जठर, आँतें, हृदय, उदरपटल आदि शरीर के अंदरूनी प्राणधारक जीवंत अवयवों के कोशों को भी यह आसन नूतन जीवन-शक्ति प्रदान करके सदैव स्वस्थ रखता है । साथ ही रोग का सामना करनेवाली प्रतिकारक शक्ति में वृद्धि भी करता है ।

थोड़े-थोड़े घण्टों के अन्तर से जमीन पर चित लेटने अथवा शवासन, सर्वांगासन या शीर्षासन की योगनिद्रा-सी स्थिति में रहने अथवा ढालू पटरे के आधार से सिर नीचे और पैर ऊपर रखकर स्थिर रहने का अभ्यास बनाए रखें; अन्यथा गुरुत्वाकर्षण का नियम हमारा गुप्त शत्रु बनकर हमारी रक्ताभिसरण-क्रिया को विकृत कर देगा, थकावट बढ़ाएगा और हमारे पेट के स्नायुओं को शिथिल कर देगा ।

१०. मंदगति की दौड़ - जोगिंग

'जोगिंग' – यह शब्द कदाचित् हम में से कई लोगों के लिए नया ही है। किसी भी अन्य अपेक्षा के विना तन को स्वस्थ और मन को प्रफुल्लित बनाने के लिए धीमी गति से दौड़ने की क्रिया को 'जोगिंग' कहा जाता है।

'जोगिंग' शारीरिक व्यायाम की न तो कोई नई खोज है और न कोई रहस्यमयी क्रिया है। यह शरीर को अपेक्षित लाभ देनेवाली एक सामान्य कसरत है।

'जोगिंग' सहज, सरल एवं आनन्दप्रद है। वह पूर्णतः हानिरहित हैं। इस व्यायाम में किसी विशेष कौशल या किसी विशेष साधन की आवश्यकता नहीं पड़ती। शारीरिक क्षतिवाले या रोगी व्यक्तियों को छोड़कर आवालवृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी को जोगिंग से अपूर्व लाभ होता हैं। प्रायः तीस-चालीस वर्ष से अधिक उम्रवाले व्यक्तियों के लिए तन-मन का सम्पूर्ण स्वास्थ्य एक असंभव या स्वप्न-सी बात बन जाती है। ऐसे व्यक्तियों को निरोगी, स्वस्थ और दीर्घायु बनाने के लिए जिन्दगी को सही ढंग से जीने का जोश एवं सुख, समृद्धि तथा शान्ति प्रदान करने के लिए जोगिंग की यह एरोविक कसरत हर प्रकार से समर्थ है।

रनिंग (तेज दौड़) और जोगिंग (मन्द दौड़) का अन्तर :

(१) रनिंग में डेढ़ किलोमीटर का अन्तर केवल सात मिनट या उससे कम समय में तय करना होता है, जबकि जोगिंग में यही अंतर सात मिनट से भी अधिक समय में पूरा किया जा सकता है।

(२) रनिंग में पैर के पंजों पर जोर देकर बहुत तेज दौड़ना होता है जबकि जोगिंग में सर्व प्रथम एड़ी को और बाद में पंजों को जमीन पर रखते हुए धीमे-धीमे दौड़ना पड़ता है।

(३) रनिंग में दौड़ लगानेवाले व्यक्तियों में स्पर्धा होती है। उसमें समय का बन्धन और इनाम का लालच होता है। जबकि जोगिंग में स्पर्धा, समय का बन्धन और इनाम की अपेक्षा नहीं होती। इसमें मानसिक आनन्द और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए शरीर को किसी प्रकार का जोर भी नहीं देना पड़ता।

(४) कम अन्तरवाली रनिंग में मुँह बन्द रखकर, शरीर में स्थित प्राणवायु का पूरा उपयोग कर निश्चित रूप से अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण तन-मन को चरम सीमा तक जोर लगाना पड़ता है। जोगिंग में तो आप अपनी इच्छानुसार मुँह को बन्द या खुला रख सकते हैं। धीरे-धीरे शरीरस्थ प्राणवायु का उपयोग करते जाइये और दौड़ के साथ-साथ नई प्राणवायु को शरीर में दाखिल करते जाइये। जोगिंग करनेवाले व्यक्ति को एक-सी मन्द गति से आराम और शान्ति के साथ दौड़ना होता है। इसलिए जोगिंग को एरोबिक कसरत माना गया है।

जोगिंग किस लिए ? :

न्यु जर्सी के प्रसिद्ध कार्डियोलोजिस्ट डॉ. शेहान का कथन है कि जोगिंग शरीर-विज्ञान की दृष्टि से एक पूर्ण कसरत है। जोगिंग करते समय जंघा और पैरों के बड़े स्नायु एक प्रकार के सन्तुलन (रिदम) के साथ उपयोग में आते हैं। जोगिंग से शरीर में शक्ति की आवश्यकता उत्पन्न होती है। हृदय अपनी धड़कनें और फेफड़े अपनी श्वसन-गति बढ़ाकर उसकी पूर्ति करते हैं। इस प्रकार हृदय और फेफड़ों के

स्नायु धीरे-धीरे मजबूत होते हैं। थोड़े समय के बाद ये दोनों महत्त्वपूर्ण अंग कम समय में अधिक कार्य करते हैं। अर्थात् कार्डियो पल्मोनरी फ्रेक्शन में वृद्धि होती है। दीर्घ सुखी जीवन के लिए हृदय और फेफड़ों की इस प्रकार अच्छी हिफाजत की जा सकती है। इस प्रकार हृदय और फेफड़ों की तन्दुरुस्ती के लिए जोगिंग एक आदर्श और उत्तम कसरत है।

कुछ वैज्ञानिक जानकारी :

जोगिंग, रनिंग, वॉकिंग, स्वीमिंग, साइक्लिंग आदि एरोबिक कसरतें करते समय निरंतर प्राणवायु लिया जाता है। फलस्वरूप ये कसरतें करनेवाले व्यक्ति के फेफड़े और हृदय मजबूत होते हैं। शरीर में रक्ताभिसरण की क्रिया में सुधार होता है, जिससे शरीर निरोगी बनता है और व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। ऐसा व्यक्ति दीर्घ आयु प्राप्त करने में समर्थ होता है। जब कि डण्ड-बैठक, मुगदर, भारोत्तोलन, बुलवर्कर आदि आइसो-मेट्रिक अथवा स्नायविक कसरतों में शरीर के स्नायु सुडौल और मजबूत बनते हैं। फलतः शरीर बलिष्ठ और सुन्दर दिखता है। केलॅस्थनिक्स या आसनों की कसरतों में शारीरिक स्नायुओं के लिगामेण्ट आसानी से खींचने योग्य बन जाते हैं। इससे शरीर स्फूर्तिवाला बनता है। ये दोनों प्रकार की कसरतें 'एनेरोबिक कसरतें' कहलाती हैं। इन कसरतों में वे लाभ नहीं हैं जो ऐरोबिक कसरतों से प्राप्त होते हैं।

प्रतिदिन केवल तीस मिनट नियमित रूप से जोगिंग करने से लम्बे अरसे के बाद हृदय और फेफड़ों की कार्य-शक्ति में इतनी अधिक आश्चर्यजनक वृद्धि हो जाती है कि किसी भी प्रकार की शारीरिक और मानसिक कसौटी के अवसर पर शरीर के जिस भाग को

तत्काल जितनी शक्ति अपेक्षित हो उतनी स्वाभाविक रूप से होनेवाले रक्त के परिभ्रमण से मिल जाती है। फलस्वरूप व्यक्ति किसी भी प्रकार के अतिरिक्त श्रम के बिना तन-मन से स्वस्थ रह सकता है और रोग के आकस्मिक आक्रमण के भय से बच सकता है।

समाज के अधिकांश लोग यह जानते हैं कि वे शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं हैं। स्वस्थता की परिभाषा यह नहीं है कि आपको डॉक्टर के पास नहीं जाना पड़ता, दवाई नहीं लेनी पड़ती। अपना दैनिक कार्य आप बिना किसी ऊब या थकावट से कर सकते हैं– इसे भी स्वस्थता नहीं कहा जाता। आज के जेट-युग में –औद्योगिक युग में– शारीरिक श्रम का महत्त्व कम हो गया है। आज तो अधिकांश चीजें मशीनों के द्वारा बनती हैं। आज के कोलाहलपूर्ण और प्रदूषण-युक्त वातावरण में व्यक्ति को अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक तनावों में जीना पड़ता है। इन तमाम परिस्थितियों के बीच स्वस्थता-पूर्वक जीवन जीने के लिए हृदय और फेफड़ों को मजबूत बनानेवाली जोगिंग की कसरत सबके लिए लाभदायी है। जोगिंग की कसरत के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

(१) जोगिंग करने में हमें एक पैसे का भी खर्च नहीं है। हाँ, मनुष्य में केवल दृढ़ संकल्प-शक्ति और नियमितता का गुण आवश्यक है।

(२) इसमें एक जोड़ी अच्छे जूतों के सिवा अन्य किसी खास प्रकार के साधन की आवश्यकता नहीं होती।

(३) किसी विशेष सुविधा की आवश्यकता नहीं होती। व्यक्ति किसी भी स्थान पर जोगिंग कर सकता है।

(४) बहुत ही कम समय में यह कसरत की जा सकती है, जिससे समय की बचत होती है।

(५) आबालवृद्ध सभी यह कसरत कर सकते हैं।

(६) यह कसरत अतिशय आनन्दप्रद है। इसमें श्रम कम और लाभ अनेक हैं।

(७) जोगिंग शुरू करने के पहले व्यक्ति को अपने शरीर की प्राथमिक मेडिकल जाँच करा लेना बहुत अनिवार्य है। डॉक्टर की अनुकूल रिपोर्ट के बाद ही, निश्चित ध्येय के साथ स्वस्थता और शांतिपूर्वक धीरे-धीरे यह कसरत शुरू करें।

(८) जोगिंग से हृदय और फेफड़े मजबूत होते हैं उनकी कार्य-शक्ति बढ़ती है। रक्त-परिभ्रमण बहुत सरलता से होता है। वह कम श्रम में अधिक कार्य कर सकता है। त्वचा का तेज बढ़ता है। शरीर और मन वृद्ध नहीं हो पाते। स्नायु मजबूत और कार्यक्षम होते हैं। शरीर का मेद कम हो जाता है। शरीर सुडौल बनता है। निराशा को छोड़कर व्यक्ति आशावादी बनता है। मानसिक रूप से स्वस्थ बनने के कारण व्यक्ति तन्दुरुस्त दिखता है। व्यक्ति के शरीर में उमंग और उत्साह के फव्वारे छूटने लगते हैं। आत्मविश्वास बढ़ता है और व्यक्ति की जीवन-दृष्टि में परिवर्तन आता है।

(९) नियमित रूप से जोगिंग करके व्यक्ति अपना वजन कम कर सकता है।

(१०) जोगिंग से व्यक्ति का शरीर इतना स्वस्थ और फुर्तीला हो जाता है कि वह धारणा से बहुत अधिक काम कर सकता है। नौकरी या व्यवसाय में वह सोत्साह भाग ले सकता है। त्वरित गति से सही निर्णय ले सकता है। व्यक्ति किसी भी प्रकार की शारीरिक या मानसिक प्रवृत्ति में निस्संकोच या निर्भयता के साथ भाग लेकर सफलता प्राप्त कर सकता है।

(११) जोगिंग करने से कमर का विस्तार कम हो जाता है।

(१२) स्त्रियों के लिए भी जोगिंग की कसरत अद्भुत और बेजोड़ है। नियमित जोगिंग करने से स्त्रियों के पैर पतले और सुडौल बनते हैं। कमर पतली होती है। मेद कम होने से पेट का मेद-युक्त हिस्सा सुडौल बन जाता है। नितंब छोटे हो जाते हैं। शिथिल बने हुए स्नायु मजबूत होने से स्त्रियों का शरीर सुडौल और आकर्षक बनता है। मन शांति का अनुभव करता है और कार्यशक्ति बढ़ती है। कमर और जोड़ों का दर्द कम हो जाता है। शरीर में यदि कोई रोग हो तो वह दूर हो जाता है और नये रोग की संभावना कम हो जाती है।

जोगिंग शुरू करने के पहले कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ :

(१) जोगिंग शुरू करने के पहले प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने शरीर का मेडिकल परीक्षण करा लेना बहुत जरूरी है। जहाँ संभव हो, वहाँ ट्रेडमिल टेस्ट करा लेना चाहिए। इसके बाद डॉक्टर के परामर्श के अनुसार ही व्यवहार करने का आग्रह रखें।

(२) जोगिंग शुरू करने के पहले वॉमिंग अप और पूर्ण होने पर कूलिंग डाउन की क्रियाएँ करना भी अत्यावश्यक हैं। ये क्रियाएँ लगभग सात मिनट तक करनी चाहिए। उक्त दोनों क्रियाओं में केलेस्थनिक्स की सामान्य कसरतें करनी पड़ती हैं। वॉमिंग अप यानी जोगिंग शुरू करने के पहले केलेस्थनिक्स कसरत करने से दौड़ की पूर्वतैयारी के रूप में शरीर के स्नायु, फेफड़े, हृदय आदि अवयव तैयार हो जाते हैं। वॉमिंग अप जोगिंग की पूर्वभूमिका के लिए है। जोगिंग के अन्त में कूलिंग डाउन करना है अर्थात् दौड़ पूरी करने के बाद श्वासोच्छ्वास की क्रिया, स्नायुओं की प्रवृत्तियाँ एकदम बन्द करने के बदले केलेस्थनिक्स कसरतों के माध्यम से धीरे-धीरे बन्द करनी होती हैं।

(३) जोगिंग करते समय शरीर से पसीना निकलता है । इसलिए शरीर में जल का संतुलन बनाये रखने के लिए जोगिंग के पहले, विशेषतः ग्रीष्म ऋतु में, एक प्याला जल पीना चाहिए ।

(४) रोगरहित दीर्घ आयु की अपेक्षा के साथ, कुछेक अपवादों को छोड़कर, जीवनभर यह कसरत करनी है – इसी दृढ़ संकल्प एवं स्वस्थ मनोबल के साथ जोगिंग की कसरत शुरू करनी चाहिए ।

(५) हृदय की गति, नाड़ी की गति, वजन और कमर, छाती, नितम्ब, जाँघ आदि शरीर के विविध अंगों के नाप को नोट कर लें और आरंभ से ही एक प्रगति-पत्र (Progress-card) बना लीजिए । इस कार्ड में जोगिंग की समयावधि, स्थान या रास्ता, शारीरिक व मानसिक स्थिति और नये अनुभवों को संक्षेप में रोजाना नोट करते रहिए।

(६) जोगिंग करते समय पुरुषों को सूती टी-शर्ट और चड्डी पहननी चाहिए । प्रारंभ में यदि चड्डी पहनने में संकोच हो तो सूती पेण्ट पहनना चाहिए । अपने पैर के नाप से आधा नम्बर बड़े कॅनवास के अच्छी किस्म के जूते और दो-दो मोजे (भीतर सूती और बाहर गर्म) पहनने चाहिए । स्त्रियों को सूती पंजाबी ड्रेस अथवा टी-शर्ट और पेण्ट पहनना चाहिए ।

(७) जोगिंग के समय यदि कोई साथ देनेवाला हो तो और भी उत्तम है । साथी के कारण जोगिंग का पूरा कार्यक्रम जारी रहता है। तथा तन और मन तत्पर रहते हैं ।

जोगिंग कैसे शुरू करें ?:

यदि आपने पिछले पाँच-दस वर्षों से किसी भी प्रकार की कोई कसरत न की हो तो आपको अपना शरीर जोगिंग के लिए तैयार करना आवश्यक है । ज्यादा जल्दबाजी करने की आवश्यकता नहीं

हैं। स्कूल-कॉलेज में आप कई खेल खेले होंगे या खेल-कूद की कई स्पर्धाओं में भाग लिया होगा, किन्तु अब ये सारी बातें आपके लिए बहुत पुरानी हो गई हैं। अब तो आपको जोगिंग के लिए अपने तन-मन को धीरे-धीरे पुनः तैयार करना है।

प्रारंभ में केवल मंद गति के साथ चलना शुरू करें। प्रथम आधा घण्टा चलें, फिर एक घण्टा चलें। फिर चाल को तेज करें। लगातार एक से डेढ़ महीने तक छह किलोमीटर प्रति घण्टे के हिसाब से चलिए। इसके बाद दौड़ शुरू कीजिए। प्रारंभ में पाँच मिनट दौड़िए, फिर पन्द्रह मिनट चलिए और फिर पाँच मिनट दौड़िए। इस प्रकार चलते-चलते दौड़ने का समय बढ़ाते जाइए। चलने या दौड़ने में कोई समय-मर्यादा नहीं है। न कोई स्पर्धा है और न ही इनाम का कोई प्रलोभन। आवश्यकता है केवल नियमित रूप से दौड़ का श्रम जारी रखने की। जोगिंग करते समय प्रारंभ में वर्षों से आराम करनेवाले स्नायुओं में थोड़ा-बहुत दर्द भी होगा। गति के कारण श्वासोच्छ्वास की क्रिया में भी तकलीफ होगी; किन्तु धैर्य और लगन के साथ परिश्रम किये बिना कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होती। इसी प्रकार जोगिंग की कसरत में भी नियमितता, धैर्य, लगन और अविरत परिश्रम के बिना उसके मधुर फलों का उपभोग नहीं हो सकता। नियमित रूप से लगातार जोगिंग करते रहने से धीरे धीरे आपको उसका अवर्णनीय आनन्द प्राप्त होगा। तन और मन सदा प्रफुल्लित बने रहेंगे। आपका शरीर छोटे बच्चे के शरीर की तरह हृदय में नई उमंग और उत्साह प्रकट करे। आपका तन-मन नये जोश और अनुभव से छलक उठेगा। साथ ही शरीर की रोग-प्रतिकारक शक्ति, शारीरिक क्षमता बढ़ेगी। मानसिक संतुलन को बनाये रखनेवाली शक्ति भी बढ़ेगी।

जोगिंग किसके लिए वर्जित है ?:

जिसका हृदय जन्म से ही कमजोर हो, हृदय के वाल्व में कोई क्षति हो, अत्यधिक उच्च रक्तचाप हो, जो पैरों के संधिवात से ग्रस्त हो, जिसे मिर्गी आती हो, जो निर्बल मनवाला हो, जिसे एनीमिया हो, जिसके पैर क्षतियुक्त हों, जो अत्यधिक शारीरिक श्रम करता हो, जो किसी लम्बी बीमारी से उठा हो, पीलिया अथवा लीवर के अन्य किसी रोग का रोगी हो, जिसे रीढ़ की संधि का रोग हो, जो पथरी (किडनी-स्टोन) के रोग से, फेफड़ों के रोग से या किसी भी प्रकार के मानसिक रोग से पीड़ित हो ऐसे किसी भी व्यक्ति के लिए जोगिंग की कसरत हितावह और फलस्वरूप इच्छनीय नहीं है ।

जोगिंग और दिल का दौरा तथा अन्य रोग :

आजकल हमारे देश में और विदेशों में दिल के दौरे (Heart-Attack) का रोग मानव-समाज का पहले नम्बर का दुश्मन बन गया है। किसी भी प्रकार की शारीरिक कसरत का अभाव 'दिल के दौरे' के कई कारणों में से एक कारण है । हृदय-रोग वंश-परंपरागत होने के बावजूद नियमित रूप से जोगिंग करनेवाले व्यक्ति को यह रोग होने की संभावना बहुत कम है । अन्तिम रिपोर्ट के अनुसार कसरत न करनेवाले व्यक्ति को हृदय-रोग होने की संभावना अधिक होती है । यही नहीं, ऐसे व्यक्ति को जब दिल का दौरा पड़ता है तो उससे बचने की संभावना भी नहीं के बराबर होती है । जबकि नियमित रूप से 'एरोबिक' कसरत करनेवाले व्यक्ति को हृदय-रोग होने की कोई संभावना नहीं होती और कदाचित् हो भी जाय तो उससे बचने की संभावना अधिक होती है । नियमतः जोगिंग करने से शरीर में रक्ताभिसरण की क्रिया नियमित और सरल हो जाती है, फलतः ऐसे व्यक्ति को यदि दिल का दौरा पड़ता है तो उसके हृदय को रक्त-प्रवाह सरलता से मिल जाता है, इससे उसकी जान बच जाती है ।

नियमित जोगिंग करने से हृदय की कार्य-शक्ति बढ़ती है। परिणामस्वरूप कीटाणुओं से उत्पन्न होनेवाले सर्दी-जुकाम, खांसी, बुखार, सरदर्द जैसे छोटे-छोटे रोग बिल्कुल नहीं होते। जोगिंग से शारीरिक क्षमता में वृद्धि होने के कारण उच्च रक्तचाप, मधुप्रमेह, दमा, एंजाइना आदि रोग होने की संभावना बहुत कम रहती है। और जिन लोगों को इस प्रकार के रोग हुए हों वे मेडिकल रिपोर्ट और डाक्टरी परामर्श लेकर यदि नियमित रूप से जोगिंग की कसरत करें तो उक्त रोगों के कारण शरीर में उत्पन्न होनेवाले प्रतिकूल प्रभाव से वच सकते हैं। यही नहीं, यदि वे इन रोगों के लिए किसी दवा का सेवन करते हों तो उन्हें कुछ समय के बाद ऐसी किसी भी दवा की आवश्यकता नहीं रहती और कालान्तर में उन्हें उन रोगों से मुक्ति भी मिल जाती है।

थोड़ी चेतावनी :

नियमों का दृढ़ता से पालन करते हुए सम्पूर्ण सतर्कता और नियमितता के साथ यदि जोगिंग की कसरत की जाए तो उससे अमूल्य लाभ होते हैं, किन्तु अंधा-धुन्ध और किसी भी प्रकार की शारीरिक पूर्व तैयारी के बिना जल्दवाजी में अथवा अधिक प्रमाण में यह कसरत की जाए तो अनेक हानियाँ भी होती हैं, जैसे टखनों और घुटनों के जोड़ों में दर्द होता है, स्नायुओं में तनाव उत्पन्न होता है, नाखून काले पड़ जाते हैं; मूत्र के साथ रक्त निकलने लगता है इत्यादि अनेक अप्रत्याशित तकलीफें पैदा हो जाती हैं। ऐसी विकृति या हानि न होने पाए इसलिए पुनः एक बार पाठकों का ध्यान इस वात की ओर आकर्षित किया जाता है कि जोगिंग करने के पहले पूरे शरीर का मेडिकल चेक-अप (परीक्षण) अवश्य करा लेना चाहिए। इसके बाद भी डॉक्टर की

सम्मति प्राप्त होने पर ही जोगिंग करना चाहिए और क्रमशः समय बढ़ाते-बढ़ाते पर्याप्त समय तक जोगिंग करना अत्यंत हानिकारक है।

'रनर्स क्लब-अहमदाबाद' का परिचय :

ई. स. १९७९ में अहमदाबाद शहर के कुछ उत्साही डॉक्टरों, वकीलों, प्राध्यापकों, सरकारी-अर्धसरकारी संस्थाओं के कर्मचारियों आदि के सहयोग से 'रनर्स क्लब-अहमदाबाद' का जन्म हुआ। इस क्लब में पचास आजीवन-सदस्य और चार सौ वार्षिक सदस्य हैं। सभी सदस्य प्रति रविवार को नवविकसित 'एरोबिक विज्ञान' के सिद्धान्त पर आधारित जोगिंग (मंद गति की दौड़) की कसरत सामूहिक रूप में करते हैं। नवरंगपुरा (अहमदाबाद) बस स्टॅण्ड के पीछे एक मैदान में अहमदाबाद म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ने तीन सौ मीटर का रनिंग ट्रॅक बनाया है। इसी ट्रॅक पर हर रविवार छह से सात बजे तक समूह-दौड़ के कार्यक्रम का आयोजन होता है और बाद में इसी मैदान में मीटिंग रखी जाती है। इस मीटिंग में क्लब के अधिकारी दौड़-विषयक शास्त्रीय और अद्यतन जानकारी देते हैं। क्लब का वार्षिक सदस्यता-शुल्क बारह रुपये हैं। क्लब के प्रत्येक सदस्य को क्लब की ओर से 'एम्बलेम' वाला टी-शर्ट उचित दाम पर दिया जाता है। रनिंग करते समय प्रत्येक सदस्य को यह टी-शर्ट पहनना अनिवार्य होता है। रविवार के अतिरिक्त अन्य दिनों में क्लब के सदस्य अपने-अपने निवासक्षेत्र में दौड़ते हैं। यह क्लब पब्लिक ट्रस्ट और सोसायटी के कानून के अनुसार पंजीकृत (Registered) है। आम जनता के लिए, स्कूल कॉलेजों में तथा लायन्स क्लब, रोटरी क्लब आदि संस्थाओं में क्लब के अधिकारी समय-समय पर जोगिंग विषयक मार्गदर्शन निःशुल्क देते हैं। क्लब के वार्षिकोत्सव पर प्रतिवर्ष लम्बी दौड़ के कार्यक्रम का आयोजन होता है। इस लम्बी दौड़ को पूरा करनेवाले प्रत्येक सदस्य

को क्लब की ओर से विजयपद्म (Trophy) दिया जाता है। आज तक क्लब ने तीन वार्षिक सेमिनार आयोजित किये हैं।

अहमदाबाद म्युनिसिपल कोर्पोरेशन की ओर से क्लब के रनिंग ट्रॅक के पास क्लब के लिए स्थायी मकान, फेन्सिग, विजली आदि की सुविधाएँ खड़ी की जा रही हैं। तदुपरांत रनर्स क्लब की ओर से अहमदाबाद के नागरिकों को जोगिंग विषयक प्रशिक्षण नियमित रूप से देने के लिए एक सुन्दर कार्यक्रम के वारे में विचार किया जा रहा है। क्लब के भावी कार्यक्रम के अन्तर्गत हृदय की मेडिकल जाँच के लिए ट्रेड मिल टेस्ट मशीन तथा कसरत-सम्बन्धी साधन एवं पुस्तकें खरीदने का भी निर्णय किया गया है। इस समय (१९८२) रनर्स क्लब के अध्यक्ष-पद पर अहमदाबाद के प्रसिद्ध सर्जन डॉ. अम्बरीश परीख तथा मंत्रिपद पर प्रसिद्ध पेथोलोजिस्ट डॉ. मुकुन्द मेहता, एल. डी. आर्ट्स कॉलेज के अर्थशास्त्र के प्राध्यापक श्री अरविन्द पटेल अपनी बहुमूल्य सेवाएँ दे रहे हैं।

जव तक आप कठोर परिश्रम नहीं करेंगे, तबतक आपको शक्ति प्राप्त नहीं होगी। यदि आप काम नहीं करते तो आपको शक्ति की आवश्यकता नहीं होती। जव आप शक्ति का उपयोग करते हैं तभी आपको शक्ति प्राप्त होती है। आप शक्ति का उपयोग कीजिए; शक्ति आप के पीछे स्वयं ही दौड़ती चली आएगी।

११. आहार-शास्त्र के नियम

हमारी निरोगता और दीर्घ आयुष्य का आधार हमारी जीवन-शक्ति पर है। जीवन-शक्ति का आधार हमारे भोजन पर है। आहार से जीवन-शक्ति मिलती है। अतः आहार उतना ही लेना चाहिए जो सरलता से पच जाय। आवश्यकता से अधिक भोजन जठर के लिए बोझ रूप है। उससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और आरोग्य को हानि होती है।

हमें यह कदापि न भूलना चाहिए कि विवेकपूर्वक लिये गये भोजन के एक-एक कौर में जीवन-शक्ति रहती है। जैसे, भोजन का वह कौर किस चीज का है, कैसा है, उसे कब लेना चाहिए, किस ढंग से लेना चाहिए, किसके साथ लेना चाहिए आदि विषयों का शास्त्रीय ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिए।

हमारा दैनिक भोजन सामान्यतः तीन हिस्सों में विभक्त हैं: (१) सुबह का नाश्ता (२) दोपहर का भोजन और (३) रात्रि का भोजन।

(१) सुबह का नाश्ता :

आरोग्यशास्त्र के विद्वानों का यह निर्विवाद मत है कि सुबह का नाश्ता अनावश्यक है। संशोधनों के द्वारा यह तथ्य सर्व प्रथम अमरीका के डॉक्टर ड्यूड़ ने प्रसिद्ध किया था। अधिकांश आहार-शास्त्रियों ने इस मत का समर्थन किया है।

गीता में भी मनुष्य को प्रथम यज्ञ अर्थात् श्रम-यज्ञ मेहनत-मजदूरी आदि करने का आदेश दिया गया है। परिश्रम करने के बाद ही भोजन करने का अधिकार प्राप्त होता है। इस प्रकार गीता में भी प्रातःकाल उठकर नाश्ता करने का निषेध किया गया है।

इस हकीकत का प्रत्यक्ष अनुभव हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को भी हुआ था । वे 'आत्मकथा' में लिखते हैं कि जब वे अफ्रीका में थे तब उन्हें हमेशा सरदर्द रहा करता था । उन्हें प्रतिदिन प्रातः-काल में नाश्ता करने की आदत थी । भारत के एक वैद्यराज ने उनके सरदर्द का निदान किया और बताया कि नाश्ता करने से 'आम' होता है और वही उनके सिरदर्द का कारण है । इस निदान का स्वीकार करके गांधीजी ने सुबह का नाश्ता त्याग दिया । गांधीजी लिखते हैं कि – "नाश्ते का त्याग करने के साथ ही मेरा सरदर्द भी गायब हो गया ।"

याद रखिए कि सुबह कोई भूखा नहीं उठता । अर्थात् जब हम सबेरे उठते हैं तब शरीर में 'आम' की–पूर्णतः न पचे हुए खुराक की उपस्थिति होती है । रात्रि के समय शरीर पूर्ण विश्राम में होता है । उस समय शरीर की सभी क्रियाएँ शिथिल हो जाती हैं । पाचन-तंत्र में मंदता आ जाती है । रात को किया हुआ भोजन प्रातःकाल तक भी अच्छी तरह पच नहीं पाता । इसलिए सुबह उठने के साथ ही यदि हम कुछ खाते हैं तो रात्रि के 'आम' के साथ नये खुराक के मिश्रण से जठर में सड़न शुरू हो जाती है । इस सड़न से वायुविकार (गैस) उत्पन्न होता है, जो सरदर्द या अन्य किसी विकृति के रूप में शरीर में उपद्रव करता है । इसलिए सुबह का नाश्ता छोड़ देने से 'आम' का अच्छी तरह पाचन होता है और दोपहर तक ताजी और सही भूख जागृत होती है ।

संक्षेप में, शतायु होने की अभिलाषा रखनेवाले व्यक्तियों को सुबह का नाश्ता नहीं करना चाहिए । कसरत द्वारा अथवा श्रम करके 'आम' का पूर्णतः पाचन करने के बाद ही अन्य आहार या भोजन ग्रहण करें ।

(२) दोपहर का भोजन :

कई लोग दोपहर का भोजन करने के बाद तुरन्त अपने नौकरी-धन्धे पर जाते हैं। सच पूछिए तो यह क्रिया भी आरोग्यशास्त्र के नियम के विरुद्ध है। याद रखिए कि नियमानुसार पाचन-क्रिया और श्रम साथ-साथ नहीं हो सकते।

शारीरिक श्रम (मेहनत-मजदूरी आदि) या कसरत करने के लिए शरीर को रक्त-प्रवाह की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार पाचन-क्रिया के लिए भी जठर को रक्त-प्रवाह की आवश्यकता होती है। श्रम और पाचन-क्रिया दोनों साथ-साथ करने से रक्त की कमी महसूस होती है। दोनों क्रियाओं को रक्त का आवश्यक प्रमाण उपलब्ध न होने के कारण पूरे शरीर-तंत्र में थकावट, बेचैनी, आलस्य, सरदर्द आदि अनेक विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। इन विकृतियों के परिणाभस्वरूप व्यक्ति कालान्तर में अनेक रोगों का शिकार हो जाता है। इसलिए श्रम और भोजन-कार्य साथ-साथ करने की प्रवृत्ति छोड़ देनी चाहिए।

एक दृष्टान्त : डॉ. शर्मा का कहना है कि उन्होंने दो कुत्ते पाल रखे थे। जब वे शिकार करने के लिए जाते तो अपने कुत्तों को खुराक नहीं देते थे। शिकार से लौटने के बाद ही वे उन्हें खाना खिलाया करते थे। एक दिन डॉ. शर्मा ने दोनों कुत्तों को एक ही प्रकार का भोजन भरपेट खिलाया। इसके बाद एक कुत्ते को घर पर ही विश्राम करने के लिए छोड़ दिया और दूसरे को शिकार में अपने साथ ले लिया। अपने घोड़े के पीछे उस कुत्ते को लगातार चार घण्टों तक दौड़ाया। घर आकर उन्होंने दोनों कुत्तों के पेट चीर कर परीक्षण किया तो मालूम हुआ कि घर पर आराम करनेवाले कुत्ते का भोजन हजम हो चुका था जबकि शिकार में साथ आए हुए कुत्ते के पेट में खाना ज्यों का त्यों पड़ा हुआ था।

शिकार में गए हुए कुत्ते को खाने के बाद तुरंत दौड़ना पड़ा था। दौड़ने के कार्य में व्यस्त अवयवों को पहले रक्त पहुँचा, अतः उसके जठर में भोजन का पाचन नहीं हुआ और वह ज्यों का त्यों पड़ा रहा। इस प्रकार भोजन करने के बाद उसे पचाने के लिए आराम की आवश्यकता रहती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह दोपहर को भोजन करने के बाद तुरन्त काम में न जुटे और थोड़ा विश्राम अवश्य करे।

(३) रात्रि का भोजन :

सूर्यास्त के पहले अथवा यथासंभव जल्दी रात्रि-भोजन ले लेना चाहिए। दोपहर के भोजन की अपेक्षा रात को कम भोजन लेना चाहिए। रात में निद्रावस्था में शरीर के अवयव शिथिल रहते हैं, अतः उनकी कार्यशक्ति मंद पड़ जाती है अर्थात् समग्र पाचन-क्रिया में भी मंदता आ जाती है। इसलिए रात को हल्का और कम भोजन लेने के लिए आरोग्य-शास्त्र में निर्देश किया गया है। कई लोग आरोग्य-शास्त्र के नियम के विरुद्ध भारी भोजन करने के बाद तुरन्त सो जाते हैं—यह अनुचित है। उस समय शरीर का सारा रक्त पाचन-क्रिया में सहायक होने के लिए जठर की ओर धँसता है। इससे अच्छी नींद नहीं आती। इसी प्रकार भूखे पेट सोने पर भी अच्छी नींद नहीं आती। रात को हल्का भोजन लेकर सोने से अच्छी नींद आती है।

खाली पेट—अधिक कार्य-शक्ति :

डॉ. शर्मा कहते हैं "Hunger is power." अर्थात् पेट खाली होता है तब पूर्ण शक्ति से कार्य हो सकता है। जठर खाली होने पर उसके समीपवर्ती अंगों में स्थित रक्त-प्रवाह (शक्ति) को काम में लिया जा सकता है।

डॉ. शर्मा उक्त सिद्धांत के उल्लंघन को ही सभी रोगों का मूल कारण बताते हुए लिखते हैं : "Work done on an empty stomach is done with great ease and power...... avoids ruinous competition between work and digestion which is the chief cause of nervousness, premature breakdown, neurasthenia, diabetes and other peculiarly modern affications."

भूखे पेट किया गया कार्य बड़ी सरलता और स्फूर्ति से होता है। कार्य और पाचन-क्रिया के बीच की स्पर्धा को वह दूर रखता है-यह स्पर्धा ही घबराहट, मानसिक हताशा, मधुप्रमेह, हृदय-रोग और अन्य कई आधुनिक प्राणघातक रोगों का मूल कारण है।

खाना खाकर तुरंत कार्य में व्यस्त हो जानेवाले वकीलों, अध्यापकों और अन्य नौकरीपेशा लोगों पर उपर्युक्त दृष्टांत लागू होते हैं। ४०-५० वर्ष की आयु में ही वे असमय ही वृद्धत्व, हृदय-रोग, मधुप्रमेह, मेदवृद्धि आदि रोगों के शिकार हो जाते हैं। वे ५०-६० वर्ष से अधिक जी नहीं पाते और अकाल ही काल के गाल में समा जाते हैं। पेट खाली होने पर दिमागी शक्ति खिल उठती है।

मानसिक रोगों के एक निष्णात डॉक्टर कहते हैं -'What is brain tonic ? It is nothing but shifting of power from belly to brain.' अर्थात् मस्तिष्क की शक्ति-वर्धक औषधि क्या है ? वास्तव में वह पेट से मस्तिष्क की ओर शक्ति के स्थानांतरण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। आशय यह है कि पेट खाली रखने से, पाचन-तंत्र और उसके आस-पास के अवयवों में स्थित रक्तप्रवाह को मस्तिष्क की ओर धकेलता है, जिससे मस्तिष्क के तंतुओं और कोषों

को पर्याप्त रक्त-प्रवाह (शक्ति) प्राप्त हो जाता है, फलस्वरूप मस्तिष्क पूरी शक्ति के साथ काम कर सकता है।

डॉक्टर कहते हैं–'There is no such thing as brain food; either fish or phosphates. The less food, the clearer brain. The purer food, the stronger brain that is all. To give one example, Sir Issac Newton, when employed on his most ardous labours lived on bread and water and fasted for long intervals.'

'मस्तिष्क का भोजन' जैसी कोई चीज है ही नहीं–फिर भले ही वह मछली हो या फॉस्फेट। ज्यों भोजन कम त्यों मस्तिष्क हल्का। शुद्ध भोजन मस्तिष्क को पुष्ट करता है। उदाहरण के लिए सर आइजॅक न्यूटन जब अतिशय कार्य–व्यस्त होते, तब केवल डबल रोटी और पानी से अपना काम चला लेते थे और दीर्घकाल तक उपवास किया करते थे।

संक्षेप में, मस्तिष्क से बढ़िया और संपूर्ण शक्ति से काम लेने के लिए पेट को खाली रखिए। आवश्यकता पड़ने पर आइजेक न्यूटन की तरह कम और हल्का भोजन लेकर मस्तिष्क से काम लिया करें।

अतिशय आहार : अनेक रोगों का घर :

श्री जगतसिंह काफी काम करके थकावट से चूर होकर घर लौटे। शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए उन्होंने अधिक मात्रा में गरिष्ठ भोजन किया। फिर आराम करने की कोशिश की। आराम न मिलने से बेचैनी शुरू हो गई। गरिष्ठ भोजन के कारण अफरा चढ़ने लगा। भोजन के अतिशय दबाव के कारण जठर से आवश्यक पाचकरस मुक्त नहीं हो पाये। उल्टे अफरा चढ़ने के कारण–विषाक्त तत्त्व उत्पन्न होने से जगतसिंह बेहोश हो गये। नसों पर दबाव हुआ।

फलतः उनका हृदय बन्द पड़ गया और प्राकृतिक नियम का उल्लंघन करने के लिए उन्हें मौत की सजा भुगतनी पड़ी।

'नेचर क्योर' के लेखक मि. रेडी मालेट लिखते हैं : "The greatest enemy of health and long life is over-eating .... Such over-eating is harmful in number of ways. It may cause indigestion, it may promote obesity, it may poison the whole system, it may throw a severe strain on heart, kidneys or liver." अर्थात् तन्दुरुस्ती और दीर्घायु का यदि कोई सबसे बड़ा दुश्मन है तो वह है अतिशय आहार (पेटूपन)। अतिशय आहार कई तरह से हानिकारक है। उससे बदहजमी होती है, शरीर की स्थूलता बढ़ती है, समूचा शरीर-तंत्र जहरीला वन जाता है या फिर हृदय, मूत्रपिण्ड और यकृत पर अतिशय तनाव पड़ता है।

आदमी को कितना खाना चाहिए, इस सम्बन्ध में उक्त लेखक की ही यह अनुभव-वाणी है —

"The secret of perfect health may be summed up as a complete combustion of the fuel put into human furnace. Indeed to be perfectly healthy one should live in a state of almost continuous gentle hunger."

सम्पूर्ण तन्दुरुस्ती का रहस्य संक्षेप में इस प्रकार बताया जा सकता है — मानव-भट्ठी में डाले हुए इंधन की संपूर्ण दहन-क्रिया। पूर्ण स्वस्थ रहने के लिए वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति को निरंतर थोड़ा भूखा रहना चाहिए।

आरोग्यशास्त्री कहते हैं कि हम जितना भोजन करते हैं, उसका केवल एक चौथाई हिस्सा ही हमारे शरीर की क्षति-पूर्ति के लिए पर्याप्त है । शेष तीन-चौथाई भाग हम डॉक्टर के लिए ही खाते हैं । अर्थात् यह तीन-चौथाई हिस्से का भोजन हम केवल स्वाद के लिए अनावश्यक होने के बावजूद खाते हैं और बीमार पड़ते हैं । इस प्रकार अतिरिक्त भोजन डाक्टर के बिल भरने के लिए कारणभूत बनता है ।

अन्त में, इतना याद रखिए कि मानव-जीवन की आयु-मर्यादा सौ वर्ष की है । शतायु होना प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है । अमरीका के कॉर्नेल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री क्लाइवमेइन ने अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करके घोषित किया है कि किसी भी प्राणी (पशु या मनुष्य) की आयुमर्यादा निश्चित नहीं होती । आयुष्य की वृद्धि करने में भोजन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान है । आपका भोजन ही आपकी आयु-मर्यादा निश्चित करता है ।

एकभुक्त सदा रोगमुक्त । एक समय का भोजन सिंह को भी तृप्त कर देता है । तो फिर मनुष्य के लिए तो वह पर्याप्त होना ही चाहिए । जो एक बार खाता है वह योगी है, दो बार खाता है वह भोगी है और तीन बार खाता है वह रोगी है । शरीर को मंदिर समझनेवालों को दोपहर के १२ से ३ के बीच (भोजन ग्रहण करने का सर्वोत्तम समय) केवल एक बार भोजन करना चाहिए । हम सबको उस दिन की प्रतीक्षा है जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को देखकर या उससे मिलकर वैसे ही आनन्द, उल्लास और प्रसन्नता का अनुभव करेगा जैसे उसे मंदिर को देखकर या उसमें प्रविष्ट होकर होता है ।

१२. गहरी नींद : आरोग्य की नींव

महर्षि चरक कहते हैं – "सुख और दुःख, शक्ति और अशक्ति. जीवन और मृत्यु यह सब निद्रा पर आधारित है।

इस शरीर रूपी इमारत के पाँच आधार स्तम्भ हैं-आहार-विहार, पानी, भोजन, व्यायाम और निद्रा। आधार-स्तम्भ जितने मजबूत होंगे उतनी ही यह इमारत भी मजबूत होगी। विशेषतः गहरी नींद हमारे आरोग्य की महत्त्वपूर्ण नींव है।

गहरी नींद से शरीर के प्रत्येक अवयव एवं धड़ में स्थित प्राण-धारक अवयवों को पर्याप्त आराम मिलता है और वे पुनः ताजगी और स्फूर्ति प्राप्त कर लेते हैं, पाचक रसों का स्राव अधिक मात्रा में होता है, शरीर के जर्जर कोश नष्ट होते हैं और नये कोशों का निर्माण होता है, रक्त की शुद्धि और वृद्धि होती है। स्नायु पुनः शक्ति प्राप्त कर चेतनायुक्त तथा पुष्ट बनते हैं। स्नायुओं में पुनः शक्ति प्राप्त करने पर आंतों के सारे दोष मल-मूत्र के द्वारा बाहर निकल जाते हैं, जिससे प्रातःकाल में शरीर में स्फूर्ति और शक्ति का आविर्भाव होता है।

आरोग्य की सुरक्षा में कदाचित् सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान नींद का है। सामान्यतः दिनभर कार्यक्रम में व्यस्त रहने से थका हुआ व्यक्ति सो जाता है, किन्तु आज के इस आपाधापी के युग में यह सामान्य बात भी असामान्य हो गई है। कुछ लोग तो रात में देर तक जागने के लिए चाय का आवश्यकता से अधिक सेवन करते हैं और जागरण करके आँख और मस्तिष्क को थका डालते हैं, शरीर के समस्त अवयवों को शिथिल कर डालते हैं। गहरी नींद आरोग्य की नींद है। नींद के बिना आदमी जिन्दा नहीं रह सकता। पुराने जमाने में तानाशाह शासक

कई बार अपराधियों को जागते रहने की सजा दिया करते थे अर्थात् उन्हें सोने नहीं देते थे। फलतः लगातार जागरण से वे मर जाते थे।

इससे मालूम होगा कि निद्रा का कितना महत्त्व है। सामान्यतः मनुष्य को प्रतिदिन सात-आठ घण्टे सोना चाहिए। इससे ज्यादा सोना भी उतना ही हानिकारक है। सोने के पूर्व शरीर को स्वच्छ करके प्राकृतिक क्रियाओं से निपट जाना चाहिए; ताकि बार-बार पेशाब आदि के लिए नींद में खलल न पड़ने पाए। ठण्डी-गर्मी के समय समशीतोष्ण वातावरण में सोने का स्थान पसंद करना चाहिए। ग्रीष्म-ऋतु में खुले आकाश के नीचे सोया जा सकता है। शीतकाल में ७५° तापमान वाले शयनकक्ष में सोने की व्यवस्था कीजिए। शाम के भोजन (ब्यालू) में हल्का भोजन लीजिए। ज्ञानतंतुओं को उत्तेजित करनेवाले प्रसंगों, दृश्यों और विचारों का परित्याग कर सोने का आयोजन करें। सोने के पहले मालिश करके गर्म पानी से स्नान करने से गहरी नींद आती है। सोते समय अपने गुरु-मंत्र का जप करते-करते निद्राधीन होने की आदत डालिए। शवासन की स्थिति में सोने से गहरी नींद आती है।

रात्रि के प्रथम चार घण्टे गहरी नींद आती है। उस समय निद्राधीन व्यक्ति की नींद में किसी भी प्रकार का विक्षेप न होने पाए- इस बात का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

जल्दी सोने से लाभ :

बड़ौदा-स्थित महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी के विज्ञान के एक प्राध्यापक ने जल्दी सोने से कौन-कौन से लाभ होते हैं, यह बताया है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि रात्रि के बारह बजे के पूर्व की नींद रात्रि के बारह बजे के बाद की नींद की अपेक्षा दुगुना आराम

देती है। मान लीजिए कि आप रात को बारह बजे के पहले अर्थात् दस बजे सो जाएँ तो आपको जितनी नींद प्राप्त होगी, उतनी नींद प्राप्त करने के लिए आपको रात के बारह के बाद चार घण्टे सोना पड़ेगा। ये प्राध्यापक महोदय अपने विद्यार्थी-जीवन में प्रतिदिन रात को दस बजे सो जाते और रात को दो बजे उठ जाते थे। इस प्रकार रात को बारह के पहले की उनकी दो घण्टे की नींद चार घण्टे की नींद के बराबर होती और बारह बजे के बाद की दो घण्टे की नींद जोड़कर (४+२ =६) कुल छह घण्टे की नींद उन्हें प्राप्त हो जाया करती थी जो उनके आरोग्य के लिए पर्याप्त थी।

यह पद्धति अपनाने के बाद उन्हें दिन के समय सोने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती थी।

दिन के समय कैसे सोएँ ? :

आजकल तो मिल, कारखाने और उद्योग दिनपाली, रातपाली और तीसरी पाली इस प्रकार चौबीसों घण्टे लगातार चालू रहते हैं। अतः रात पाली में नौकरी करनेवाले कारीगरों को दिन के समय सोने के लिए कमरे का खास प्रबन्ध करना चाहिए। कमरा इस तरह बन्द रखिए कि सूर्य की किरणें आँख की पलकों पर न पड़ने पाएँ। कमरा ७६° से ८०° तापमान वाला रखने से अच्छी नींद आती है। उजाला और बाहरी कोलाहल नींद में विक्षेप डालते हैं। इससे कई बार पूरी नींद नहीं हो पाती और स्वास्थ्य पर विकृत असर पड़ता है तथा शरीर को बीमारी घेर लेती है।

रात में काम करनेवाले कारीगरों के लिए दिन में सोना अनिवार्य हो जाता है। दिन में पलकों पर सूर्य का प्रकाश पड़ने से नींद में विक्षेप पड़ता है। ऐसी स्थिति में आँखों पर एक स्वच्छ रूमाल की पट्टी बाँध लें ताकि सूर्य-प्रकाश आँखों पर न पड़ने पाए। जेब-रूमाल

को आँखों पर रखकर उसके दो छोर कानों में फँसा देने से भी प्रकाश को रोका जा सकता है और नींद में विक्षेप नहीं पड़ता ।

कितनी नींद आवश्यक है ? :

सदा युवा रहने और शतायु होने के लिए कितने घण्टे की नींद आवश्यक है, इसका कोई माप-दण्ड नहीं है । सामान्यतः वयस्क व्यक्ति के लिए सात घण्टे की नींद पर्याप्त है, उम्र बढ़ने के साथ-साथ नींद कम होती है । किन्तु इस सम्बन्ध में ऐसा कोई नियम नहीं है । कई वृद्ध मनुष्यों को दस घण्टे से अधिक नींद की आवश्यकता पड़ती है, ऐसे लोग अधिक नींद लेकर भी स्वस्थ रहते हैं । कई लोगों को लगातार सात-आठ घण्टे सोना अनुकूल नहीं आता । ऐसे लोग चार घण्टे काम करके सो जाते हैं । इसके बाद दिन को कार्य करके दोपहर को एकाध घण्टे की नींद लेकर ताजगी प्राप्त करते हैं । महात्मा गाँधी जब भी समय मिलता तब आधा घंटा-एक घंटा नींद ले लेते थे । वे खूब काम करते और निरंतर कार्य-व्यस्त रहते थे । नेपोलियन बोनापार्ट घोड़े पर सवारी करते-करते ही सो लिया करते थे । अतिशय प्रवृत्ति के कारण उन्हें सोने का समय ही नहीं मिलता था । ऐसे व्यस्त लोग नींद के लिए अपनी विशिष्ट पद्धति खोज निकालते हैं और सदा काल के लिए नवजीवन प्राप्त कर लेते हैं ।

चाय-कॉफी से नींद हराम होती है :

कई लोगों को कॉफी पीने से नींद नहीं आती । कॉफी में रहा हुआ कॅफिन (Caffeine) मज्जातंत्र को क्षुब्ध और नींद को हराम करता है ।

इसी प्रकार चाय भी मज्जातंत्र को क्षुब्ध करती है और नींद हराम करती है। चाय और कॉफी-दोनों में अत्यधिक प्रमाण में टेनिक एसिड समाविष्ट है, जिससे नींद नहीं आती-पाचन-क्रिया मंद होती है और कब्ज की जड़ें जमती हैं।

शाम के भोजन में दूध, सब्जी और फलों का समावेश कीजिए। रात को सोते समय एक गिलास गर्म दूध पीजिए। दूध में शक्कर और घी डालकर पीने से अच्छी नींद आती है। नींद न आए तो मालिश करके गर्म पानी से स्नान करें। फिर आरामकुर्सी में आराम करें। अपने गुरुमंत्र का रटन कीजिए। आराम कुर्सी में आराम करते-करते आँखें बोझिल होने लगें तब भगवान का नाम-स्मरण करते-करते ब्राह्ममुहूर्त में जल्दी उठने के निश्चय के साथ बिस्तर में जाकर लेट जाइए।

१३. इच्छा-शक्ति और मनोबल

शरीर को व्यायाम के द्वारा कसने के साथ-साथ इच्छा-शक्ति को भी यदि प्रबल बनाया जाय तो निश्चय ही दुगुना लाभ होता है।

एक पहलवान अनेक प्रकार के दाँव-पेच आजमाकर गर्दन के स्नायुओं को मजबूत बनाने के प्रयोग करता है। वह मालिश, मुक्केबाजी, गर्दन घुमाने की कसरत एवं शीर्षासन और सर्वांगासन् करता है। इसके साथ ही प्रबल इच्छा-शक्ति का भी विकास करता है। वह सतत ऐसे प्रयत्न करता रहता है तभी उसकी साधना सफल होती है। आईने में अपनी गर्दन देखकर कंधों को मांसल और मजबूत बनाने की उसके हृदय में आशा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार प्रत्येक अंग को विविध कसरतें दी जायँ तथा उनको विकसित करने की इच्छा-शक्ति हो, तभी अपेक्षित परिणाम प्राप्त होगा। इच्छा-शक्ति के अभाव में व्यायाम करने में ऊब पैदा होती है, व्यक्ति प्रमादी हो जाता है। अतः अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होता। इच्छा-शक्ति से कैसे-कैसे चमत्कार होते हैं यह जानने के लिए प्रसिद्ध डॉक्टरों के कुछ प्रमाणभूत मन्तव्य देखिए :

"इच्छाशक्ति और मनोवल से हृदय की धड़कनें धीमी या तेज होती हैं। कई बार तो भय या क्रोध के तीव्र आवेग के कारण हृदय का धड़कना एकदम रुक जाता है।"

"अतिशय भय के कारण मूर्च्छा आने या मृत्यु होने की संभावना विशेष रहती है।"

"शरीर के किसी भी हिस्से पर एकाग्रतापूर्वक लक्ष्य देने पर वहाँ होनेवाले परिवर्तनों का स्पष्ट अनुभव होगा। इस प्रकार इच्छा-

शक्ति के द्वारा चेहरे पर फीकापन या लाली लाई जा सकती है तथा शरीर के भिन्न-भिन्न भागों को विकसित किया जा सकता है।"

"क्रोध के कारण अमृत-रस उत्पन्न करनेवाली ग्रन्थियों पर अनिष्ट प्रभाव पड़ता है।"

"भय से हृदय के कार्य में और चिन्ता से जठर के कार्य में विक्षेप उत्पन्न होता है।"

उपर्युक्त अनुभव-सिद्ध विधानों से इतना तो स्पष्ट है कि हमारे जीवन-निर्माण में इच्छा-शक्ति का महत्त्वपूर्ण योगदान है। हमारी विचार-धारा की छाप हमारे चेहरे पर स्पष्ट रूप में उभर आती है। यदि हम लगातार चिन्ता में रहेंगे तो उसका आभास हमारी मुखाकृति और व्यवहार से मिल जाता है।

कीड़ा निरंतर भ्रमर के भ्रम में पड़कर स्वयं भ्रमर ही हो जाता है। इसे 'कीट-भ्रमर न्याय' कहा जाता है। इस न्याय के अनुसार व्यायाम करते समय आप जैसी इच्छा रखेंगे वैसा ही लाभ होगा। कसरत करने में जितनी श्रद्धा, इच्छा या लगन होगी उसी के अनुपात में लाभ होगा। श्रद्धा के अभाव में और व्यायाम से शरीर को लाभ होगा या नहीं, यह शंका रखकर किसी का अनुकरण करते हुए अथवा किसी अभिभावक या अन्य व्यक्ति के दबाव में आकर कसरत करने से कोई लाभ नहीं होगा।

मनोबल कैसे जुटाएँ ?:

सर्वप्रथम आपको किस प्रकार की कसरतें करनी हैं इस सम्बन्ध में अच्छी तरह विचार कर लें। इसके बाद आप उन लोगों से मिलें जो नियमित रूप से कसरत करते हों। व्यायाम के निष्णात व्यक्तियों के साथ कसरत से होनेवाले लाभों के सम्बन्ध में चर्चा करें।

कसरत सम्बन्धी दो-तीन अच्छी पुस्तकें खरीदकर पढ़ें और उनका मनन करें। इस प्रवृत्ति से आपका विश्वास दृढ़ होगा कि कसरत लाभदायक है और आपका मनोबल भी मजबूत बनेगा।

कसरतें शुरू करने के पहले आप अपने खुले बदन की एक तस्वीर खिंचवाइये। अपने शरीर के वजन को भी नोट कर लीजिए। सीना (सामान्य और साँस लेकर फुलाया हुआ); पेट, कमर, जाँघ, भुजा, गर्दन आदि के नाप की एक सूची भी बनाइये।

कसरत का प्रयोग करते-करते पन्द्रह दिन हो जाएँ तब उसी नाप और प्रकाश में उसी हिस्से की तस्वीर फिर खिंचवाएँ। इससे शरीर में जो परिवर्तन हुआ होगा वह तुरन्त मालूम हो जाएगा। आपका दुबला-पतला शरीर मांसल और स्नायुबद्ध मालूम होगा तथा स्थूल शरीर का अनावश्यक मेद कम हुआ प्रतीत होगा। आप स्वयं अनुभव करेंगे कि आपका वजन कम हो गया है तथा मांसपेशियाँ सघन होकर चमक उठी हैं। आपको लगेगा कि आपका शरीर स्थूलता का त्याग कर सौन्दर्य और सौष्ठव से युक्त हो गया है। वजन कम होने से शरीर में ताजगी और हल्कापन महसूस होगा। एक बार लाभ होने पर इच्छा-शक्ति जागृत होगी इस प्रकार मन की एकाग्रता के साथ व्यायाम का मेल होते ही हमेशा चमत्कारिक परिणाम प्राप्त होते हैं।

मेरे एक मित्र की पुत्रवधू श्रीमती मीनाक्षीबहन सरकारी बेंक में नौकरी करती हैं। उनकी उम्र ३२ वर्ष की है। वे निःसंतान हैं। उनका शरीर स्थूल और भारी था। मेरे मित्र ने मुझसे मार्गदर्शन चाहा मैंने वजन कम करने के लिए उन्हें व्यायाम करने की सलाह दी। वजन और छाती में होनेवाले परिवर्तनों को नोट करवाया। कमर और पेट के घेरे का नाप भी नोट करवाया। वजन कम करने के लिए कम

कॅलरीवाला भोजन करने की सूचना दी और मेद को कम करनेवाली कसरतें करवाइं। नौकरी से पन्द्रह दिनों की छुट्टी लेने और पूरे शरीर की मालिश करने के लिए भी कहा। मेद को कम करनेवाले कुछ अन्य प्रयोग भी करवाए।

[आकृति १२ : बेडौल से सुडौल]

पन्द्रह दिनों में तो बहुत लाभ होता दिखाई दिया। जो शरीर पहले मुरमुरों से भरे थैले के जैसा थुल-थुल था वह सुगठित हो गया और स्नायुबद्ध दिखने लगा। पन्द्रह दिनों में दस रतल (पाउण्ड) वजन कम हो गया। कमर और पेट का घेरा भी कम हो गया। इससे मीनाक्षीबहन को कसरत और अन्य प्रयोगों में श्रद्धा उत्पन्न हुई। अब तो उनकी इच्छा-शक्ति

और भी जाग्रत हुई। अतः वे प्रतिदिन दो बार कसरत करतीं, नगरपालिका के स्नानागार में तैरने जातीं, बॅडमिण्टन खेलने जातीं। इससे वजन कम करने का निर्धारित लक्ष्य प्राप्त हो सका। मेरे मित्र और मीनाक्षी-बहन के ससुरजी के आनंद का पार न रहा। आज मीनाक्षीबहन तीन बच्चों की माँ हैं। आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण अब वे बैंक की नौकरी नहीं करतीं हैं, किन्तु अनेक दुर्बल, बीमार, क्षीण और स्थूलकाय बहनों को कसरत सिखाती हैं, मार्गदर्शन देती हैं। इस प्रवृत्ति के द्वारा वे परोक्ष रूप से अनेक दुःखी बहनों के आशीर्वाद प्राप्त कर रही हैं।

विश्वविद्यालय के एक निवृत्त प्रोफेसर मित्र पिछले दसेक वर्षों से गठिया (वातरोग) से पीड़ित हैं। कोई दवा उन्हें लागू नहीं होती। लाठी के सहारे बड़ी मुश्किल से घर में चलते-फिरते हैं। हाथ-पैरों में सूजन रहा करती है। पत्र तक नहीं लिख सकते, फिर भी अपनी तीव्र इच्छा-शक्ति के कारण ही अपनी इस बीमार हालत में भी वे एक वर्ष अमरीका में रह आये हैं। अमरीका की कड़ाके की ठण्ड में भी उन्हें कोई दिक्कत नहीं हुई।

जैसा मन वैसा तन :

तन्दुरुस्ती और दीर्घायुष्य का मुख्य आधार मनुष्य की मानसिक स्थिति है। 'अब मैं बूढ़ा होता जा रहा हूँ' इस प्रकार की मानसिक भावना से हिम्मत कम होती जाती है और जीवन का अन्त नजदीक आता दिखाई देता है। इसी प्रकार सुदीर्घ काल तक जीने की प्रबल इच्छा का प्रभाव भी पड़े बिना नहीं रहता। यदि कभी हम हिंमत हार जाते हैं तो उस समय हमें अपना बल कम हो गया हो या बिल्कुल ही समाप्त हो गया हो, ऐसा लगता है। इसके विपरीत यदि हम हौसला रखेंगे तो बल बढ़ता हुआ महसूस होता है। यदि हम सचमुच ही ऐसा

मानकर चलने लगें कि अब हम पर उम्र का प्रभाव पड़ने लगा है, बुढ़ापा शीघ्रतापूर्वक आ रहा है, और हमें अपनी चपेट में ले रहा है तो हम स्फूर्ति और परिश्रम के साथ करने योग्य कामों को छोड़कर आलसी और निठल्ले हो जाएँगे। ऐसी स्थिति में रक्त के परिभ्रमण (रक्ताभिसरण) की क्रिया भी मंद पड़ जाती है। इससे रक्त स्थगित हो जाता है। चेहरे पर वृद्धावस्था के चिह्न झलकने लगते हैं। इस प्रकार अनेक लोग अकाल ही वृद्ध हो जाते हैं।

यदि आपसे कोई कहे कि 'आप अब बूढ़े होने लगे हैं' तो भी आप न मानें, आप यही उत्तर देते रहें कि "मैं तो अभी जवान हूँ।" अपने मन में वृद्धावस्था के भूत का प्रवेश न होने दें। जो व्यक्ति ब्राह्म-मुहूर्त में उठता है, नियमित कसरत करता है, विवेकपूर्वक भोजन करता है, स्थितप्रज्ञ है, वह हमेशा युवा रहता है। वह कभी बूढ़ा नहीं होता। मन के साथ विचार की पक्की गिरह बाँध लीजिए। अपनी इच्छा-शक्ति की तेजोमय किरणें अपने सदाबहार यौवन पर फैलने दें। आप इच्छा-शक्ति के सर्वोच्च शिखर पर विराजिए ताकि यमराज भी आपके पास पहुँच न सकें।

इस प्रकार इच्छा-शक्ति जाग्रत करने से आपके शरीर में सुधार होगा। उसमें से तन्दुरुस्ती, ताजगी और स्फूर्ति के फव्वारे छूटेंगे। आपकी उम्र चाहे जितनी हो, आप बुढ़ापे पर सम्पूर्ण विजय प्राप्त कर लेंगे।

हमारा वर्तमान जीवन हमारे पिछले चिंतन की ही परिणति है। हमारे विचारों से ही हमारा प्रारब्ध निर्मित होता है। अपवित्र विचार भी अपवित्र कर्म के बराबर ही भयंकर होते हैं। दिव्य और उत्तम विचारों को निरंतर मन में सँजोते रहने से मनुष्य के सत्, चित् और आनंद का स्वरूप खिलता रहता है।

१४. व्यसन आयु घटाता है

मदिरा वनस्पति एवं प्राणिजगत दोनों के लिए घातक है। वास्तव में यह एक ऐसा विष है जो मनुष्य की मौत को समय के पहले बुलाता है। मदिरा पिलाने से वनस्पति भी नष्ट हो जाती है, यही नहीं मदिरा की दुर्गन्धमात्र से फूल-पौधों तक का नाश हो जाता है। शराब की दुर्गन्ध से फूल की कली का खिलना बन्द हो जाता है और वह समय के पूर्व ही झड़ जाती है। इसी प्रकार यदि पेड़-पौधों की क्यारियों में मदिरामिश्रित पानी डाला जाए तो उनमें फल नहीं लगते और धीरे-धीरे वृक्ष सूखने लगते हैं। जब वनस्पति के लिए मदिरा इतनी प्रतिकूल है तो मनुष्य के लिए वह कैसे अनुकूल होगी ?

इसी प्रकार पशु-पक्षियों पर किये गये प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि उनके लिए भी शराब हानिकारक है। भोजन में शराब मिलाकर खिलाने से सियार (गीदड़), कुत्ता, कबूतर, उल्लू आदि पशु-पक्षी अकाल ही मरण की शरण हो जाते हैं। संक्षेप में वनस्पति, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि जो-जो शराब के संसर्ग में आते हैं उन सब पर शराब का जहरीला प्रभाव पड़ता है और अन्त में उनका नाश होता है।

शराब पीने से मनुष्य के अंग निश्चेष्ट हो जाते हैं। शराब में भिगोए हुए फाहे को शरीर के किसी अंग पर लगातार पन्द्रह-बीस मिनट तक रगड़ने से वह अंग सुन्न पड़ जाता है। इसी प्रकार एक चम्मच शराब दो-तीन मिनट तक मुँह में रख छोड़ने से हमारी स्वादेन्द्रिय भी सुन्न पड़ जाती है। फिर हमें मिठास या तीखेपन का अनुभव नहीं हो पाता। यदि डॉक्टर चाहे तो मरीज को खूब शराब पिलाकर शल्यक्रिया (ऑपरेशन) कर सकता है, क्योंकि अधिक मात्रा में शराब

पीने से अवयव सुन्न पड़ जाते हैं। मनुष्य के अंगों को सुन्न करने और उसे बेहोश करने के लिए उपयोग में आनेवाले ईथर और क्लोरोफोर्म शराब से ही बनते हैं। शराब से शरीर के अंगों की शक्ति तो नष्ट होती ही है, पाचन-क्रिया भी मन्द पड़ जाती है और अन्त में शरीर का ही नाश हो जाता है।

शराब भोजन नहीं है :

डॉक्टरों ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि शराब किसी भी प्रकार का भोजन नहीं है। दो व्यक्तियों से प्रायोगिक रूप में उपवास कराया गया। एक व्यक्ति को उचित मात्रा में उसकी इच्छा के अनुसार शराब पिलाई जाती। शराब के साथ आवश्यकतानुसार उसे पानी भी दिया जाता। यह व्यक्ति पच्चीसवें दिन मर गया। दूसरे व्यक्ति को केवल जल पर रखा गया। यह व्यक्ति साठ दिनों तक जीवित रहा। जैनों के पर्युषण पर्व में कई धार्मिक श्रावक साठ-सत्तर दिनों तक के उपवास कर सकते हैं। इससे विदित होता है कि शराब में किसी प्रकार का जीवन पोषक तत्त्व नहीं है।

शराब से पाचन-क्रिया बिगड़ती है :

एडिनबरो के डॉक्टर फिग ने दो कुत्तों पर एक प्रयोग किया था। दोनों कुत्तों को एक ही प्रकार का भोजन खिलाया गया। इसके बाद एक कुत्ते के पेट में नली (ट्यूब) के माध्यम से शराब पहुँचाई गई। पाँच घण्टों के बाद दोनों कुत्तों के पेट चीरकर परीक्षण किया गया तो मालूम हुआ कि जिस कुत्ते को शराब नहीं दी गई थी उसके पेट का भोजन हजम हो गया था, जबकि दूसरे कुत्ते के पेट में शराब के कारण भोजन हजम होने की प्रक्रिया अभी शुरू हो रही थी। अतः सिद्ध होता है कि शराब से पाचन-क्रिया बिगड़ती है।

शराब पीनेवाले पागल हो जाते हैं :

पागलों के दवाखाने का सर्वेक्षण करने पर पता चला कि प्रति दस पागलों में छह व्यक्ति बेहद शराब पीने के कारण ही पागल हो गये थे ।

शराब पीनेवाले दीर्घायु नहीं होते :

जिन लोगों को शराब पीने की लत पड़ जाती है, उनके मूत्रपिण्ड और यकृत सर्वप्रथम बिगड़ने लगते हैं । फिर अन्य अवयवों की क्रियाएँ रुकने लगती हैं । इस प्रकार शराबी व्यक्ति असमय ही पक्षाघात या लकवे जैसे रोगों का शिकार हो जाता है और छोटी उम्र में ही चल बसता है ।

शराब पीने से होनेवाली हानियाँ :

(१) शराब पीने से मुँह में लार विशेष मात्रा में उत्पन्न होती है । शराब पचाने में लाररस की कोई आवश्यकता नहीं है । इसलिए वह व्यर्थ हो जाता है । उसके जठर में पहुँचने पर जठररस भी अधिक मात्रा में निकलता है । शराब का जठर में शोषण होता है, उस समय जठर-रस की आवश्यकता नहीं पड़ती और वह भी व्यर्थ चला जाता है । अन्य भोजन पचाने के लिए ये रस पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते । इससे मंदाग्नि, अनपच, बद्ध कोष्ठ आदि रोग लागू हो जाते हैं । शराब का अत्यधिक मात्रा में सेवन करने से उल्टियाँ होती हैं और जठर में घाव पड़ जाते हैं ।

(२) यकृत पर शराब का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है । प्रारंभ में यकृत फूल जाता है; बाद में क्रमशः संकुचित होकर कद में बिल्कुल छोटा हो जाता है । इसलिए वह अपने कार्य ठीक से नहीं कर पाता ।

(३) शराब से हृदय उत्तेजित होता है, रक्तवाहिनियाँ फूल जाती हैं, इससे उनमें विशेष मात्रा में रक्त प्रवाहित होता है। उसका प्रभाव हृदय पर पड़ता है और हृदय कमज़ोर हो जाता है। रक्तवाहिनियों में रक्त तेजी के साथ बहता है तब भोजन का दहन भी तेजी से होता है और गर्मी उत्पन्न होती है। इससे शरीर को क्षणिक ऊष्मा मिल जाती है, किन्तु रक्तवाहिनियाँ चौड़ी हो जाती हैं और चमड़ी को गर्मी दे देती हैं। अतः बाद में शरीर ठण्डा पड़ जाता है और कँपकँपी होने लगती है।

(४) शराब के रक्त में मिलने से रक्तकणों और श्वेतकणों को हानि पहुँचती है। फलतः शरीर की रोग-प्रतिकारक शक्ति कम हो जाती है। इससे श्वासनलिका और फेफड़े भी कमज़ोर हो जाते हैं और शराबी को सर्दी, जुकाम, न्यूमोनिया और इन्फ्लूएंजा जैसे रोग लागू पड़ते हैं।

(५) मदिरा-पान से रक्त आँखों पर धँस आता है, जिससे आँखें लाल सुर्ख रहती हैं और आँखों का तेज कम हो जाता है तथा वे क्रमशः निर्बल पड़ती जाती हैं।

(६) शराब का कुप्रभाव पड़ने पर मूत्रपिण्ड रक्तशुद्धि का कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं; फलस्वरूप जोड़ों में दर्द होने लगता है और संधिवात का रोग लागू पड़ जाता है। मूत्रपिण्डों की अशक्ति के कारण एल्ब्यूमिन नामक पोषक द्रव्य मूत्र के साथ निकल जाता है।

(७) स्नायुओं पर भी शराब का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। शराबजन्य उत्तेजना के समय स्नायुओं को विशेष कार्य करना पड़ता है। किन्तु बाद में थकावट के कारण वे शिथिल पड़ जाते हैं।

(८) शराब का सबसे बुरा असर ज्ञानतंत्र पर पड़ता है। उससे मस्तिष्क और ज्ञानतंतु उत्तेजित हो जाते हैं। परिणामस्वरूप थोड़ी

देर के लिए अकृत्रिम उत्साह का अनुभव होता है। बाद में स्मरण-शक्ति कुंठित हो जाती है। तर्क-शक्ति और भला-बुरा समझने की विवेक-बुद्धि नष्ट हो जाती है। उच्च गुणों के ज्ञान-केन्द्र शिथिल हो जाते हैं और व्यक्ति आत्मनियंत्रण गँवा बैठता है। वह अंटशंट बोलने और अकार्य करने लगता है। शराब का असर छोटे मस्तिष्क पर होते ही शराबी शारीरिक सन्तुलन **गँवा** बैठता है और उसके कदम लड़खड़ाने लगते हैं। अधिक मात्रा में नशा चढ़ जाने पर व्यक्ति बेहोश हो जाता है। इन तमाम दुष्प्रभावों के कारण शराबी की उम्र घट जाती है।

तम्बाकू के सेवन से होनेवाली हानियाँ :

तम्बाकू में निकोटिन नामक उत्तेजक और विषैला पदार्थ होता है। उससे ज्ञान-तन्तु सतेज वनते हैं, किन्तु निकोटिन का असर दूर होते ही वे शिथिल हो जाते हैं।

बीड़ी, सिगरेट या चिलम पीने से निकोटिनयुक्त धुआँ फेफड़ों में जाता है। इससे मुँह, नाक, गले, श्वासनली और फेफड़ों की आन्तर्त्वचा को हानि पहुँचती है। तम्बाकू के अत्यधिक सेवन से फेफड़ों के रोग लागू पड़ते हैं। खाँसी और दमा जैसी व्याधियाँ हो जाती हैं। इनसे भी अधिक भयंकर रोग—जीभ, गले और फेफड़ों का कॅन्सर—होने की संभावना रहती है।

तम्बाकू के व्यसन से हृदय फैल जाता है और नरम वन जाता है। इससे उसकी धड़कनें अनियमित हो जाती हैं।

ज्ञानतन्तुओं पर निकोटिन का गहरा असर पड़ता है। आँखें फीकी, पीली और लाल होकर निस्तेज बन जाती हैं। हाथ में लकवा मार जाता है और वह काँपता रहता है।

कई लोगों को तम्बाकू खाने की आदत होती है। उनकी पाचन-शक्ति मंद पड़ जाती है। तम्बाकू खाने से मुँह में कॅन्सर होने की संभावना रहती है। तम्बाकू को छिकनी (सुँघनी) के रूप में सूंघने से श्वसन-मार्ग को हानि पहुँचती है।

चाय पीने से होनेवाली हानियाँ :

चाय में उड़ जानेवाला एक सुगन्धित तेल एवं थीइन और टेनिन नामक दो उत्तेजक पदार्थ होते हैं। थीइन से ज्ञानतन्तु उत्तेजित होते हैं और शरीर में स्फूर्ति का अनुभव होता है, किन्तु अधिक मात्रा में चाय पीने से उत्तेजना के कारण नींद उड़ जाती है; और विश्राम नहीं मिल पाता। जागरण के कारण सरदर्द होता है, दिल की धड़कनें बढ़ जाती हैं और पेट खराब हो जाता है। सरदर्द दूर करने के लिए व्यक्ति अधिक चाय पीता है और पुनः उत्तेजना बढ़ने से नींद चली जाती है। यह विषचक्र चलता रहता है और स्वास्थ्य बिगड़ता जाता है।

टेनिन से पाचन-क्रिया के अंगों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पशुओं के मुलायम चमड़े को टेनिन के द्वारा सख्त बनाया जाता है। इसी तरह टेनिन के असर से आँतों के स्नायु भी कठोर बन जाते हैं, उनकी स्थिति-स्थापकता कम हो जाती है और इससे भोजन अच्छी तरह नहीं पच पाता। बिन पचा भोजन आगे नहीं बढ़ता, इससे अजीर्ण और कब्ज जैसे रोग हो जाते हैं। भूख नहीं लगती। सर में दर्द रहता है। शरीर की स्फूर्ति घट जाती है और रोग-प्रतिकारक शक्ति कम हो जाती है तथा आये दिन सर्दी-जुकाम होता रहता है।

जगत को कुछ ऐसे लोगों के माध्यम से सर्जनात्मक वस्तुओं की उपलब्धि हुई है, जो व्यसनों, मादक पदार्थों या असात्त्विक खाद्य पदार्थों का लगातार सेवन करते रहते थे। इन उदाहरणों का यह अर्थ-घटन नहीं किया जा सकता कि व्यसन, मादक पदार्थ या असात्त्विक खाद्य पदार्थ पथ्य हैं। इस प्रकार के तथाकथित सर्जनों के विना मानव-समाज पंगु रह गया होता, यह मत स्वीकार करने के पीछे कोई कारण नहीं है।

१५. एकमात्र दवाओं पर आधार न रखें

[अत्यधिक प्रचार के कारण अंग्रेजी दवाओं के वढ़ते हुए उपयोग से लोगों को सावधान करना ही प्रस्तुत अध्याय का एकमात्र उद्देश्य है ।]

जिसे आजीवन किसी डॉक्टर या दवा की आवश्यकता न हो, जो जीवनभर निरोगी रह सके, वह व्यक्ति आज के युग में वड़ा भाग्यशाली माना जाएगा । कोई भी औषधि रोग को जड़मूल से नष्ट नहीं कर सकती । यह शक्ति तो मनुष्य-शरीर की जीवन-शक्ति में ही है । अकसीर और रामबाण, प्राणरक्षक मानी गई दवाओं का प्रयोग करने पर भी रोगी स्वस्थ क्यों नहीं हो पाता ? क्यों वह मौत का शिकार हो जाता है ? रोग केवल दवा की प्रभावकता के कारण दूर नहीं होता, किन्तु मानव की जीवन-शक्ति और शरीर में स्थित रोग-प्रतिकारक शक्ति के कारण दूर होता है ।

इस हकीकत के समर्थन में जर्मन के सुप्रसिद्ध साहित्यकार गेरे का एक अमर पात्र डॉ. फोस्ट अपने आपकी हार्दिक निन्दा करता है और पश्चात्ताप करते हुए इस प्रकार आत्म–भर्त्सना करता है : "क्या सचमुच मैं लोक-प्रशंसा के योग्य हूँ ?" अकसीर मानी जानेवाली दवा लेने के बाद भी क्या कुछ लोग बीमार हालत में ही दम नहीं तोड़ देते ? प्रकृति की रहस्यमयी करामात के बीच रोग के फैलावे जैसे हम नरक जैसी दवाओं की बोतलें दिये चले जाते हैं। हमारे द्वारा वितरित दवाओं के जहरीले प्रभाव से हजारों लोग बेमौत मर चुके हैं । फिर भी लोग हमारे जैसे कातिलों की 'वाह ! वाह !' करते हैं । क्या हम उसे खामोशी के साथ सुनते रहें ?

डॉ. जॉन्सन कहते हैं— "आदमी बीमार पड़ने पर बेवकूफ नहीं हो जाता किन्तु दवा, इंजेक्शन, ऑपरेशन आदि आधुनिक चिकित्सा के नाम पर उसे बेवकूफ बनाया जा रहा है। प्रचारतंत्र ने आदमी के विचार-तंत्र को भ्रष्ट करके बिल्कुल कुण्ठित कर दिया है।"

"सच्चा डॉक्टर वही है जो अपनी दवाओं की व्यर्थता समझता है।" — डॉ. विलियम ऑस्लर

"डॉक्टरी सफलता के सौ में से निन्यानबे किस्से सिर्फ डॉक्टरी झूठ हैं।" — प्रो. ग्रेगरी

"मैं अन्तःकरण पूर्वक अपना मन्तव्य व्यक्त करता हूँ कि यदि इस भूपृष्ठ पर एक भी डॉक्टर, एक भी चिकित्सक, एक भी दाई; एक भी दवा-विक्रेता न हो तो बीमारियाँ अपने आप कम हो जायँ और यातना भोग कर अकाल ही मरजानेवाले मनुष्य आरोग्य पूर्ण दीर्घायु प्राप्त कर लें।" — डॉ. जेम्स जेन्सन

"हमने रोगों के गुणाकार किये हैं। साथ ही मृत्यु के भी गुणाकार किये हैं।" — डॉ. रश

"तोप, तलवार, बन्दूक, महामारी और अकाल की भीषण वरबादियों से भी अधिक वरबादियाँ दवाओं ने की हैं।"

— डॉ. जे. मेशनवुड

"मैंने अपने सुदीर्घ अनुभव में यह देखा है कि अधिकांश एँपेण्डि-साइटिस और पित्ताशय की पथरी के मामलों में शल्यक्रिया की बिल्कुल आवश्यकता नहीं होती।" —डॉ. ज्हॉन बी. डेवर

"योग्य आहार : तन्दुरुस्ती, मनोबल और आत्मबल में वृद्धि करता है।" — महात्मा गांधी

"जो व्यक्ति आहार-विषयक नियमों का पालन करता है उसे दवा की जरूरत नहीं पड़ती ।" — वैद्याचार्य लोलिंबराज

"हम जो कुछ खाते हैं उसके एक-तिहाई हिस्से पर ही जीते हैं, शेष दो-तिहाई हिस्से पर डॉक्टर जीते हैं।" — डॉ. एस. कोपलेण्ड

"हम जिसके बारे में कुछ नहीं जानते उस मनुष्य के शरीर में ऐसी दवा पहुँचाते हैं जिसके विषय में हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है ।"

— डॉ. विलियम ओस्लर

('चरक' मासिक पत्रिका के सौजन्य से)

एक तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत :

जब बीमारी आती है तब आदमी सोच-विचार के लिए नहीं ठहरता । बीमारी का कारण जाने बगैर वह तो सीधे डॉक्टर के पास दौड़ जाता है । यदि वह धनिक हो तो सीधे स्पेश्यालिस्ट (विशेषज्ञ) के पास ही पहुँच जाता है, किन्तु वह यह विचार कभी नहीं करता कि प्रकृति के किस नियम का भंग करने से यह बीमारी आती है । ठूँस–ठूँस कर खानेवाले और बाद में मंदाग्नि से पीड़ित मरीजों को डॉक्टर भोजन को पचाने की दवा देगा; फलस्वरूप अत्यधिक ठूँसकर खाने की मरीज की आदत चालू रहेगी । भारी भोजन करनेवाले, निष्क्रिय जीवन जीने-वाले मेद-वृद्धि का शिकार बनकर डॉक्टर के पास पहुँचेंगे । डॉक्टर उन्हें दवा देगा, विश्वास देगा, वचन देगा किन्तु आखिर मेद-वृद्धि कम नहीं होगी; बल्कि दवाओं के विष से वे अन्य रोगों के शिकार होते जाएँगे । दवा से मेदवृद्धि नियंत्रित हुई हो ऐसा मुझे अनुभव नहीं हुआ । फिर भी लोग दवाओं के ऊल-जलूल प्रचार में फँस जाते हैं, शरीर को बरबाद करते हैं, अन्य रोगों के शिकार होते हैं, आर्थिक दृष्टि से बरबाद होते हैं और अन्त में अपमृत्यु से मर जाते हैं ।

कब्जियत जैसे सामान्य रोग भी दवाओं से नहीं मिटते। रेच की गोली लेने से दस्त होंगे। फिर कब्जियत होगी, और इस बार दो गोलियाँ लेनी पड़ेंगी। इस प्रकार दवा की मात्रा बढ़ेगी और शरीर दवाओं का आदी हो जाएगा।

याद रखिए, छोटे-बड़े शहरों में चलनेवाले होटल, पाकशास्त्र की किताबें, सड़कों के किनारे ठेलों पर बिकनेवाली चाट, भाजी-पाव गोलगप्पे और लगनसरा के दिनों में आयोजित होनेवाले अनेक भोजन-समारम्भ बीमारियों को लानेवाले एजण्ट हैं।

अधिकांश बीमारियाँ अयोग्य आहार-विहार से ही उत्पन्न होती हैं। इसलिए प्रायश्चित्त के रूप में उपवास करें। थोड़े दिन केवल प्रवाही भोजन पर रहें।

प्रकृति ममतामयी माता के समान है किन्तु उसके नीति-नियमों का भंग करनेवाले को वह पीड़ा भेजकर अन्त में मृत्युदण्ड देती है।

आहार, आचार और विचार के कुदरती नियमों का पालन करें। वास्तविक स्वास्थ्य कुदरत के सान्निध्य में प्राप्त होता है। मनुष्यमात्र प्राकृतिक नियमों को तोड़कर बीमार होता है और अन्ततः असमय में वृद्ध होकर चल बसता है।

अच्छा स्वास्थ्य डॉक्टर नहीं दे सकता। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को शरीरशास्त्र, आरोग्यशास्त्र, आहारशास्त्र और व्यायामशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। शरीर वास्तविक धन है। इसलिए अध्ययनशील बनकर आप अपने डॉक्टर स्वयं ही बनिए। आयुर्वेद और निसर्गोपचार से इस दिशा में आपको अच्छा मार्गदर्शन प्राप्त होगा। इसके अलावा आरोग्य-संबंधी ज्ञान प्राप्त करने के लिए यदा-कदा आरोग्य-विषयक पुस्तकों का अध्ययन करते रहिए।

नैसर्गिक आहार और नैसर्गिक जीवन से जो काम हो सकेगा वह किसी कानून, दण्ड–विधान, उपदेश, समझौते, निवेदन या धमकी से संभव नहीं है । नैसर्गिक आहार एवं नैसर्गिक जीवन ही व्यक्ति, राष्ट्र तथा विश्व को अहंरहित सम्पन्नता एवं विग्रहविहीन गौरव प्रदान कर सकेंगे ।

१६. गलतफहमी की ग्रन्थियाँ

बच्चों के लिए दूध पोषण की दृष्टि से पूर्ण और श्रेष्ठ आहार है। उसमें चर्बी, कार्बोहाइड्रेट्, प्रोटीन, विटामिन और क्षार भरपूर मात्रा में निहित हैं। बालकों को बड़ा होना है, अपने शरीर की गठन बनानी है। इसलिए उनके लिए ऊँची कॅलरीवाले दूध की खुराक आवश्यक है, किन्तु साठ वर्ष की आयुवालों के लिए केवल शरीर की दैनिक क्षति की पूर्ति के लिए कम कॅलरीवाले, चर्बी रहित और सुपाच्य सादे भोजन की आवश्यकता है। वृद्धों के लिए दूध सुपाच्य नहीं है, क्योंकि उसमें कॅलरी अधिकमात्रा में होती है और वह बादी भी करता है। मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए अपने भोजन की योग्यता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। अपनी दैनिक प्रवृत्तियों के आधार पर अपना तदनुकूल भोजन निर्धारित करें। साथ ही यह भी खोज निकालें कि आपको कौन-सा भोजन अनुकूल नहीं है; इस प्रकार अपने डॉक्टर आप स्वयं बनें।

(१) कब्जियत के कई रोगी रात्रि के भोजन में दूध लेते हैं। दूध बादी करता है। यह जानने पर भी लोग रात की ब्यालू में दूध तो चाहिए ही इस प्रकार का आग्रह रखते हैं। समाज में एक कहावत प्रचलित है कि 'दूध के साथ जो ब्यालू करे; उसके घर जाते बैद भी डरे।' इस प्रकार की अन्धश्रद्धा के शिकार लोग प्रतिदिन रात के भोजन में और सोते समय दूध पीने का रिवाज रखते हैं। ऐसे लोग कब्जियत की फरियाद करते हैं और जुलाब की गोलियाँ खाते हैं। यह गलतफहमी दूर होनी चाहिए।

(२) वात-संधिवात (गाउट) की प्रकृतिवाले रोगियों के लिए छाछ और दही अपथ्य हैं, क्योंकि दही और छाछ में बॅक्टेरिया नामक जीवाणु रहते हैं; ये जीवाणु वात-संधिवात की पीड़ा में वृद्धि करते हैं। कई वयोवृद्ध सज्जन प्रात:कालीन भोजन में दही अवश्य लेते हैं। फिर छाछ पीते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि 'वात–संधिवात हो गया है, घुटने जकड़ गये हैं, सूजन आ गई है और कब्जियत की शिकायत करते हैं। इस प्रकार वे आहार-विषयक गलतफहमी के कारण कष्ट भोगते हैं।

मेरे एक मित्र श्री शाह एन. को हमेशा घुटनों में 'वात' की शिकायत रहती है। उससे मुक्ति पाने के लिए वे महारास्नादिक्वाथ का काढ़ा पीते तथा महायोगराज गूगल की गोलियाँ खाते हैं, और साथ-साथ डॉक्टर की दवा भी लिया करते हैं। घुटना मुड़ नहीं पाता, इसलिए डॉक्टर के परामर्श के अनुसार उन्होंने खड़ा संडास भी वनवाया है। श्री शाह खूब हैरान-परेशान हो रहे हैं, फिर भी दही-छाछ का त्याग नहीं कर पाते, क्योंकि भोजन के सम्बन्ध में उनके दिमाग में बेहद गलतफहमियाँ भरी हुई हैं, वे कहते हैं – " छाछ तो अमृत है, भोजन को तुरंत हजम करतीं है। छाछ से गैस नहीं होता, दिमाग में तरावट रहती है। छाछ तो अनिवार्य है। " इसके अलावा दैनंदिन की क्षति-पूर्ति के लिए दूध भीं अनिवार्य हैं, क्योंकि उसमें सभी पोषक तत्त्व रहते हैं, ऐसी उनकी मान्यता है।

उनकी उम्र ७४ वर्ष की है। अधिक उम्र के कारण उनके अवयव शिथिल हो चुके हैं। पाचनतंत्र कमजोर हो गया है, फिर भी वे दूध जैसा गरिष्ठ और कब्ज करनेवाला पदार्थ लेते हैं। इसी प्रकार संधिवात की पीड़ा होने पर भी छाछ और दही का सेवन करते हैं।

श्री एन. को ठीक होना हो तो उन्हें भोजन विषयक गलतफहमी की ग्रन्थि से मुक्त होना पड़ेगा। उन्हें सादा भोजन करना चाहिए। विशेषतया हरी सब्जियाँ, ताजे फल, हाथ-कुटे चावल तथा सूप जैसा प्रवाही खुराक लेना चाहिए।

(३) शाम के भोजन में आजकल भाखरी (एक प्रकार की सख्त और खस्ता रोटी), खिचड़ी, साग, दूध, पापड़ आदि पदार्थ लेना एक सर्वसामान्य बात हो गई है। भाखरी, खिचड़ी और साग में नमक डाला जाता है। यह बिल्कुल विरोधी भोजन है। एक ही जून के भोजन में दूध, दलहन, नमक और मिर्च एक साथ लेना ठीक नहीं है, क्योंकि दलहन और दूध तथा नमक और दूध एक साथ लेने से कोढ़ एवं अन्य चर्म-रोग होते हैं। ऐसे भोजन के कारण ही बच्चे खसरा और बड़ी उम्र के लोग दाद–खुजली जैसे रोगों के शिकार हो जाते हैं। यही कारण है कि चैत के महीने में 'अलौना' (नमक रहित भोजन) करने का एक धार्मिक रिवाज प्रचलित है। जैन समाज में भी नमकरहित भोजन लेकर 'आयंबिल' करने की धार्मिक परंपरा है। आवश्यकता से अधिक नमक शरीर को नष्ट कर देता है, क्योंकि मनुष्य-शरीर का निर्माण ही दूध से हुआ है। दूध में नमक डालना मना है। खिचड़ी को केवल स्वादिष्ट बनाने के लिए अत्यल्प मात्रा में नमक डाला जा सकता है। भाखरी में तो नमक एकदम अनावश्यक है। अत्यधिक नमक से जिस प्रकार दूध फट जाता है, इसी प्रकार नमक के अत्यधिक प्रयोग से मनुष्य की चमड़ी फट जाती है और अनेक प्रकार के चर्मरोग हो जाते हैं।

संक्षेप में, किसी भी प्रकार के चर्मरोग की शुरूआत होने पर फौरन नमक-मिर्च खाना बन्द कर देना चाहिए। चर्मरोगों में केवल

ऊपरी सतह पर लगाने की दवा या मरहम से कोई विशेष लाभ नहीं होता। यदि दवा के साथ-साथ भोजन में से नमक-मिर्च का कतई त्याग कर दिया जाय तो निश्चय ही अपेक्षित परिणाम प्राप्त किया जा सकता है।

(४) टहलने की क्रिया से पेट की तोंद कम नहीं होती बल्कि बढ़ती है। कई लोग अपनी तोंद कम करने के लिए प्रतिदिन सुबह-शाम घूमने—टहलने का कार्यक्रम रखते हैं। दरअसल तोंद कम करने के लिए पेट की कुछ निश्चित कसरतें करनी चाहिए। टहलने की कसरत से कमर, जाँघ, घुटने, पिंडलियाँ, पैर आदि अंगों को व्यायाम मिलता है, जब कि पेट को हलन-चलन या संकोच-विकास का कोई व्यायाम नहीं मिल पाता। अधिक चलने से पैर थक जाएँगे किन्तु पेट को किसी प्रकार की थकावट नहीं लगती। यदि माँ बच्चे को गोद में लेकर दो-तीन मील चलती है तो उसे अवश्य ही थकान लगती है, उसके पैर दुखने लगते हैं, किन्तु बच्चे को चलने के श्रम या किसी प्रकार की थकान का अनुभव नहीं होगा। इस प्रकार चलने की कसरत करने से ज्यादा भूख लगेगी और ज्यादा खाना खा सकेंगे। अधिक मात्रा में भोजन करने से मेद में वृद्धि होती है। अर्थात् चलने की कसरत से पेट का मेद बढ़ता है। यहाँ हमारा आशय चलने की कसरत बन्द कराने का नहीं है, किन्तु प्रत्येक अंग के लिए अलग-अलग कसरतें हैं, यह बताने का है। चलने की कसरत हर रोग के लिए लाभदायक नहीं हो सकती, आवश्यकतानुसार ही कसरतों का आयोजन करना चाहिए।

श्री चोकसी की उम्र साठ वर्ष की है। वर्षों से नियमित रूप से चहलकदमी के शौक़ीन हैं। उनका पेट शरीर के अनुपात में बड़ा और आगे की ओर निकला हुआ है। प्रातःकाल घूमने के सिवा दिनभर वे अन्य कोई श्रमकार्य नहीं करते। मोटर या अन्य किसी वाहन से

ऑफिस जाते हैं। ऑफिस में भी केवल बैठे रहते हैं। सारे कामकाज फोन द्वारा निपटा लेते हैं। वर्षों से घूमने जाते हैं फिर भी उनके पेट का मेद कम नहीं होता। पेट का मेद कम करने के लिए केवल घूमने की कसरत पर्याप्त है, इस गलतफहमी के वे शिकार हैं। वस्तुतः उन्हें पेट का मेद कम करने के लिए पेट से सम्बन्धित कसरत करनी चाहिए।

५. कसरत के लिए समय नहीं मिलता :

कई लोग प्रायः यह कहा करते हैं कि कसरत तो अवश्य करनी चाहिए, उससे कई लाभ भी होते हैं, किन्तु दरअसल हमें इसके लिए समय ही नहीं मिलता। वास्तव में समय के अभाव की शिकायत करना भी एक प्रकार की ग्रंथि है। व्यक्ति को इस ग्रन्थि से मुक्त होना चाहिए। बहानेबाजी ही करनी हो, तब तो फिर कोई प्रश्न ही नहीं है। अन्यथा 'जहाँ चाह वहाँ राह' तन्दुरुस्ती चाहते हैं तो कसरत करनी ही चाहिए। समय नहीं मिलता, यह बात सही नहीं है। कसरत करने का निश्चय करने पर समय अपने आप मिल ही जाएगा।

कई लोग प्रातःकाल जागने के बाद यों ही बीस-पच्चीस मिनट बिस्तर में करवटें बदलते रहते हैं। इसके बदले आलस्य को झटक कर उठ जाइए, मुँह साफ करें, आँखों पर शीतल जल छिड़कें और पाखाने की हाजत हो तो अवश्य निपट आइये। अन्यथा राह मत देखिए और कसरत करना शुरू कर दीजिए। बिस्तर में लेटे-लेटे पच्चीस-तीस मिनट की कसरतें भी पर्याप्त हैं।

रात में जल्दी भोजन करने की आदत डालिए। रात्रि-भोजन और शयन के बीच कम से कम दो-तीन घण्टों का अन्तर अवश्य रखिए।

अनेक लोगों को नींद की तकलीफ होती है। ऐसे लोगों को रात में बिस्तर पर सोते-सोते बीस-पच्चीस मिनट तक विविध कसरतें

करनी चाहिए। इससे, वड़ी अच्छी और मजेदार नींद आ जाएगी। इस प्रकार नींद का प्रश्न हल हो जाएगा और स्वास्थ्य-लाभ होगा सो अलग। रात में कसरतें करने से सात-आठ घण्टे के वदले छह-सात घंटे की नींद पर्याप्त हो जाती है।

६. गलतफहमी दूर करें :

'कसरत' शब्द सुनते ही लोगों के दिमाग़ में पहलवानों की भारी कसरतें, कुस्ती, मुक्केवाजी (Boxing) भारोत्तोलन (weight-lifting), डण्ड-बैठक आदि आ जाती हैं। छोटे वच्चे खेलते हों या कवायद करते हों तो उसे भी कसरत कहा जाता है। वालिकाओं का रस्सी कूदना, वालकों का लेजिम या वनेटी खेलना भी एक प्रकार की कसरत ही है। वड़ी उम्र में भारी कसरतों का दुराग्रह न रखें, वल्कि प्रस्तुत ग्रन्थ में निर्दिष्ट सामान्य व हल्की कसरतें करते रहिए। सोते-सोते केवल हाथ-पैर हिला कर स्नायुओं को संकोच-विकास और दवाव का श्रम दें। 'कसरत' शब्द का प्रयोग तो इसलिए किया जाता है कि यह क्रिया शरीर को सुगठित करने और शारीरिक शक्ति वढ़ाने के लिए है। सामान्य जन-समाज समझ सके इस हेतु से उसे कसरत-व्यायाम नाम दिया गया है।

७. योगासन विषयक भ्रान्ति दूर करें :

जन-समाज में आसनों-योगासनों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की भ्रान्ति प्रचलित है। लोगों की ऐसी मान्यता है कि आसन अर्थात् अंगों को टेढ़े-तिरछे मरोड़ कर श्रमयुक्त तकलीफ उठाना। भक्त ध्रुव ने पैर के अँगूठे पर खड़े रहकर वर्षों तक तपस्या की थी, इस प्रकार की यौगिक क्रिया को तथा हठयोगी आसन लगाकर जो तपस्या करते हैं ऐसी

भारी क्रिया को लोग आसन समझ बैठे हैं। वास्तव में यह उनकी भूल है।

वस्तुतः आसन तो स्नायुओं को संकोच-विकास और खींचा-तानी का श्रम देने की क्रिया है। स्नायुओं को विधिपूर्वक खींचने से वे बड़े और मजबूत बनते हैं। आसनों की क्रिया पूर्णतः शान्त चित्त से करनी पड़ती है। आसन तो अनेक हैं, परन्तु अपने शरीर, उम्र, शक्ति और प्रकृति के अनुकूल हों, वही आसन हमें करने चाहिए।

आसन करने से भारी कसरतों की तरह तनिक भी थकावट महसूस नहीं होती। इसके विपरीत आसन करने के वाद स्फूर्ति का अनुभव होता है। अंग-अंग में चेतना भर गई हो, ऐसा अनुभव होता है। इससे जीवनभर स्वस्थता बनाए रखने की शक्ति प्राप्त होती रहती है। आरोग्यमय जीवन जीने के लिए आसनों के समान कोई दूसरा इलाज नहीं है।

८. विटामिनों के प्रति आसक्ति :

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न उच्चवर्ग के लोगों में आजकल विटामिन और टॉनिक लेने का पागलपन और अन्धानुकरण बहुत बढ़ गया है। प्रत्येक दवा की कंपनी टॉनिक और विटामिनों की पेटण्ट दवाओं का उत्पादन करती है। सुवह-शाम बच्चों को दूध में टॉनिक देने का भी एक प्रकार का जरूरी चलन-सा हो गया है। अधिक मात्रा में टॉनिक और विटामिन हानिकारक हैं। उच्चवर्ग के दैनिक भोजन में ही भरपूर पोषक तत्त्व होते हैं। उनका दैनिक सामान्य भोजन भारी कॅलरी और पौष्टिक तत्त्वों से भरपूर होता है। ऐसा भारी कॅलरीवाला पौष्टिक भोजन करने के बाद शरीर को अधिक कॅलरी की आवश्यकता नहीं रहती। बच्चे को ज्यादा कॅलरीवाला भोजन जितना

अधिक खिलाएँगे, उतनी मात्रा में उसे अधिक शारीरिक श्रम, कसरत आदि कराने की आवश्यकता रहेगी। अन्यथा अतिशय प्रोटीन और विटामिनवाला भोजन बालक के आरोग्य को खतरे में डाल सकता है। ऐसे बालक में मेदवृद्धि होगी या फिर अनपच के कारण वह दुबला रह जाएगा।

अमरीका के एक मशहूर डॉक्टर कहते हैं, आजकल औषधि के रूप में विटामिनों का बोलबाला है। अमीर लोग तो विटामिनों के सेवन के पीछे दीवाने हैं। वढ़ते बच्चों को विटामिन अवश्य दिये जाते हैं। तदुपरांत बच्चों को घी, दूध, मक्खन, अण्डे आदि दैनिक आहार में से विटामिन 'ए' और 'डी' प्राप्त होते हैं। फलस्वरूप बच्चों के शरीर में विटामिनों की भरमार हो जाती है। विटामिन 'ए' और 'डी' चर्बीयुक्त होने और चर्बी द्राव्य होने के कारण अन्य विटामिनों की तरह वे शरीर के वाहर निकल नहीं पाते। आखिर विटामिनों की अतिशयता के कारण बच्चों की शारीरिक वृद्धि रुक जाती है और उसका परिणाम बुरा होता है।

हमारे एक पड़ोसी मित्र के चार बच्चे हैं। वे हर प्रकार से सुखी हैं। उनका साला दवा की किसी कंपनी में सेल्समैन है। वे विविध प्रकार के विटामिनों की गोलियाँ और टॉनिक की बोतलें लाते रहते हैं। ये सारे विटामिन–टॉनिक बच्चों को सुवह-शाम दूध के साथ दिये जाते हैं। विटामिन और टॉनिक के इस अतिरेक से उनके चारों बच्चों में विकृतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। उन्हें चश्मे लग गये हैं, उनका वजन कम हो गया है। और वे दुबले-पतले, स्वभाव से चिड़चिड़े और पढ़ने-लिखने में बहुत कमजोर हैं।

वालकों और बड़ों के लिए अधिक मात्रा में विटामिन या ऊँची कॅलरी का भोजन आवश्यक नहीं है। आपके शरीर को कितना श्रम

करना पड़ता है, कितना मेहनत मजदूरी का काम करना पड़ता है, उस-पर आपके भोजन का आधार है। यदि आपका व्यवसाय शारीरिक श्रमवाला न हो और आपको निष्क्रियतापूर्ण जीवन व्यतीत करना हो तो आपको कम कॅलरीवाला भोजन लेना चाहिए।

संक्षेप में, विटामिन और टॉनिक शक्तिवर्धक नहीं हैं। इसलिए उसके प्रचार से अभिभूत न हों। बीमारी से बचने के लिए प्राकृतिक जीवन जीना सीखिए। प्राकृतिक नियमों का पालन कीजिए। कसरत और मेहनत-मजदूरी कीजिए। आवश्यकता के अनुसार ही भोजन कीजिए। प्रवृत्तिमय जीवन बिताइये और सदा आनन्द–उल्लास में ही रहिए। सुखी जीवन की यही कुंजियाँ हैं।

संगीत के तीन अंग माने जाते हैं—गायन, वादन और नर्तन। भारतीय शास्त्रीय संगीत में इन तीनों अंगों का सन्निवेश है। इस संसार में भारतीय शास्त्रीय संगीत के समान अन्य कोई पवित्र ललित-कला नहीं हैं। संगीत सीखने के समान अन्य कोई भी पवित्र शौक या व्यवसाय नहीं है। संगीत स्वस्थजीवी बनने का सर्वाधिक सुलभ समीपवर्ती अमोघ साधन है। जीवन को स्वस्थ बनाने तथा प्रभु-प्राप्ति के लिए संगीत का सहारा लेनेवालों का उपहास करनेवालों को रोदन-क्रन्दन का आधार लेना पड़ता है! संगीत का आनन्द और ब्रह्मानन्द दोनों समान हैं। हम सब उस दिन की प्रतीक्षा करें, जिस दिन गाँव-गाँव और गली-गली स्वाध्याय-केन्द्र और संगीत-विद्यालय दिखाई पड़ेंगे।

१७. शतायु होने के बुनियादी सिद्धान्त : एक अंतिम दृष्टि

आजीवन निरोगी रहकर दीर्घायु होना भी एक साधना है, एक कला है। इसके लिए नीचे लिखे ४९ बुनियादी सिद्धान्तों का पालन करना आवश्यक है। इन सिद्धान्तों की छान-बीन पिछले अध्यायों में हो चुकी है, फिर भी पाठकों के सर्वांगीण मार्गदर्शन के लिए एक बार फिर उन्हें संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) अजीर्ण से बचने के लिए कभी भरपेट भोजन न करें। खान-पान में नियंत्रण रखें। आवश्यकतानुसार भूख लगने पर दिन में तीन-चार बार थोड़ा-थोड़ा आहार लिया जा सकता है, किन्तु एक वार में ठूंस-ठूंस कर पेटभर भोजन करने से बचना चाहिए।

(२) प्रतिदिन यथासंभव अधिकाधिक मात्रा में प्रवाही आहार लें। पानी, छाछ, लस्सी, मलाईरहित सपरेट दूध (स्कीम मिल्क) गाजर का रस, फलों का रस, भाजी का रस, गुड़ और नीबू का शरबत एवं गर्म या ठण्डे पानी में शहद और नीबू का रस मिलाकर बनाया गया पेय नियमित रूप से पियें।

(३) आरोग्य के लिए पोषक और पथ्य भोजन पसंद करें, ताजा और अच्छी तरह पका हुआ भोजन लें क्योंकि ऐसा भोजन सुपाच्य होता है।

(४) चर्बीयुक्त एवं तले हुए गरिष्ठ भोजन का त्याग करें। साग-भाजी से युक्त सादा भोजन ही पसन्द करें। मिठाई का उपयोग कम से कम करें।

(५) अपने भोजन में २५ प्रतिशत साग-भाजी और २५ प्रतिशत फलों का समावेश करें। साग-भाजी का कचूमर अधपका करके उसे दही के साथ खाइए।

(६) यदि संभव हो तो भोजन के पूर्व अदरक के रस में सेंधा नमक और नीबू का रस मिलाकर पियें। यह रस भूख बढ़ानेवाला है। भोजन में कचूमर के साथ अदरक की कतरनें खाइए। दाल–साग में नीबू निचोइये अनुकूल हो तो भोजन के बाद छाछ पीना अमृतपान के बराबर है।

(७) भोजन में चटाखेदार मिर्च-मसालों का उपयोग अनावश्यक और स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। मिर्च मुँह और जठर में जलन करती है। नमक अनाज और साग-भाजी की प्राकृतिक मिठास का नाश कर देता है।

संक्षेप में, मिर्च (हरी और सूखी), नमक, हल्दी, राई, मेथी, धनिया, जीरा, हींग आदि मसाले केवल जीभ के स्वाद की खातिर ही लिये जाते हैं। इनमें से एक भी शरीर के लिए पोषणप्रद नहीं है। मसालों से रहित प्राकृतिक स्वादवाले आहार की व्यवस्था करें। भोजन अच्छी तरह पकाकर सुपाच्य हो, इतना मुलायम बनाकर खाने का आयोजन करें। यूरोप, अमरीका और अफ्रीका के निवासी अपने भोजन में किसी भी प्रकार के मसालों का उपयोग नहीं करते।

पके हुए भोजन में ऊपर से नमक कभी न डालें, इससे भोजन के प्राकृतिक सत्त्वों का नाश होता है। नमक का उपयोग केवल उतना ही करें जितना स्वाद के लिए आवश्यक हो। भोजन में नमक बिल्कुल अनावश्यक है। (देखिए महात्मा गाँधी लिखित 'आरोग्य विषयक सामान्य ज्ञान'– पृ. ४९)

(८) कच्ची–बिना पकाई साग-भाजी खाइए । ककड़ी, सुवे की भाजी, नोनिया और सरसों की भाजी, मूली, मोगरी, बीट (चुकन्दर), प्याज, हरा लहसुन, हरी प्याज आदि कच्चे स्वरूप में ही थोड़ी मात्रा में लेना चाहिए । दलहन को पीसे या दले बगैर पानी में भिगोकर फुनगी निकल आने पर कच्चा खाने से आवश्यक विटामिन 'बी' मिल जाता है। विशेषतः मूँग, चना और उड़द रात को भिगोकर रोज सुबह चबाकर खाने से सभी प्रकार के विटामिनों की कमी पूरी हो जाती है । अंकुरित कच्चा दलहन बेजोड़ आरोग्यप्रद टॉनिक है ।

(९) मौसमी फलों का उपयोग भी आरोग्यप्रद है। आम, जामुन, पपीता, बिजौरा, खट्टे नीबू, मोसम्बी, संतरा, सेव, खरबूजा, तरबूज आदि फल प्रातःकाल में लेना विशेष फायदेमन्द है ।

(१०) चूने का क्षार (कॅल्शियम) बच्चों व किशोरों की हड्डियों और शरीर की गठन के लिए आवश्यक है। कॅल्शियम दूध, फल और हरी सब्जियों से पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकता है । शरीर को आवश्यक क्षार प्राप्त हो, इसके लिए भोजन में दूध, फल, साग-भाजी का निःसंकोच उपयोग करें। नमक से इस प्रकार के क्षार प्राप्त नहीं होते ।

(११) भोजन में शक्कर का कम-से-कम उपयोग करें। शक्कर में कोई पोषक तत्त्व नहीं है। शक्कर के स्थान पर शहद, देशी शक्कर, गुड़, सूखे मेवे, खजूर, ग्लूकोज, ताड़ का गुड़ आदि पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है ।

(१२) भोजन करते समय निम्नलिखित पाँच सूचनाओं का अमल करें–

(क) भोजन के प्रथम ग्रास के साथ एक चम्मच हिंगाष्टक चूर्ण अथवा दो चम्मच अदरक का रस, नीबू का रस और नमक मिलाकर

लें। (ख) लहसुन, अजवाइन, मेथी, पीपर, सोंठ, पीपरामूल, सेंधा नमक और नीबू की बनी चटनी का उपयोग करें। (ग) मूँग का पसावन पिया करें। (घ) लहसुन की पाँच कलियाँ खाएँ। (च) भोजन के अन्त में नीबू का शरबत या ताजे दही की छाछ पियें।

(१३) सुबह चाय-कॉफी का काढ़ा पीने के बदले गर्म पानी में गुड़ और नीबू का रस डाल कर पियें; या तुलसी का काढ़ा पियें।

(१४) साफ दस्त लानेवाले आसन और कसरत करें। शरीर की प्रकृति के लिए अनुकूल कसरतें और आसन प्रतिदिन किया करें।

(१५) कब्जियत दूर करने के लिए प्रतिदिन हर्र (हरीतकी) का चूर्ण लें। जिस प्रकार फल पककर नीचे टपक पड़ता है उसी प्रकार सरलता से मल का विसर्जन हो जाए ऐसा आयोजन करें।

(१६) प्रातःकाल उठते ही निश्चित समय पर सण्डास जाने की आदत डालिए। 'नियमित पेट साफ तो रोग साफ।' याद रखिए कि अस्सी प्रतिशत रोग पेट की खराबी से ही शुरू होते हैं।

(१७) महात्मा गांधी अपने 'आरोग्य विषयक सामान्य ज्ञान' नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि "जितना हम स्वाद के लिए खाते हैं उतना हमारे शरीर से दृश्य या अदृश्य रूप से फूट कर निकल जाता है। उतनी मात्रा में हम अपना आरोग्य नष्ट करते हैं और स्वयं दुःखी होते हैं। जितना पोषण के लिए पर्याप्त हो उतना ही खाइये।

(१८) कम खाने से शरीर में स्फूर्ति और काम करने की लगन बनी रहती है। भारी शारीरिक श्रम करना हो या भारी मानसिक कार्य करना हो उस समय पेट को खाली रखें।

(१९) सुबह का नाश्ता अनावश्यक है। जठर में पड़े हुए 'आम' को पचने के लिए सुबह में चार घण्टे का समय देने की जरूरत है।

भोजन केवल दो वार ही कीजिए दोपहर को और शाम को। अपना दैनिक कार्य पूरा करने के बाद ही भोजन करें। भोजन के वाद थोड़ा आराम करें।

(२०) भोजन-समारंभों में लोग दूध में अनेक प्रकार के फलों के टुकड़े डालकर वनाया हुआ 'फ्रूट सेलाड' खाते-खिलाते हैं। वात-संधिवात पीड़ित लोग श्रीखण्ड, खमण, दहीवड़े और रायता आदि खाते हैं। इनसे भयंकर कुपथ्य होता है।

(२१) यथाशक्ति आसन करने से शक्ति सुरक्षित रहती है। शीर्षासन और सर्वांगासन करने से शरीर के सभी अवयवों को रक्ताभिसरण की गति मिलने से स्वास्थ्य बना रहता है।

(२२) चलने और दौड़ने की कसरतें बड़ी सरल और निर्दोष कसरतें हैं। उन्हें यथाशक्ति करते रहें। दौड़वीर श्री झीणाभाई नायक कहते हैं कि, "दौड़ने से आयु वढ़ती है।" श्री नायक ७४ वर्ष की आयु में भी काश्मीर से कन्याकुमारी तक अर्थात् ७००० मील दौड़ते हुए गये थे। आप भी दौड़ने की कसरत करें। जो लोग घर से बाहर खुले में दौड़ने के लिए न जा सकें उन्हें घर में ही 'स्पॉट-रनिंग' करना चाहिए अर्थात् एक ही स्थान पर दौड़ना चाहिए। प्रतिदिन तीस-चालीस मिनट दौड़ने का अभ्यास डालें, क्योंकि दौड़ने से निस्सन्देह आयु में वृद्धि होती है। दौड़ने से मेद नहीं वढ़ता, पेट की चर्बी उतर जाती है और वजन कम होता है। तथा कटिप्रदेश के अंगों को हलन-चलन की जोरदार कसरत मिलने से यकृत और जठर शक्तिशाली वनते हैं। दौड़नेवाले को हृदयरोग, मधुप्रमेह, उच्च रक्तचाप या संधिवात जैसे रोग नहीं होते।

(२३) जब आप थके हुए हों या अत्यधिक काम से ऊब गये हों तब कसरत न करें, आराम करें। स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए बीमार

व्यक्ति को पर्याप्त आराम की आवश्यकता है। कसरत रोग का इलाज नहीं है। बीमारी का कारण खोज निकालिए और उसका इलाज कीजिए। अपने डॉक्टर खुद वनिए और निरोगी रहिए।

(२४) नाक से साँस लीजिए। नाक में स्थित बालों के गुच्छों में से छनकर और आवश्यक उष्णता प्राप्त करके शुद्ध हवा फेफड़ों में प्रवेश करती है। जिससे संक्रामक रोग नहीं होते। दमा और क्षय के रोगियों को नाक से ही साँस लेनी चाहिए। घूमने के लिए जाएँ तब चलते-चलते वातें न करें। मुँह वन्द रखें, ताकि फेफड़ों में हवा के कीटाणु प्रविष्ट न हो सकें।

(२५) सीना निकालकर और नजर को दूर रखकर, तनकर चलना चाहिए। दूरस्थ टावर, खंभे, वृक्ष या वनराजि की ओर नजर रखकर चलना चाहिए।

(२६) महात्मा गांधीजी कहते हैं कि किसान की भाँति ८ से १० घंटे श्रम-मेहनत करें। अपने जीवन को श्रमयुक्त वनाएँ।

(२७) खुली हवा में प्रतिदिन क्रिकेट, कबड्डी, खो-खो, वॉलीवॉल, फुटबॉल, टेनिस, बॅडमिण्टन, पोलो, हाकी आदि खेल खेलने का अभ्यास डालिए।

(२८) पाँच हजार वर्ष पूर्व आयुर्वेदाचार्य महर्षि चरक द्वारा कहे गये निम्नलिखित शब्द हमेशा याद रखिए :

"नियमित योगासन, कसरत, व्यायाम करनेवाला व्यक्ति यदि वृद्ध हो तो पुनः जवान वन सकता है। वह कायाकल्प की कीमिया और दीर्घायु तथा स्वास्थ्य की अद्भुत जड़ी-बूटी है। वृद्धावस्था रोकने और पुनः यौवन प्राप्त करने का एकमात्र रामबाण अद्भुत इलाज यही है।"

(२९) आप निवृत्त हो चुके हों, कोई काम न करते हों और दिनभर बैठे रहना हो तो झूलती कुर्सी (Rocking chair) का उपयोग करें। कुर्सी के आगे-पीछे हिलने से रक्तभिसरण को सहायता मिलती है।

(३०) सिर में तेल डालते समय सिर के सभी अवयवों को खूब थपथपाइए। प्रतिदिन कान, नाक, आँख, गर्दन और ठोड़ी को मसाज करने, धीमे-धीमे दबाने या थपथपाने की क्रिया करनी चाहिए। ऐसा करने से रुधिराभिसरण को गति मिलेगी, आँखों में मोतियाबिन्द नहीं आएगा, स्मरणशक्ति तेज रहेगी और उम्र बढ़ने पर भी कान का बहरापन नहीं आएगा।

(३१) आँखों पर ठण्डा पानी छिड़कते रहिए। प्रतिदिन दातून करते समय, स्नान करते समय, भोजन करने से पूर्व, हाथ-पैर-मुँह आदि धोते समय आँखों पर पानी छिड़किए। रात में भी सोने से पहले मुँह साफ करके आँखों पर ठण्डा जल छिड़किए।

(३२) केवल देखने के लिए आँखें खोलिए। आवश्यक न हो तो आँखें बन्द रखिए। खाते-पीते समय, बात-चीत करते समय, भोजनोपरान्त आराम के समय, बस या रेल में सफर करते समय सहज भाव से आँखें बन्द रखने का प्रयत्न कीजिए, क्योंकि बन्द आँखें शक्तिप्रद हैं।

(३३) ज्यादा काम, मेहनत या मजदूरी करने से आदमी थक कर चूर हो जाता है किन्तु वह मरता नहीं है। वह मरता है सिर्फ चिन्ता, भय और उद्वेग से।

(३४) निवृत्त होने के बाद कोई ऐसा शौक (Hobby) अपना लीजिए जो आपको हमेशा प्रवृत्तिमय रखे।

(३५) प्रतिदिन एकान्त में ध्यान, धारणा, समाधि लगाकर बैठिए। एक घण्टा सेवा-पूजा में बिताइये। आँखें बन्द करके अपने इष्ट देव का ध्यान कीजिए।

(३६) फिक्र को निगलकर शान्त और प्रसन्न चित्त से भोजन-करें। आनन्द-प्रमोद करते बच्चों के साथ विनोद करते-करते भोजन करें। क्लेशपूर्ण वातावरण में गंभीर बन कर भोजन करने से पाचन-शक्ति को बहुत हानि पहुँचती है।

(३७) 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' – सभी जगह अतिरेक का त्याग करें। अधिक मात्रा में आहार, भय, निद्रा और मैथुन, अत्यधिक बातचीत, ज्यादा उपवास, आवश्यकता से अधिक व्यायाम आदि से हमेशा बचें। अत्यधिक कार्य-भार भी न उठाएँ। शरीर की शक्ति और अनुकूलता के अनुसार श्रम करें।

(३८) शोक, भारी चिन्ता, उद्वेग, भय और क्रोध मनुष्य के भारी प्राणघातक शत्रु हैं। आयु कम करने में ये सारी बातें यमराज का काम करती हैं। क्रोध से मृत्यु होने के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं।

(३९) दिल खोलकर हँसना जीवन का सौभाग्य है। इतना हँसिए कि शरीर के अणु-अणु काँप उठें। उन्मुक्त हास्य से रक्ताभिसरण में बाढ़-सी आ जाती है और चेहरा लाल सुर्ख हो जाता है। रोग को दूर करने और शरीर का गठन करने में हास्य के समान और कोई औषधि नहीं है। वह कुदरत की निःशुल्क, सीधी-सादी तथा सरल दवा है।

(४०) हर बात में असंतोष प्रकट करने से कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होती। आप अपने दुःख, अपनी तकलीफें प्रातःप्रार्थना के समय भगवान के आगे निवेदन करें। अन्य व्यक्ति के सामने अपना दुःख

रोने से तो केवल हताशा और निराशा ही हाथ लगेगी । हमेशा संसार को सुन्दर रूप में देखने का दृष्टिकोण अपनाइये ।

(४१) स्वर्ग और नरक इस संसार में ही हैं । स्वर्ग का अलग कहीं-कोई अस्तित्त्व नहीं हैं । प्रसन्न चित्त ही स्वर्ग है । वास्तव में शोक, भय, उद्वेग और क्रोध से घिरे हुए लोग ही इस दुनिया में नरक भोगा करते हैं ।

(४२) महात्मा गांधी 'आरोग्य विषयक सामान्य ज्ञान' नामक अपने ग्रन्थ के पृष्ठ १२१ पर लिखते हैं —

"सब धर्मों ने इस देह को ईश्वर से मिलने, उसे पहचानने का स्थान माना है । उसे दैवी-गृह कहा है । हमें तो केवल किराये पर मिला है और किराये के रूप में गृहस्वामी को केवल उसकी स्तुति और प्रार्थना ही देनी है । भाड़ा-चिट्ठी की दूसरी शर्त यह है कि उस घर का दुरुपयोग न किया जाय । उसे बाहर और अन्दर से साफ-सुथरा और सुन्दर रखें और जिस हालत में हमें मिला है उसी हालत में हम उसे गृह-स्वामी को अवधि पूरी होने पर लौटा दें । यदि हम भाड़ा-चिट्ठी की सभी शर्तों का पालन करते हैं तो गृह-स्वामी अवधि पूरी होने पर हमें इनाम देता है और अपना उत्तराधिकारी भी नियुक्त कर देता है ।"

(पृष्ठ १२३) "·····वास्तविक आरोग्य प्राप्त करने के लिए हमें अपनी स्वादेन्द्रिय जीभ पर विजय प्राप्त करनी चाहिए । ऐसा करने से हमारी अन्य विषयेन्द्रियाँ स्वयमेव नियमित हो जाती हैं । जो इन्द्रियों को वश में कर लेता है, वह जगत को अपने वश में कर सकता है; क्योंकि ऐसा मनुष्य ईश्वर का उत्तराधिकारी, उसका अंश बन जाता है । राम रामायण में, कृष्ण गीता में, खुदा कुरान में और क्राइस्ट बाइबिल में नहीं हैं, ये सभी मनुष्य के चारित्र्य में हैं; चारित्र्य नीति में और

नीति सत्य में है। सत्य ही शिव है, हम उसे जो भी कहना चाहें वही है। यह तत्त्व अत्र-तत्र आरोग्य में दिखाई देता है— यही इस प्रयास का मूल हेतु है।"

(४३) वृद्धावस्था में इन नियमों का पालन करें —

(क) ब्राह्ममुहूर्त में उठिए। (ख) सवेरे नाश्ता न करें। दोपहर के भोजन में मिताहारी बनें। रात्रि-भोजन में प्रवाही और हल्का आहार पसन्द करें। (ग) प्रति दिन दो वार पाखाना जाने की आदत डालें। (घ) कब्जियत को नियंत्रण में रखने के लिए हमेशा हर्रे का सेवन करें। (ङ) मिर्च, नमक और अन्य मसालों से रहित, सादा, सुपाच्य, सन्तुलित और पथ्यकर आहार पसंद करें। (च) हफ्ते में दो-तीन वार हल्के हाथों तेल-मालिश करें। (छ) वृद्धावस्था में संतोषी, संयमी और स्थितप्रज्ञ वनकर प्रवृत्तिमय जीवन विताएँ। (ज) परोपकार और सेवा के कार्यों में व्यस्त रहें, हमेशा कार्यरत रहें। (झ) अपने अनुकूल कोई न कोई कसरत करते रहें। यथाशक्ति घूमने–टहलने भी जाया करें। 'How to live hundred years ? (सौ वर्ष कैसे जियें ?) के लेखक श्री लूईस कार्नरो जब ८६ वर्ष के थे, तब २४ घंटों में केवल १२ औंस आहार लेते थे, जो उनके लिए पर्याप्त था। इस प्रकार वे १०२ वर्ष तक जिये थे। आप भी उम्र बढ़ने के साथ अल्पाहारवाला संयमित भोजन निर्धारित करें तभी दीर्घ आरोग्य भोगेंगे। याद रखिए व्याधिरहित वृद्धत्व मनुष्य-मात्र का जन्मसिद्ध अधिकार है।

(४४) बुखार और सर्दी जैसे सामान्य रोगों का शान्तिपूर्वक सामना करें। घबराहट न फैलाएँ, आकुल–व्याकुल न बनें, एकदम डॉक्टर के पास न जाएँ। शान्तिपूर्वक आत्मखोज करके रोग का कारण ढूंढ़ निकालिए। सर्वप्रथम पौष्टिक भोजन लेना बन्द कर दें। उपवास

करें अथवा गर्म पानी और प्रवाही खुराक पर निर्भर रहें। पेट के 'आम' को साफ हो जाने दें। डॉक्टर कहीं दवा-दारू के सपाटे में लेकर कुछ का कुछ उल्टा-सीधा करके आपको विपत्तियों की खाई में न धकेल दे इसका ध्यान रखें। संस्कृत कवि ने ठीक ही कहा है कि–

"वैदराज नमस्तुभ्यं यमराजसहोदर !
यमस्तु हरति प्राणान् त्वं तु प्राणान् धनानि च ॥"

अर्थात् 'हे वैद्यराज ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप तो यमराज के सगे भाई हैं। यम तो केवल प्राण ही लेता है, जबकि आप तो प्राण और धन दोनों ही ले लेते हैं।"

(४५) यदि दवाइयाँ रोग को निर्मूल ही करती हैं, तो तज्ज्ञ डॉक्टरों के द्वारा बहुमूल्य दवाइयाँ दिये जाने पर भी मरीज क्यों मर जाता है ? कोई भी दवा रोग दूर नहीं कर सकती। आजकल दवाओं की ओर होनेवाली इस अन्धी दौड़ ने तो सत्यानाश कर डाला है। दवा से रोग भले ही मिटे या न मिटे, किन्तु वह नये रोग की बुनियाद अवश्य डालती जाती है। अतः दवा का त्याग कीजिए।

(४६) घर में आरोग्य विषयक पुस्तकों का संग्रह करें। उन्हें बार-बार पढ़ें। प्राकृतिक नियमों का अध्ययन करके उनपर अमल करें।

(४७) निम्नलिखित बातें दीर्घायु होने में बाधक हैं —

(क) अधिक आयुवाली स्त्रियों के साथ संभोग, (ख) रात्रि में दही खाना, (ग) अति मैथुन (घ) अति आहार अर्थात् पेटूपन (ङ) व्यसन।

उपर्युक्त प्राकृतिक नियमों का पालन करनेवाला व्यक्ति सदैव निरोगी रहता है और सौ वर्ष से भी अधिक जीता है।

(४८) किसी संतपुरुष ने एक सुनहरा नियम बताया है :

"पाँव को गरम, पेट को नरम, सिर को रखो ठण्डा ।
फिर भी अगर आए डॉक्टर तो मारो उसको डण्डा ।"

(४९) श्री. हर्बर्ट स्पेन्सर नामक एक प्रख्यात आरोग्यशास्त्री ने कहा है : "The whole secret of prolonging one's life, consists in doing nothing to shorten it." अर्थात् दीर्घायु होने का रहस्य यह है कि दीर्घ जीवन प्राप्त करने में जो अवरोध रूप क्रियाएँ हैं उनका त्याग करें। मद्यपान, अत्याहार, बीड़ी-सिगरेट, अनीति-मय जीवन, मादक द्रव्यों का सेवन, आहार-विहार की विकृतियाँ इत्यादि आयु को क्षीण करती हैं। इन दूषणों का परित्याग ही दीर्घायु होने का सच्चा मार्ग है।

१८. मेद-वृद्धि कम करके दीर्घायु हों

भारत में सम्पन्न वर्ग और उच्च मध्यमवर्ग में मेद-वृद्धि का रोग वड़े व्यापक रूप में फैल रहा है। यंत्रों का अधिकाधिक उपयोग होने से शारीरिक श्रम वहुत कम हो गया है और लोगों का जीवन निष्क्रिय वन गया है। आवागमन के लिए वाहनों का उपयोग सामान्य वात हो गई है और पैदल चलने की प्रवृत्ति प्रायः वन्द हो गई है। दूर-वाणी (Telephone) की व्यवस्था के कारण भी लोगों की दौड़-धाम बंद पड़ गई है। नौकर-चाकर की उपस्थिति के कारण व्यक्तिगत श्रम कम हो गया है। ऊँची कॅलरीवाला आहार उत्तम माना जाता है। इसलिए घी, मक्खन, दूध, गेहूँ, दलहन, शक्कर, मांस, अण्डे, प्रोटिनयुक्त तथा दूध से वने खाद्य पदार्थों और मिठाइयों का उपयोग वहुतायत से हो रहा है। ये सारे पदार्थ मेद-वृद्धि करनेवाले हैं।

निष्क्रिय जीवन जीनेवालों के लिए शरीर की दैनिक क्षतिपूर्ति के लिए केवल १५०० से २००० कॅलरीवाला आहार पर्याप्त है। फिर भी ऐसे लोग ३००० से ४००० कॅलरीवाला भारी भोजन किया करते हैं और इसी में अपना गौरव समझते हैं। अतिरिक्त १००० कॅलरी शरीर में चर्बी के रूप में जमा हो जाती है। फलस्वरूप शरीर में मेद की पर्त्तें जमती हैं और मधुप्रमेह, उच्च रक्तचाप, हृदयरोग, वातरोग, पक्षाघात जैसे रोग लागू हो जाते हैं।

मेद-वृद्धि : एक भयंकर रोग :

अमरीका के प्रसिद्ध आरोग्य-शास्त्री डॉ. लुइस का कहना है कि शरीर का वजन वढ़ानेवाले इतना समझ लें कि वे अपनी जिंदगी के साथ जुआ खेल रहे हैं। अर्थात् अपनी मौत को समय के पहले बुला

रहे हैं। अधिक वजनवाले लोग अपनी आयु का पच्चीस प्रतिशत हिस्सा कम कर लेते हैं। मोटापन या स्थूलता कॅन्सर से भी ज्यादा खतरनाक है। अधिक प्रमाण में स्थूल बनकर लोग अपने आपको शीघ्रता से मौत के मुँह में धकेल रहे हैं।

मेद-वृद्धि को रोकने के वैज्ञानिक प्रयोग :

मेद-वृद्धि को रोकने के दो मुख्य उपाय हैं : 'कसरत' और भोजन का नियमन'। मेद विजातीय द्रव्ययुक्त और नरम होता है। इसी प्रकार व्यायाम न करनेवाले व्यक्ति के स्नायु भी नरम होते हैं। स्नायुओं को अधिक हलन-चलन अर्थात् कसरत मिलने से मांसपेशियाँ सुडौल और मजबूत वनती हैं। स्नायुओं को कसरत मिलने से रक्ताभिसरण वेगवान बनता है और शरीर में जमा हुआ विजातीय द्रव्य छूटकर अलग हो जाता है तथा मेद कम हो जाता है।

गीता के अनुसार यज्ञ का मतलब श्रम है। यज्ञ किये विना भोजन करने का निषेध है। आर्यों की आचार-संहिता है कि श्रम करने के बाद ही भोजन करना चाहिए। यह प्रकृति का अवाधित नियम है।

महात्मा गांधी के साथी स्व. डॉ. हरिप्रसाद व्रजराय देसाई ने ऐसी सलाह दी थी कि, "हमारी गांधीगीता के अनुसार यज्ञ करनेवाले को, श्रम करनेवाले को ही भोजन करने का हक मिलता है। पाँच मील चलने के बराबर श्रम करने पर व्यक्ति को एक जून भोजन करने का हक मिलता है। यदि आप दो जून भोजन करना चाहते हैं तो दस मील चलने के बरावर श्रम करें। श्रम के लिए आप कसरत-व्यायाम करें, जमीन खोदें, दौड़ें, गृह-कार्य करें, योगासन करें और कुस्ती या डण्ड-बैठक जैसा भारी व्यायाम करें।"
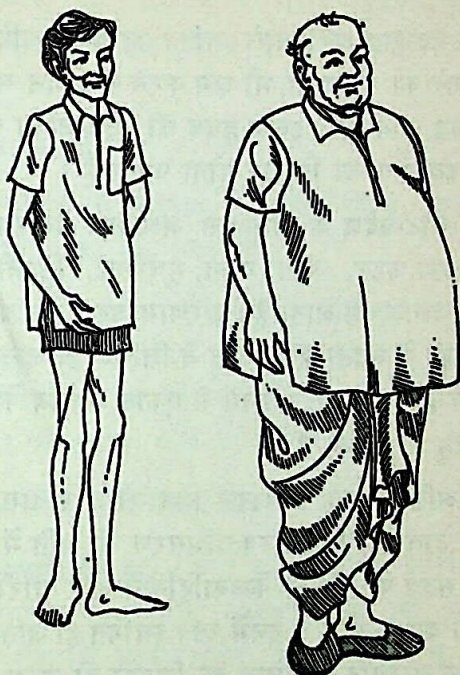
[रोग : दुबला-पतला] [रोग : अतिशय मेदवृद्धि]
[आकृति १३ : मेदवृद्धि]

मेद कम करने के लिए कई लोग उपवास का सहारा लेते हैं। उपवास पर रहते हैं तब तक वजन कम होता है, किन्तु पुनः भोजन शुरू करते ही मेद बढ़ने लगता है। इसलिए उपवास मेद कम करने का अन्तिम उपाय नहीं है।

दीर्घायु होने के लिए शरीर का पतलापन आवश्यक :

'मेयोक्लीनिक'वाले अध्याय में हम देख चुके हैं कि मोटे आदमी दीर्घायु नहीं हो सकते क्योंकि —

१. मेदयुक्त शरीरवाले व्यक्ति का वजन अधिक होने के कारण चलने-फिरने का थोड़ा-सा भी श्रम करने से थकान लग जाती है, श्वास की गति बढ़ जाती है। इससे हृदय की कार्य-शक्ति कमजोर हो जाती है और हृदय-रोग का शिकार होना पड़ता है।

२. कटि-प्रदेश के आसपास अत्यधिक मेद स्थगित हो जाता है, जिसके कारण जठर, आँत, यकृत, मूत्रपिण्ड, तिल्ली (प्लीहा) आदि पर मेद का दवाव वढ़ जाता है। परिणामस्वरूप इन प्राणधारक अवयवों की कार्यवाही में मंदता आजाने से वे शिथिल हो जाते हैं। उनकी कार्य-क्षमता कम हो जाती है। इनमें से एकाध अवयव के निष्फल हो जाने पर भी मृत्यु हो सकती है।

३. अतिशय मेद के कारण शिराओं और धमनियों पर मेद का दबाव बढ़ जाता है, जिससे रक्ताभिसरण की गति में मंदता आती है। शरीर की सतह पर स्थित केशवाहिनियों और बारीक रक्तवाहिनियों पर मेद का दबाव आने से इनमें रक्त स्थगित हो जाता है जिसके कारण स्थूल व्यक्ति वारवार पक्षाघात का शिकार हो जाता है।

४. विजातीय द्रव्य के नसों में चिपक जाने से बुढ़ापे के चिह्न दिखने लगते हैं। मेद के कारण रुधिराभिसरण व्यवस्थित नहीं होता और नसों पर चारों ओर मेद का दबाव पड़ता रहता है। मेद वाले व्यक्तियों के रक्त में चर्बी के तत्त्व (कॉलेस्टरोल)अधिक मात्रा में होते हैं। यह पदार्थ नसों में चिपक जाता है। रक्त का वहन-मार्ग सँकरा होने पर उच्च रक्त-चाप की तकलीफ होती है, जो बाद में हृदय-रोग का कारण बनता है।

५. मेदवाले व्यक्ति की सूक्ष्म नसों में विकृति उत्पन्न होती है और उसकी कार्यक्षमता में गड़बड़ी पैदा होती है। रक्त में कॉले-

स्टरोल' के वढ़ जाने से रक्ताभिसरण में भारी गड़वड़ी हो जाती है और दिमाग की नस टूटने (ब्रेन-हेमरेज होने) पर व्यक्ति वेहोश हो जाता है ।

वजन कितना होना चाहिए ? :

मनुष्य की ऊँचाई के अनुपात में उसका वजन कितना होना चाहिए—इसका सामान्य स्तर इस प्रकार है ।

जितने इंच आपकी ऊँचाई हो उतने किलोग्राम आपका वजन होना चाहिए । इससे अधिक वजन होने पर व्यक्ति को 'मेदस्वी', इससे कम वजन होने पर व्यक्ति को 'पतला' और उससे भी कम वजन होने पर व्यक्ति को 'क्षीणकाय' कहा जा सकता है ।

मेद-वृद्धि रोकने के लिए नीचे लिखे अनुसार आहार लें :

(१) **साग-सब्जी और फल :** हरी सब्जियों और फलों में कॅलरी कम होती है इसलिए इनका उपयोग खुलकर किया जा सकता है । केवल केले और चीकू में कार्बोहाइड्रेट अधिक होने से शारीरिक स्थूलता कम करने की इच्छावाले इनका उपयोग न करें ।

(२) **नमक :** नमक के कारण शरीर में पाँच-सात किलोग्राम वजन अधिक रहता है। वजन कम करने के लिए नमक का त्याग करें । नमक पोषक खुराक नहीं है ।

(३) **शक्कर :** शक्कर की मिठास में केवल कार्बोहाइड्रेट अधिक है, अतः वजन कम करने के लिए शक्कर का त्याग करना चाहिए । शक्कर के स्थान पर ग्लूकोज, गुड़, खजूर का रस, ताड़ का गुड़, नीरा आदि अल्प मात्रा में लिये जा सकते हैं ।

(४) **चर्बी :** दूध, घी, तेल, मक्खन, मांस आदि में चर्बी अत्यधिक मात्रा में है। ये पदार्थ मेद-वर्धक हैं। अतः इन पदार्थों का त्याग करना चाहिए।

(५) **अनाज :** गेहूँ, चावल, मकाई आदि में कर्बोहाइड्रेट ज्यादा है जिसका शीघ्रता से मेद में रूपान्तर होता है। अतः मेद घटाने के लिए इन अनाजों का त्याग करना चाहिए।

हाथ-कुटे चावल उपयोग में लिये जा सकते हैं। उसमें खनिज तत्त्व, प्रोटीन और विटामिन हैं, जो वजन नहीं वढ़ाते। धान को कूटकर उसका छिलका दूर करने पर जो चावल कुदरती स्थिति में प्राप्त होते हैं, उन्हें ही 'हाथ-कुटे चावल' कहते हैं।

(६) **कन्द-मूल :** आलू और शकरकन्द शर्करायुक्त कन्द-मूल हैं। ये मेद-वर्धक हैं, अतः इनका त्याग करना चाहिए। आलू और शकरकन्द को छोड़कर अन्य कन्द-मूल का सेवन किया जा सकता है।

मेद कम करने के लिए कैसा आहार लें ? :

अनाज में केवल हाथ-कुटे चावल और जौ को छोड़ कर अन्य कोई अनाज न लें। आप जमीन के ऊपर उगनेवाली हर प्रकार की सब्जी का उपयोग कर सकते हैं। सभी प्रकार की हरी साग-भाजी में कॅलरी कम होती है। फलों में चीकू और केले को छोड़कर अन्य सभी फल (तरबूज, खरबूजा, सेब, पपीता आदि) निस्संकोच ले सकते हैं। इन फलों में कॅलरी कम होती है। सूखे मेवे भी ले सकते हैं।

सपरेट दूध भी इच्छानुसार ले सकते हैं। यंत्र के द्वारा दूध से मलाई निकाल देने पर उसे 'सपरेट' कहा जाता है। सपरेट दूध से बनी मिठाइयों तथा अन्य वस्तुओं से अपने भोजन को स्वादिष्ट बनाइए।

सपरेट दूध का दही जमाकर विविध खाद्य पदार्थ बनाइए। इस प्रकार के कम कॅलरीवाले पदार्थ खाने से वजन कम होता है। निम्नलिखित सूचनाओं को ध्यान में रखकर अपने भोजन का आयोजन करें—

(१) हरी सब्जियों में क्षार तत्त्व अधिक होता है जिससे उनमें नमक डालने की आवश्यकता नहीं रहती। फिर भी आवश्यक हो तो केवल स्वाद के लिए थोड़ा-सा सेंधा नमक ऊपर से डाला जा सकता है।

(२) चाय में पोदीना डालकर उसे सुगन्धित बनाकर पियें।

(३) सपरेट दूध में सोंठ, दालचीनी, काली मिर्च, पीपरा मूल आदि गर्म मसाले डालकर गरमागरम दूध पिया करें। यदि इच्छा हो तो दूध के साथ में जौ की बनी खस्ता रोटी भी खा सकते हैं।

(४) सपरेट दूध में बादाम, पिस्ता, जायफल, चिरौंजी, खसखस आदि डालकर बनाई हुई खीर खाइये। इस प्रकार की खीर एक स्फूर्ति-दायक आहार है।

(५) सपरेट दूध के साथ मौसमी फलों का शरबत बनाया जा सकता है। मिठास के लिए आप खजूर, ताड़ के गुड़ या मटकी के गुड़ का उपयोग कर सकते हैं।

(६) सपरेट दूध से बनाए हुए दही में ककड़ी, मोगरी, प्याज आदि डालकर स्वादिष्ट रायता बनाइये और आनन्द से खाइये।

(७) ककड़ी, गाजर, मूली, पत्ता गोभी आदि में नीबू, हरी मिर्च, पोदीना आदि डालकर स्वादिष्ट कचूमर तैयार किया जा सकता है।

(८) ज्यूसर (रस निकालने की मशीन) से गाजर का रस निकालकर प्रतिदिन सबेरे पियें। यह एक प्रकार का शक्ति-वर्धक टॉनिक है। मार्गशीर्ष में मूली खाइये और उसका रस निकालकर पीजिए।

(९) गाजर, मूली, मोगरी, पत्ता गोभी, फूल गोभी, टमाटर, ककड़ी आदि की कच्ची-पकी तरकारी बनाकर खाइये ।

(१०) निम्नलिखित तरीके से साग-भाजी का सूप बनाइये—

एक बड़ा-सा पत्तागोभी, छह सफेद प्याज, कचूमर बनाया जा सके ऐसी नरम ककड़ी, कच्चा पपीता, हरी काली मिर्च और अदरक, एक किलो पके टमाटर-इन सारी सब्जियों के बड़े-बड़े टुकड़े करके उन्हें पानी के साथ एक पतीले में चूल्हे पर चढ़ा दीजिए और धीमी आँच में दो-तीन घण्टे खूब उबलने दीजिए । भाजी घुलकर एकरस हो जाय तबतक उसे उबालिए । संभव हो तो कूकर का उपयोग करें । कूकर में भाजी जल्दी घुलकर एकरस हो जाएगी । इसके बाद ठंडा होने पर उसे फ्रीज में रख दीजिए । भूख लगने पर इस सूप के एक-दो प्याले पीजिए ।

दिनचर्या :

मेद कम करने की इच्छा रखनेवालों को प्रतिदिन प्रातःकाल जल्दी उठना चाहिए, अर्थात् प्रातःकाल चार बजे ही बिस्तर छोड़ देना चाहिए । शौचकर्म एवं प्रातःकर्म से निपटकर प्रस्तुत पुस्तक में बताई हुई कसरतें आधे घण्टे तक करें । इसके बाद आधे घण्टे तक चलने या मन्द गति से दौड़ने की कसरत करें ।

जिन्हें बड़े सबेरे चाय पीने की आदत हो, वे 'सर्विस चाय' या कॉफी ले सकते हैं । इसके बाद नाश्ते में आप सपरेट दूध का काढ़ा, मसाले का दूध, बादाम–पिस्ते की खीर, जौ की रोटी आदि में से कुछ भी ले सकते हैं ।

दोपहर के मुख्य भोजन के लिए हाथ-कुटे चावल अथवा उनमें साग-भाजी का मिश्रण करके पुलाव जैसा स्वादिष्ट भोजन बना लें । चार-

पाँच प्रकार की साग-भाजी का कचूमर दही मिलाकर बनाइये। भोजन के साथ, सूप, दही, छाछ आदि रुचिकर प्रवाही ले सकते हैं।

शाम को खरबूजा, तरबूज, पपीता, सेव आदि मौसमी फलों का सेवन कर सकते हैं।

अन्त में ब्यालू (रात्रि-भोजन) में सूप, खिचड़ी-भात और सपरेट दूध तथा उबली हुई साग-भाजी ले सकते हैं।

उपर्युक्त भोजन के साथ आयु एवं शक्ति के अनुरूप कसरत भी आवश्यक है। सुबह--शाम थकान महसूस होने तक कसरत करें। यथा-शक्ति घूमने या दौड़ने का कार्यक्रम रखें। शेष समय में शरीर को निरंतर सक्रिय रखें।

मेद कम करनेवाली कसरतें

कसरत नं. १ :
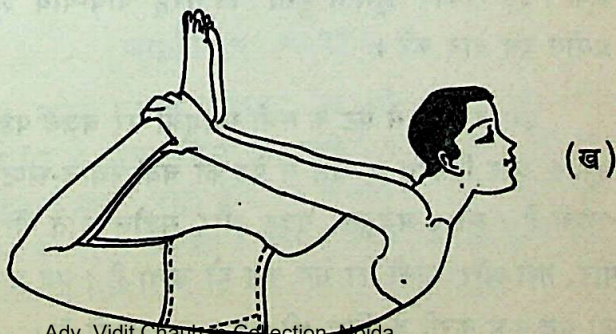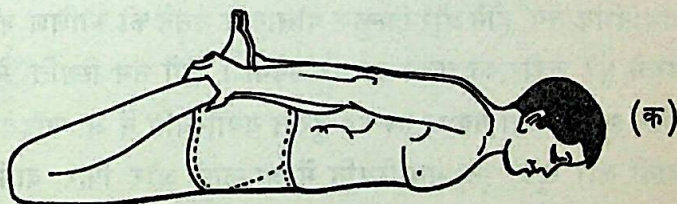
[आकृति १४ : कसरत नं. १]

१. (क) यह कसरत लेटे-लेटे करनी है। पैर लम्बे करके मुँह के वल (उल्टे) लेट जाइए। हाथ पीछे की तरफ रखिए। अव दोनों घुटनों से पैरों को इस तरह मोड़िए कि पैरों के पंजे आकाश की तरफ ऊपर की ओर रहें। दोनों हाथों से पैरों के दोनों पंजों को मजबूती से पकड़ लीजिए। गरदन को पीछे की ओर मोड़िए। इसके वाद हाथों और पैरों को जोर लगाकर एकदम नजदीक खींचने का प्रयत्न कीजिए। इस आसन में पूरे शरीर का वजन पेट पर पड़ेगा। इस स्थिति में तीस सेकण्ड रहिए। फिर हाथ-पैर छोड़कर मूल स्थिति में आकर थोड़ा विश्राम कीजिए। इसी कसरत को पाँच वार करें। इस कसरत से पेट के स्नायु खिचेंगे और पेट की चर्बी कम होने लगेगी।

(ख) उपर्युक्त तरीके से दोनों हाथों से दोनों पैरों को पकड़कर यथासंभव तंग होने और विल्कुल गोलाकार वनने की कोशिश कीजिए। इससे पूरे शरीर का वजन पेट पर पड़ेगा। इसी तंग स्थिति में दायीं ओर झुकिए। दो सेकण्ड रुककर तुरन्त यथास्थिति में आ जाइये। फिर वायीं ओर झुकें, पुनः यथास्थिति में आ जाएँ और फिर दायीं ओर झुकें। इस प्रकार झूलती कुर्सी की तरह दायें-वायें झुकते रहें। यह प्रयोग दस वार करें।

इस कसरत से पेट के सभी स्नायुओं पर वजन पड़ता है। दवाव, संकोच और विकास के श्रम से पेट की चर्बी स्थान-भ्रष्ट होकर घुलने लगती है। स्नायु मजबूत, सुदृढ़ और सुडौल होते हैं। गर्दन, कन्धे, पीठ, गले और छाती का मेद कम हो जाता है। यह प्रयोग पूरे शरीर का मेद कम करने के लिए भी बड़ा प्रभावकारी है।

कसरत नं. २ :

२. (क) यह कसरत लेटे-लेटे, बैठकर और खड़े होकर की जाती है।
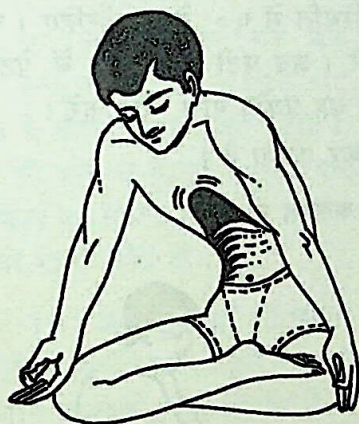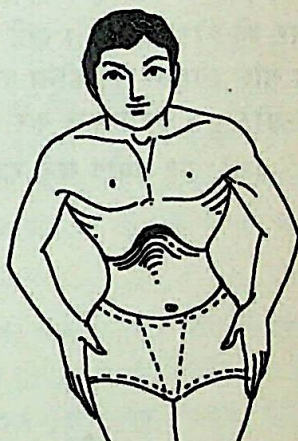
(ख) (ग)

[आकृति १५ : कसरत नं. २]

चित लेट जाइये। साँस छोड़कर पेट को भीतर की ओर खींचिए। इससे पेट में गहरा गड्ढा पड़ जायेगा। योगासन में इस क्रिया को 'उड्डियान बन्ध' कहते हैं। इस स्थिति में ५० सेकण्ड तक रहिए। अब पेट को ढीला कीजिए। साँस लीजिए। इसके बाद घड़ी के काँटों की दिशा में धीरे-धीरे पेट को मसाज करें। यह प्रयोग पाँच बार करें।

मेदवालों को साँस छोड़कर अर्थात् रेचक करते हुए पेट को तंग करके भीतर की ओर खींचना है, ताकि मेद का शोषण करने की क्रिया में गति आएगी।

(ख) यह प्रयोग बैठकर करना है। आरामदेह बैठक पर बैठकर यह कसरत करनी है। दोनों हाथ घुटनों पर रखकर पेट को भीतर की ओर खींचिए। इसी स्थिति में ५० सेकण्ड रहिए। इसके वाद साँस छोड़कर पेट ढीला करें। अव घड़ी की दिशा में पेट को धीरे-धीरे कुछ देर मसाज करें। यह प्रयोग पाँच बार करें।

(ग) यह प्रयोग खड़े रहकर करना है।

कसरत नं. ३

[आकृति १६ : कसरत नं. ३]
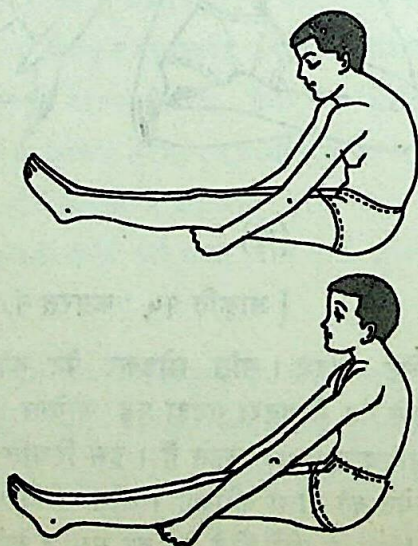
सीधे अकड़कर खड़े रहिए। दोनों हाथ घुटनों पर टिकाइए। आँखें बन्द रखिए। पेट को भीतर की ओर खींचिए। इस स्थिति में पचास सेकण्ड तक साँस रोक रखें। इसके वाद तंग स्थिति छोड़कर पुनः सीधे खड़े रहें। गहरी साँस लेकर पेट को मसाज करें। इस प्रयोग से भोजन पचता है, कब्जियत दूर होती है और मेद संकुचित होता है। यह प्रयोग भी पाँच बार कीजिए।

३. (क) पैर पसार कर बैठ जाएँ, पैरों को घुटनों से तंग करके उन्हें सीधे रखिए। इसके वाद हाथ की मुट्ठियाँ बाँधकर उन्हें घुटनों के नीचे रखिए। अव दोनों पैर उठाकर फर्श से लगभग दो इंच ऊपर की ओर ले जाइए (इस स्थिति में पैर घुटनों से मुड़ने न पायें।) यह क्रिया ५० सेकण्ड तक करें। फिर आराम की स्थिति में आ जाएँ। एक-दो गहरी साँसें लें।

(ख) अब मुट्ठियों को घुटनों के नीचे से हटा कर पिंडलियों के नीचे ले आइये और पहले की तरह धीरे-धीरे दोनों पैरों को ऊपर की ओर उठाइये। इस स्थिति में पचास सेकण्ड तक स्थिर रहिए। तत्पश्चात् हथेलियों से थोड़ी देर पेट की मालिश कीजिए।

इस कसरत से पेट के साथ-साथ कमर, जाँघ, घुटनों के स्नायु और पेडू को खिचाव-तनाव की कसरत मिलने से इन भागों के स्नायुओं में रक्ताभिसरण वेगवान् वनता है और खींचा-तानी का व्यायाम मिलने से मेद घटता है। यद्यपि वड़ी तोंदवालों से यह कसरत नहीं हो सकेगी, फिर भी उन्हें यथासंभव प्रयत्न करना है। धीरे-धीरे प्रयत्न करने से सफलता अवश्य मिलेगी। साँस छोड़कर यह प्रयोग करने से अच्छी तरह हो सकेगा। रेचक करके यह प्रयोग कीजिए।

यह प्रयोग पाँच से पन्द्रह बार कीजिए।

मेद को नियन्त्रित करने की कसरतें :

उक्त चार कसरतें करने के बाद, प्रस्तुत पुस्तक के पाँचवें अध्याय में निर्दिष्ट प्रमुख दस कसरतें करनी हैं। मालिश करके ये कसरतें करने से अपेक्षित परिणाम प्राप्त किया जा सकता है।

श्रीमती अंजनाबहन को प्रसूति के बाद कटि-प्रदेश में मेद-वृद्धि हो गई। एकाएक मेद-वृद्धि होने से शरीर बेडौल दिखने लगा। घूमना-फिरना भी मुश्किल हो गया। घूमने-फिरने से उनके दिल पर अत्यंत बोझ पड़ता था, जिससे पसीना आ जाता था और काफी अशक्ति महसूस होती थी। मैंने उन्हें इस अध्याय में निर्दिष्ट कसरतें करने और भोजन का नियमन करने की सूचना दी। अंजनाबहन को मेद कम करने के लिए इस अध्याय में निर्दिष्ट कॅलरी का सीधा-सादा हिसाब समझाया। वे तुरंत समझ गईं और मन में दृढ़ निश्चय किया कि यह प्रयोग करके उन्हें शरीर का वजन कम करना ही है। इच्छा-शक्ति जाग्रत होते ही उन्होंने व्यायाम के प्रयोग शुरू कर दिये। केवल प्रथम दस दिनों में ही आठ रतल (पाउण्ड) वजन कम हो गया और कमर के घेरे में दो इंच की कमी हो गई। केवल दस दिनों में इतना चमत्कारिक परिवर्तन होने पर अंजनाबहन के मनोबल और इच्छा-शक्ति में वृद्धि हुई। इस प्रकार निरंतर सक्रिय रहकर अंजनाबहन ने चार-पाँच महीनों में ही पूर्ववत् स्थिति प्राप्त कर ली और मेद-वृद्धि से मुक्त हो गईं। यही नहीं, पुनः मेद-वृद्धि न हो और शरीर निरोगी बना रहे, इसके लिए उन्होंने सुबह-शाम बीस-बीस मिनट कसरत जारी रखी।

"परिवार, समाज और ईश्वर के प्रति हमारा पहला कर्तव्य है : स्वस्थ रहना।"

१९. कब्जियत दूर करें

आजकल के अप्राकृतिक रहन-सहन और विकृत आहार-विहार के कारण कब्जियत के रोग की शिकायत सामान्य हो गई है। मल का आसानी से और पूर्णरूपेण निर्गमन न होने के कारण अनेक विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। मल पेट में जम कर पड़ा रहने से उसमें खमीर उठ-कर सड़न उत्पन्न होती है और गैस (वायु) वनने लगती है। गैस शरीर में भयंकर उपद्रव करती है। हम कब्जियत के प्रमुख कारणों से परिचित हों, उन्हें दूर करें ताकि हमारे शरीर में किसी भी प्रकार का रोग ही न हो सके।

(१) निष्क्रिय जीवन : व्यापारियों और दूकानदारों को गद्दे पर मसनद के सहारे बैठकर केवल मानसिक श्रम करना होता हैं। उन्हें शारीरिक श्रम तो करना ही नहीं पड़ता। केवल बैठे रहने से जठर में अपेक्षित मात्रा में पाचन-रसों का स्राव नहीं 'हो सकता। फलस्वरूप खाना अच्छी तरह पच नहीं पाता। दिनभर बैठे रहने से मलद्वार पर दवाव पड़ता रहता है। इसलिए पाखाने की हाजत नहीं होती। मल सूख जाता है। इस प्रकार कब्जियत के रोग का आरंभ होता है।

(२) आघात-प्रत्याघात : दैनिक मानसिक प्रश्नों के आघात-प्रत्याघात भी पाचन-तंत्र पर पड़ते हैं। मानसिक तनाव के कारण जठर में आवश्यक पाचक-रसों का स्राव नहीं हो पाता; अतः पाचन-क्रिया मंद पड़ती है।

(३) आहार : आजकल के अप्राकृतिक आहार के कारण भी कब्जियत होती है ऐसा देखने को मिलता है। बेहद पालिस करके चावल के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को केवल इसलिए फेंक दिया जाता है कि

चावल सफेद दिखाई दें और पकने पर उनके दाने अलग-अलग हो जायँ। इसी प्रकार गेहूँ के आटे को चलनी से चालकर उसका चापड़ दूर कर दिया जाता है और केवल मैदे का ही उपयोग किया जाता है। मैदा एक चिकना पदार्थ है। वह पचने में तो गरिष्ठ हैं ही, आँतों में चिपक भी जाता है। इसीलिए कब्जियत होती है। हमें अपने भोजन में हरी पत्तियोंवाली भाजी और फल लेने चाहिए। भाजी में रेशे होते हैं, जो आँतों में जमे हुए मल को साथ में लेकर गुदाद्वार से बाहर निकाल देते हैं। इससे कब्जियत नहीं होती। महात्मा गाँधी ने 'आरोग्य की कुंजी' में केवल उन्हीं हाथकुटे चावलों का उपयोग करने की हिमायत की है जिन पर पालिश न की गई हो और केवल धान के छिलके दूर करके तैयार किये गये हों। चावल के छिलकों (महीन भूसे) में विटामिन 'बी' रहता हैं इसी के अभाव से कब्जियत होती है।

(४) पाचनरस : खट्टा रस पाचन-क्रिया के लिए सहायक है। अतः भोजन के साथ छाछ, नीबू, कोकम, इमली और रेशेवाली साग-भाजी लेने से कब्जियत नही होती; और यदि हुई हो तो इन खट्टे पदार्थों के लगातार सेवन से वह दूर हो जाती है। भोजन के बाद छाछ या नीबू का शरबत पीने से पाचन-क्रिया में त्वरित गति आती है और खाना जल्दी से हजम हो जाता है। यदि गरिष्ठ भोजन अधिक मात्रा में कर लिया हो तो अन्त में छाछ पी लेने से अफारा नहीं होता और पाचन-क्रिया में सहायता मिलती है। इससे अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न होने का भय भी टल जाता है।

(५) पानी का उपयोग : आहार और पानी साथ-साथ कभी न लें। भोजन के पूर्व या भोजन करते-करते भी पानी नहीं पीना चाहिए। पानी और भोजन साथ-साथ लेने से उसमें शरीर की गर्मी मिलने

पर गॅस उत्पन्न होती है। फलस्वरूप पाचक-रस मंद पड़ जाते हैं और पाचन-क्रिया शिथिल हो जाती है तथा गॅस के साथ मल भी आँतों में जम जाता हैं। भोजन के डेढ़-दो घण्टे वाद ही पानी पीना हितकर है। उष:पान से भी कब्जियत दूर होती है। रात को ताँबे के लोटे में पानी भरकर रख दें। सुबह यह पानी पीने से कब्जियत दूर होती है।

(६) **साग-भाजी :** साग-भाजी में विटामिन 'वी' के अलावा कुछ अन्य विटामिन तथा उपयोगी खनिज क्षार भी हैं जो रक्त-शुद्धि और आँतों की नियमित प्रक्रिया के लिए उपयोगी हैं। हरी सब्जियों के गुण-धर्मों की चर्चा करते हुए आहार-शास्त्री रॉबर्ट मॅक कॅरिसन कहते हैं : "भाजी तो शरीर के लिए रोगप्रतिरोधक ढाल के समान हैं, क्योंकि उसमें कॅल्शियम, सोडियम और क्लोरिन जैसे उत्तम प्रकार के खनिज क्षार हैं। हमें अन्य किसी खाद्य पदार्थ से क्षार प्राप्त नहीं होते। अतः इन क्षारों के अभाव में कुछ रोग विशेषतः कब्जियत होने की संभावना रहती है। इस परिस्थिति से बचने के लिए हरी साग-भाजी का सेवन करना अत्यावश्यक है।"

इससे विदित होगा कि भोजन में हरी सब्जियों और फलों का बड़ा महत्त्व है। भोजन में पचास प्रतिशत हरी सब्जियों और फलों को स्थान देना चाहिए। ऐसा करने से ही पेट के रोगों का प्रतिकार हो सकेगा।

आहार को भलीभाँति चबाकर और उसे एकरस बनाकर ही जठर में उतारिए। याद रखिए कि जठर में दाँत नहीं होते। जो भोजन अच्छी तरह नहीं चबाया जाता वह ज्यों का त्यों बड़ी देर तक जठर में पड़ा रहता है; जिससे गैस उत्पन्न होती है जो अनेक व्याधियाँ उत्पन्न करती है। ऐसा न हो, इसके लिए आहार को खूब चबाना चाहिए। आहार को

चवाने से मुँह में स्थित लार-ग्रन्थि में से 'सलाइवा' नामक रस निकलता है। उसका आहार के साथ मिश्रण होने से आहार जल्दी पच जाता है। इसके वाद जठर में से कुछ रस स्रवित होकर आहार के साथ मिल जाते हैं। ये रस भी आहार को पचाने में सहायता करते हैं। इस प्रकार पचा हुआ आहार जठर से आँतों में पहुँचता है।

संक्षेप में, भोजन चबाकर एकरस वनाने के बाद ही जठर में उतारना चाहिए। जो पच जाता है वही 'आहार' है। शेष तो कूड़ा-कर्कट है, बीमारी उत्पन्न करनेवाला घूरा है।

[आकृति १७ : फल और सागभाजी]

कब्जियत के उपचार

(१) रात में जल्दी सोकर सुबह जल्दी उठना चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त में उठना अत्यंत आरोग्यप्रद है। जल्दी उठने से जठर में स्थित भोजन को — 'आम' को पचने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है अतः कब्जियत नहीं हो पाती।

(२) उषःपान करना चाहिए अर्थात् रात को ताँबे के लोटे में भरा हुआ पानी प्रातःकाल निराहार स्थिति में यथेष्ट मात्रा में पेटभर पियें। यह पानी दस्त साफ लाता है, आँतें ठण्डी रखकर उनकी कार्य-क्षमता बढ़ाता है और इस प्रकार कब्जियत दूर करता है। (जाड़े के मौसम में गर्म पानी पीना चाहिए।)

(३) गढडावाले वैद्य पूज्य स्व. प्रभाशंकरभाई ने यह निष्कर्ष निकाला है कि : "स्वस्थ को हर्रं और बीमार को लंघन। रोज रात में हर्रं का चूर्ण फाँकना चाहिए। वस्तुतः हर्रं तो एक आहार है, कोई रेचक औषधि नहीं। इसलिए निर्भय होकर हर्रं फाँकिए और कब्ज को भगाइए।" इस प्रकार नियमित रूप से हर्रं का सेवन करनेवाले को कभी कब्ज नहीं होती।

मेरे एक मित्र श्री प्रबोधभाई जोशी के पितामह एक सौ दो वर्ष जिये थे। आरोग्य विषयक अपने अनुभवों की बातें करते हुए उन्होंने बताया था कि लगभग पिछले पचास वर्षों से वे प्रतिदिन नियमतः हर्रं का सेवन करते हैं; इससे उन्हें न तो कभी कब्ज की शिकायत हुई और न कभी किसी प्रकार का कोई चर्मरोग हुआ।

इससे एक बात तो स्पष्ट है कि हर्रं औषधि नहीं है, बल्कि संजीवनी रूप रसायण है। हर्रं के नियमित सेवन से दस्त साफ होता है और चर्मरोग भी नहीं होते। यहाँ तक कि हर्रं फाँकनेवाले व्यक्ति को ग्रीष्मऋतु में होनेवाली घमोरियाँ भी नहीं होतीं। वास्तव में, हर्रं केवल

संजीवनी नहीं, किन्तु आयुवर्धक जड़ी-बूटी भी है। इसलिए निर्भय होकर हर्रे फाँकिए, कब्जियत को दूर भगाइए और सदा निरोगी रहिए।

(४) रात को सोते समय भिगोकर निचोड़े हुए नॅपकिन से पेट को भीगा घर्षण दीजिए। नॅपकिन को धीरे-धीरे पेट पर मसलिए। घर्षण करते-करते नॅपकिन गर्म हो जाएगा। इस प्रक्रिया के दौरान नॅपकिन को दो-तीन वार ठण्डे पानी में भिगोकर निचोड़ लीजिए, इस प्रकार लगभग पन्द्रह मिनट घर्षण करने के बाद ठण्डे पानी में भिगो कर निचोड़ा हुआ नॅपकिन पेट पर रखकर, गर्मशाल, मफलर या अन्य कोई भी सुविधाजनक सूखा वस्त्र पेट और कमर के इर्द-गिर्द लपेटकर सो जाएँ। रात में जब भी नींद खुल जाय और इच्छा न हो तो वह सब निकाल दें और यदि उसी हालत में सुबह हो जाय तो भी कोई नुकसान नहीं है।

(५) सुबह-शाम पेट और पेड़ू के अंगों की हल्के हाथों से तेल-मालिश करें।

(६) प्रतिदिन कसरत करें। कब्जियत दूर करने के लिए कसरत एक सर्वश्रेष्ठ उपचार है।

(७) भाखरी (खस्ता रोटी) में मूँगफली के तेल के बदले अरण्डी के तेल का मोयन दीजिए। अरण्डी के तेल से आँतों में चिपका हुआ मल आसानी से निकल जाता है और पेट साफ हो जाता है।

(८) रात के समय कम खाना, सादा भोजन करना, मानसिक आवेगों या चिन्ताओं से दूर रहना, अकर्मण्य जीवन को छोड़कर श्रमयुक्त जीवन जीना तथा गहरी नींद आए ऐसा आयोजन करना चाहिए।

(९) रात को सोते समय गर्म दूध, घी और शक्कर मिलाकर पियें। इससे भी कब्जियत दूर होती है।

(१०) प्रातःकाल उठते ही मल-विसर्जन की आदत डालिए। कुछ दिनों तक तो आप विस्तर छोड़ते ही पखाना जाने की आदत डालिए, भले ही दस्त लगे या न लगे। इससे आँतों को भी आदत पड़ जाएगी। यदि आपको दिन में दो-वार भोजन करने की आदत हो तो दो वार मल-विसर्जन की भी आदत डालनी चाहिए।

(११) ठण्डा दूध वायु-विकार करता है, फलस्वरूप कब्जियत में वृद्धि होती है। ठण्डा दूध भोजन के साथ भी नहीं लेना चाहिए। घी-शर्करा मिश्रित कुनकुना दूध ही भोजन के साथ लेना या पीना चाहिए।

(१२) ईसबगोल के सेवन से भी आँतें मुलायम रहती हैं। मल भी सख्त न होकर नरम ही रहता है। ईसवगोल पाचन-तंत्र के अवयवों की अनावश्यक गर्मी दूर करता है और पाचन-तंत्र को कार्यक्षम बनाये रखता है जिससे मल बँधकर साफ आता है। ईसबगोल भी औषधि नहीं है, वल्कि मानव-आहार ही है। इसे दिन या रात किसी भी समय दूध या पानी के साथ लिया जा सकता है। छोटे-बड़े ईसवगोल का निस्संकोच सेवन कर सकते हैं।

(१३) कब्जियत में काला गुड़ भी बहुत फायदेमन्द है। गुड़ भी भोजन है, न कि रेचक दवा। गुड़ को गर्म पानी में डालकर घोल लें, उवालें नहीं। फिर उसमें नीबू निचोड़कर शरबत वना लें। इस शरबत का सुवह-शाम सेवन करें। इससे कब्ज दूर हो जाती है।

आँतों में भरे हुए मल में अनेक प्रकार के जीवाणु उत्पन्न होते हैं जो रक्त को अशुद्ध करते हैं। फलतः सरदर्द, ज्वर, अंत्रज्वर, सर्दी, पेट-दर्द, ववासीर, अंत्रशोथ, अंत्रपुच्छ की सूजन, गैस, अंत्रवृद्धि (हर्निया) आदि रोग होते हैं। इसलिए जो लोग १०० वर्ष निरोगी रहना चाहते हों, वे इन निःशुल्क तथा सुलभ उपचारों के द्वारा कब्जियत से मुक्ति प्राप्त करें।

जो "स्वस्थ जीवन" के लिए नहीं रोते, अन्त में उनके लिए ही रोने का समय आता है! हमें इतना स्वस्थ और शक्तिशाली तो रहना ही चाहिए कि जिससे हमपर कोई रोग आक्रमण न कर सके और हमारे नौकर, स्वजन या परिचित अपमानित करके हमें रुआँसा न वना दें!

२०. हृदय-रोग से बचें

आजकल यत्र-तत्र हृदय-रोग के आक्रमण से होनेवाली मृत्यु के असंख्य समाचार सुनने को मिलते हैं। आजकल हृदय-रोग से होनेवाली मौतों का प्रमाण विश्व के सभी देशों में अत्यन्त बढ़ गया है। यही कारण है कि अमरीका और यूरोप में हृदय-रोग से बचने के लिए तद्विषयक साहित्य विपुल मात्रा में प्रकाशित हो रहा है।

हृदय-रोग की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए हृदय और रुधिराभिसरण का पूरा ब्यौरा जानना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यावश्यक है।

हृदय की रचना :

हृदय छाती की भीतरी पोल में, दो फेफड़ों के बीच, कुछ बायीं ओर स्थित है। वह शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव है। उसका आकार उलटे शंकु जैसा होता है। उसका कद आदमी की मुट्ठी के बराबर और वजन लगभग ३००–३५० ग्राम होता है। उसकी लम्बाई १२ से. मी., चौड़ाई ९ से. मी. और मोटाई ५.५ से. मी. के करीब होती है।

हृदय मजबूत अनिच्छावर्ती स्नायुओं से बना हुआ है। उस पर हरे रंग की-सी दो नरम परतें होती हैं। इन परतों के बीच एक प्रकार का स्राव होता है, जिससे हृदय के आकुंचन-प्रसरण के समय घर्षण नहीं हो पाता।

अन्तर्रचना : हृदय के बीच स्नायु का एक अखण्ड खड़ा पर्दा होता है, जो उसे दायाँ और बायाँ-इस प्रकार के दो भागों में विभक्त करता है। इन दोनों हिस्सों में एक-एक आड़ा पर्दा होता है। इस प्रकार हृदय के चार खाने होते हैं। ऊपर के खानों को 'कर्णक' या अलिन्द

और नीचे के खानों को 'क्षेपक' या निलय कहा जाता है। दायें कर्णक और दायें क्षेपक के बीच त्रिदल वाल्ववाला पर्दा होता है। बायें कर्णक और बायें क्षेपक के बीच द्विदल वाल्ववाला पर्दा होता है। कर्णकों की दीवार की अपेक्षा क्षेपकों की दीवार अधिक मोटी होती है। बायें क्षेपक की दीवार सबसे मोटी होती है।

दायें कर्णक में ऊर्ध्व शिरा का एक मुँह और अध:शिरा का एक मुँह; इस प्रकार दो बड़े मुँह खुलते हैं; जबकि बायें कर्णक में फुप्फुस शिराओं के चार मुँह खुलते हैं। दाहिने क्षेपक में से एक बड़ी फुप्फुस धमनी ऊपर की ओर से फेफड़ों में जाती है; जबकि बायें क्षेपक में से एक महाधमनी ऊपर की ओर जाती है। इन दोनों धमनियों के मूल में तीन-तीन अर्धचन्द्राकार वाल्व होते हैं।

[आकृति १८ : हृदय]
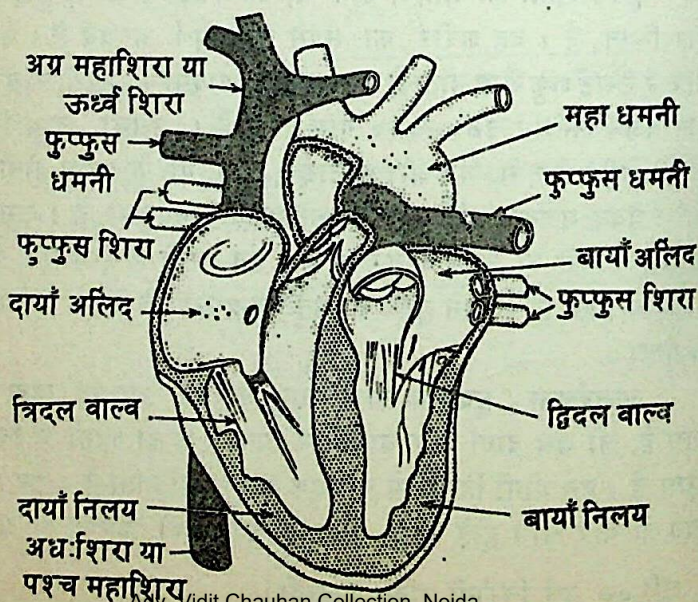
कार्य : ऊर्ध्व शिरा द्वारा शरीर के ऊपरी हिस्सों का और अधः शिरा द्वारा शरीर के नीचे के हिस्सों का अशुद्ध रक्त दायें कर्णक में आता है। उसी समय चार फुप्फुस शिराओं द्वारा फेफड़ों से शुद्ध रक्त बायें कर्णक में आता है। इसके बाद दोनों कर्णक एकसाथ सिकुड़ते हैं। इससे दायें कर्णक का अशुद्ध रक्त त्रिदल वाल्व खोलकर दायें क्षेपक में प्रविष्ट होता है और बायें कर्णक का शुद्ध रक्त द्विदल वाल्व खोलकर बायें क्षेपक में प्रविष्ट होता है। शिराओं में स्थित वाल्व के कारण कर्णकों का रक्त पुनः लौट नहीं सकता। क्षेपकों में रक्त आने के बाद वे सिकुड़ते हैं और दायें क्षेपक का अशुद्ध रक्त फुप्फुस धमनी के द्वारा शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में पहुँचता है; जबकि बायें क्षेपक का शुद्ध रक्त महाधमनी द्वारा शरीर के सभी अवयवों में पहुँचता है। इस प्रकार, रक्त कर्णकों में से उनके नीचे रहे हुए क्षेपकों में जाता है और क्षेपकों में से पूरे शरीर के विविध अवयवों में पहुँचता है। अतः कर्णक की अपेक्षा क्षेपक को बल का अधिक उपयोग करना पड़ता है इसीलिए कर्णक की अपेक्षा क्षेपक की दीवार अधिक मोटी होती है।

रुधिराभिसरण के मुख्य तीन प्रकार :

(१) फुप्फुसमार्गीय अभिसरण, (२) शारीरिक अभिसरण और (३) यकृतमार्गीय अभिसरण।

(१) **फुप्फुसमार्गीय अभिसरण :** हृदय के दायें क्षेपक का अशुद्ध रक्त फुप्फुस धमनी द्वारा फेफड़ों में जाता है, रुधिर के रक्तकणों में स्थित हिमोग्लोबिन नामक पदार्थ का फेफड़ों में स्थित शुद्ध प्राणवायु (Oxygen) के साथ संयोजन होता है और कार्बन डायॉक्साइड को बाहर निकालता है। हिमोग्लोबिन और आक्सीजन (प्राणवायु) का संयोजन होने से रक्त में ऑक्सि-हिमोग्लोबिन नामक लाल रंग का तेजस्वी पदार्थ उत्पन्न होता है। इसके कारण शुद्ध रक्त चमकदार

लाल रंग का दिखता है। अशुद्ध रक्त में से फेफड़ों में आई हुई कार्बन डायॉक्साइड गैस और अतिरिक्त पानी की वाष्प उच्छ्वास के साथ
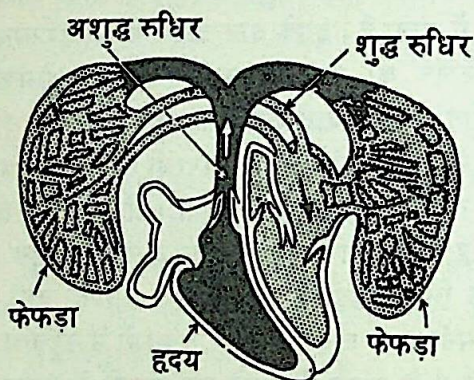
[आकृति १९ : फेफड़े]

बाहर निकल जाती है। फेफड़ों में शुद्ध बना हुआ रक्त चार फुप्फुस शिराओं के द्वारा बायें कर्णक में आता है और रुधिराभिसरण का एक चक्र पूरा होता है। इस प्रकार फुप्फुसमार्गीय अभिसरण में रक्त हृदय में से फेफड़ों में जाकर पुनः हृदय में लौट आता हैं। फेफडों के रक्त में ऑक्सिजन मिलता है और रक्त का शुद्धीकरण होता है।

(२) **शारीरिक अभिसरण :** आकृति में बताये अनुसार बायें क्षेपक में से शुद्ध रक्त महाधमनी के द्वारा शरीर के तमाम अवयवों में पहुँचता है।

महाधमनी की प्रथम दो शाखाएँ हृदय के स्नायुओं को शुद्ध रक्त पहुँचाती हैं। इन शाखाओं को 'कोरोनरी धमनी' कहा जाता है। आगे जाकर महाधमनी में से निकलनेवाली शाखाएँ सिर के अवयवों, हाथ, पाचनतंत्र के अवयव, मूत्रपिण्ड, पैर आदि अंगों को शुद्ध रक्त पहुँचाती हैं।

धमनियों में से शाखाएँ निकलते–निकलते अन्त में उनमें से एक ही परतवाली केशवाहिनियाँ बनती हैं। केशवाहिनियों में से शरीर की पेशीजाल को पोषकतत्त्व और प्राणवायु मिलते हैं। रक्त में रहे हुए

[आकृति २० : रुधिराभिसरण]
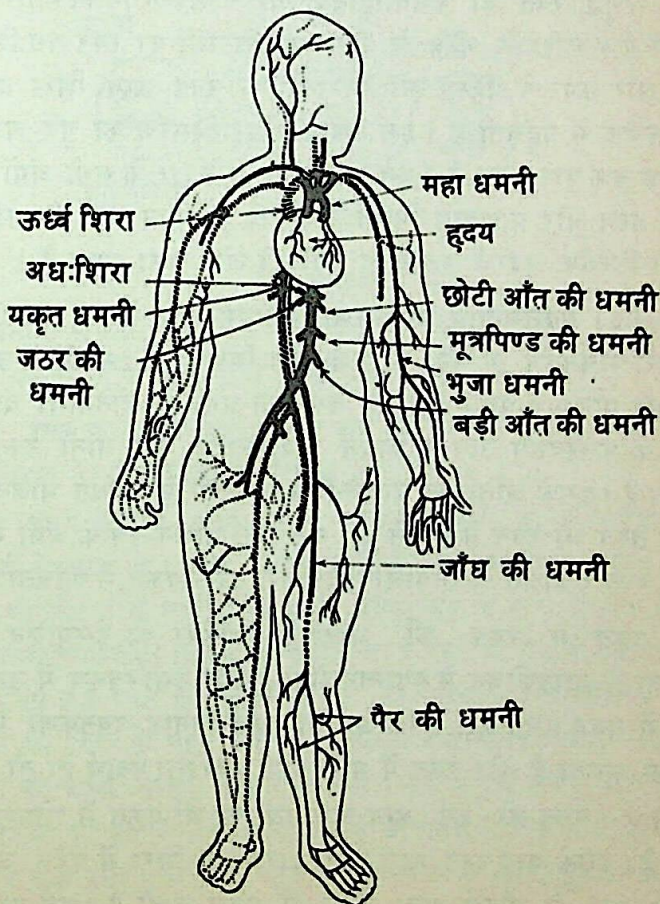
आहार के तत्त्वों का पेशीकोषों में दहन होने से उत्पन्न कार्बन डायॉक्साइड और अन्य पदार्थ पुनः केशवाहिनी के रक्त में मिलकर उसे अशुद्ध बनाते हैं।

अशुद्ध रक्त की केशवाहिनियाँ या केशिकाएँ मिलकर शिराएँ बनाती हैं। शरीर के नीचे के हिस्से की शिराओं का रक्त अधःशिरा द्वारा और ऊपर के हिस्से की शिराओं का रक्त ऊर्ध्व शिरा द्वारा दायें कर्णक में पहुँचता है। इस प्रकार रुधिराभिसरण का पूरे शरीर का एक चक्र पूरा होता है। इस अभिसरण से शरीर के सभी अंगों को पोषक तत्त्व और प्राणवायु मिलते हैं। साथ ही दहन और घिसाई से उत्पन्न निरर्थक पदार्थ उत्सर्ग के अंगों की ओर चला जाता है।

(३) **यकृतमार्गीय अभिसरण :** महाधमनी में से कुछ शाखाओं के द्वारा पाचनतंत्र के अंगों को शुद्ध रक्त मिलता है। उसमें से उक्त अंगों को प्राणवायु प्राप्त होती है तथा इन अंगों में होनेवाली दहन-क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न कार्बन डायॉक्साइड और पानी रक्त में मिलता है। इसके अतिरिक्त पाचन-क्रिया के अंगों में शोषित भोजन के पोषक तत्त्व भी रक्त में मिलते हैं। यह रक्त पाचन-तंत्र के अंगों में से अशुद्ध रक्त एकत्रित करनेवाली उदरशिरा द्वारा यकृत में पहुँचता है।

यकृत में रक्त की अतिरिक्त शर्करा का इन्स्युलिन की सहायता से ग्लाइकोजन में रूपान्तर होता है और उसी स्वरूप में उसका यकृत में संग्रह होता है। इसके अलावा यकृत विनष्ट रक्तकणों में से पित्तरस बनाता है और रक्त में यदि कोई जहरीला पदार्थ हो तो उसे रोकता है। रक्त की कई अन्य अशुद्धियों का भी-यकृत में शोषण हो जाता है। इसके बाद रक्त यकृत-शिरा द्वारा अधःशिरा में पहुँच जाता है और ,वहाँ से होकर पुनः हृदय में पहुँच जाता है। इस प्रकार
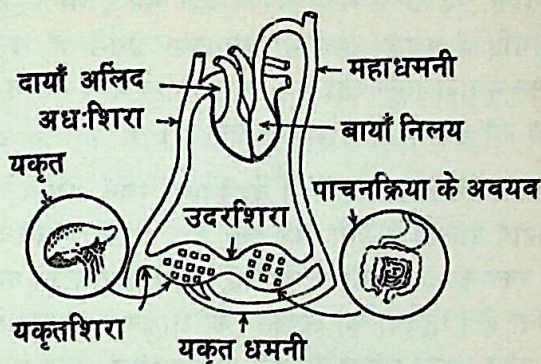
[आकृति २१]

यकृतमार्ग से रुधिराभिसरण का एक चक्र पूरा होता है। इसलिए इसे 'यकृतमार्गीय अभिसरण' कहा जाता है।

रक्त का शुद्धीकरण : रक्त का शुद्धीकरण मुख्यतः फेफड़ों में, मूत्रपिण्डों में और चमड़ी में होता है।

हृदय के दायें क्षेपक में से फुप्फुस धमनी द्वारा अशुद्ध रक्त फेफड़ों में आता है। रक्त के रक्तकणों में ग्लोबिन नामक पदार्थ होता है। वह फेफड़ों में आई हुई हवा के ऑक्सीजन के साथ संयुक्त होकर ऑक्सिहिमोग्लोबिन नामक चमकदार लाल रंग का पदार्थ बनाता है। इसीलिए शुद्ध रक्त तेजस्वी लाल रंग का बनता है। ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्रिया के साथ रक्त में से कार्बन डायॉक्साइड तथा अतिरिक्त पानी की बाष्प बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार फेफड़ों में रक्त की अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं और रक्त में ऑक्सीजन मिल जाता है। इस प्रकार शुद्ध बना हुआ रक्त चार फुप्फुस शिराओं द्वारा हृदय के बायें कर्णक में पहुँचता है।

रक्त के शुद्धीकरण में मूत्रपिण्ड और चमड़ी भी महत्त्वपूर्ण योग देते हैं। मूत्रपिण्ड अशुद्ध रक्त को छानकर उसमें से उत्सर्ग योग्य पदार्थोंवाला मूत्र अलग करता है। चमड़ी रक्त में से पसीने को अलग करके रक्त को कुछ अंशों में शुद्ध करती है।

रक्त का दबाव : धमनी में वहनेवाला रक्त धमनी की दीवार पर जो दवाव डालता है उसी को रक्त का दवाव (रक्तचाप) कहा जाता है। रक्त का दवाव मापने के लिए स्फिग्मोमेनोमीटर नामक साधन प्रयुक्त होता है। हृदय के क्षेपकों के आकुंचन-प्रसरण के अनुसार धमनी में रक्त बढ़ता-घटता रहता है। तदनुसार रक्तचाप भी कम-ज्यादा होता रहता है। इस प्रकार रक्त का दवाव दो प्रकार का होता है : (१) आकुंचन दवाव और (२) प्रसरण दवाव।

आकुंचन (सिस्टोलिक) दबाव : क्षेपकों के सिकुड़ने से धमनी की दीवार पर पड़नेवाले रक्त के दवाव को 'आकुंचन दबाव' कहा जाता है। इस क्रिया में धमनी के भीतर अतिरिक्त रक्त आता है। इसलिए रक्त के दवाव में वृद्धि होती है। आकुंचन दवाव स्वस्थ युवा व्यक्ति में लगभग १२० मि.मी. होता है।

प्रसरण (डायस्टोलिक) दबाव : क्षेपक के प्रसरण के समय धमनी की दीवार पर पड़नेवाले रक्त के दवाव को 'प्रसरण दबाव' कहा जाता है। स्वस्थ युवा व्यक्ति में यह दवाव ८० मि. मी. होता है।

सामान्यत: उम्र बढ़ने के साथ धमनी की दीवारें मोटी और सख्त होती जाती हैं; फलस्वरूप रक्त का दबाव बढ़ता जाता है। धमनी मोटी और सख्त बनती जाती है तव उसके भीतर का व्यास कम हो जाता है। इस प्रकार की धमनी स्थितिस्थापक न होने के कारण

उसमें पर्याप्त रक्त पहुँचाने के लिए हृदय को अधिक दबाव डालना पड़ता है। इसे उच्च रक्त चाप (High blood pressure) कहते हैं।

उच्च रक्तचाप एक प्रकार का रोग है। यह रोग अत्यधिक शारीरिक या मानसिक श्रम, चिन्ता या क्रोध करने से होता है। सरदर्द होना, नींद न आना, बेचैनी होना आदि इस रोग के चिह्न हैं।

हृदय की कमजोरी के कारण यदि रक्त का दबाव नीचा (Low blood pressure) हो, तो हृदय से दूर तथा ऊपर की ओर स्थित अंगों को पर्याप्त रक्त नहीं पहुँच पाता। इससे रोगी को चक्कर आते हैं और कभी-कभी तो वह बेहोश हो जाता है।

धमनियों का कठिनीकरण (एथिरोस्क्लेरोसिस) : कुछ व्यक्तियों की आयु बढ़ने के साथ धमनियों की दीवार पर चर्बी जम जाती है। इससे वे लगातार सिकुड़कर सँकरी हो जाती हैं और अपनी स्थिति-स्थापकता खो देती है। इसे 'धमनियों का कठिनीकरण' कहा जाता है। इस रोग में धमनी की दीवार मोटी हो जाती है, जिससे धमनी के सँकरी बन जाने से उनमें से रक्त बहुत ही कम मात्रा में प्रवाहित हो पाता है और रक्त का दबाव बढ़ता है। इसलिए कभी-कभी हृदय के स्नायुओं को पर्याप्त प्रमाण में शुद्ध रक्त नहीं मिल पाता। फलस्वरूप हृदय में दर्द होने लगता है। इस हृदय-रोग को 'कोरोनरी थ्रोम्बोसिस' कहा जाता है।

हृदय-रोग क्यों होता है ? :

हृदय-रोग के प्रमुख कारण ये हैं : (१) मेद-रोग (२) मधु-प्रमेह, (३) उच्च रक्त चाप, (४) वात-व्याधि, (५) भावनाओं या संवेदनाओं का अतिरेक, (६) पाचन-तंत्र की अशक्ति, (७) लगा-तार प्रतिकूल भोजन करते रहना, (८) फेफड़ों की विकृति, (९) हृदय-

गत या जन्मजात खामी, (१०) हृदय में नासूर का रोग, (११) रोग-शामक या पीड़ानाशक दवाओं का बेधड़क सेवन और, (१२) शारीरिक विष के द्वारा रक्त को विषाक्त बनाना।

हृदय की समीपवर्ती धमनियों में विजातीय द्रव्य की गाँठों (कॉलेस्टरोल) की मात्रा वढ़ जाने से रक्त की गति में अवरोध उत्पन्न होता है। विजातीय द्रव्य की इन गठानों से हृदय की गति अवरुद्ध होने पर रक्ताभिसरण की क्रिया में संकट खड़ा होता है। रक्ताभिसरण में अवरोध होने से हृदय तथा समूचा शरीर-तंत्र आकुल-व्याकुल हो जाता है। इसे वैदकशास्त्र में 'कॉरोनरी थ्रोम्बोसिस' कहते हैं। सामान्यत: इसे हम 'रक्तकणों के सघन होने का रोग' कहते हैं। इस प्रकार कॉलेस्टरोल के कारण शरीर में रक्त का परिभ्रमण अनियमित हो जाता है, हृदय पर काम का बोझ वढ़ जाता है और हृदय-रोग का हमला होता है।

आयु बढ़ने के साथ धमनियों और शिराओं (मुख्य नसें) में एक प्रकार का 'विजातीय द्रव्य' एकत्रित होता है और अतिरिक्त परत की तरह नसों में चिपक जाता है। इससे नसें कड़ी (Fragile) हो जाती हैं और रुधिराभिसरण की क्रिया में अवरोध रूप बनती हैं तथा नसों की कार्यक्षमता में कमी आती है। यदि उक्त द्रव्य को नसों में एकत्रित होने से न रोका जाय तो वह निरंतर बढ़ता रहता है और अन्त में हृदय-रोग का आक्रमण लाने में सहायक वनता है।

हृदय और फेफड़े अच्छे पड़ोसी हैं। दोनों एक-दूसरे के सुख-दु:ख में सहभागी बनते हैं। हृदय उल्लास से झूम उठता है तो फेफड़े भी फूल जाते हैं। बच्चों की साँस चलना, खाँसी, दमा आदि फेफड़ों की बीमारियों के कारण फेफड़ों की रक्तवाहिनियाँ शिथिल और संकुचित

हो जाती हैं। अतः हृदय को अधिक बलपूर्वक फेफड़ों में रक्त पहुँचाना पड़ता है। इससे दायें क्षेपक का खाना चौड़ा हो जाता है और रक्त-शुद्धि के कार्य में विक्षेप पड़ता है। शरीर को प्राणवायु की कमी भुगतनी पड़ती है। इसलिए हृदय के स्वास्थ्य के लिए हमें अपने फेफड़ों के स्वास्थ्य का पूरा ख्याल रखना चाहिए। निरन्तर धूम्रपान करनेवाले, शीतल पेय पीनेवाले, चटपटे मसालेदार खाद्य पदार्थ खानेवाले, सर्दी-जुकाम के पोषक तथा कुलफी-मलाई-मक्खन के शौकीन अपने ही फेफड़ों के परोक्ष दुश्मन हैं। याद रखिए, यदि आप फेफड़ों को बरबाद करेंगे तो उसका पड़ोसी हृदय आपकी जान ले लेगा।

कमजोर हृदय अर्थात् शिथिल रक्त-परिभ्रमण और शिथिल रक्त-परिभ्रमण अर्थात् कमजोर पाचनतंत्र। कमजोर पाचनतंत्र का मतलब है उसमें खाद्यान्न की सड़न, वायु, कब्जियत और अजीर्ण की संभावना में वृद्धि। यह संभावना जितनी बढ़ेगी उतनी हृदय-रोग की तीव्रता भी बढ़ेगी।

कमजोर यकृत हृदय की कार्यवाही में विकृति उत्पन्न करता है जिसकी हृदय-रोग में परिणति होती है। यकृत के अस्वस्थ होने पर, रक्त-शुद्धि की क्रिया में भी विकृति उत्पन्न होती है और रक्त अच्छी तरह शुद्ध नहीं हो पाता। रक्त में कॉलेस्टरोल की गाँठें बढ़ने से रुधिराभिसरण की क्रिया अनियमित हो जाती है और हृदय-रोग का आरम्भ होता है।

मुँह द्वारा साँस लेने की गलत आदत के कारण हवा के जीवाणु फेफड़ों में प्रवेश करते हैं, जिससे रक्त में अशुद्धियाँ और विकृतियाँ उत्पन्न होने लगती हैं जिसकी अन्तिम परिणति हृदय-रोग में होती है।

अव हम, हृदयरोग के विशेषज्ञ डॉक्टरों का इस विषय में क्या मन्तव्य है, देखने का प्रयत्न करेंगे––

हृदय-रोग के निष्णात डॉक्टर ज्हॉन फ्रेंच ने अनुसन्धानों के पश्चात् घोषित किया है कि "धूम्रपान का त्याग करने से, शरीर की स्थूलता कम करने से, चिन्तामुक्त रहने से, निराशा छोड़ देने से, क्रोध न करने से और किसी प्रकार के दबाव में न रहने से हृदय-संवंधी रोग कम होते हैं।"

हृदय-रोग के निष्णात डॉक्टर फीडमन और रोजेन अपने अनुसन्धानों के अन्त में कहते हैं कि "निर्वल स्वभाव, लापरवाहीवाला रहन-सहन, लगातार धूम्रपान और मद्यपान – ये सारी बातें हृदय-रोग के लिए जिम्मेदार हैं। इसके उपरान्त उग्र स्वभाववाले, अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी, जल्दवाजी करनेवाले, किसी भी मूल्य पर काम सिद्ध करनेवाले, घड़ी के काँटों के इशारे पर विना सोचे-समझे व्यर्थ दौड़-धूप करनेवाले और चिड़चिड़े स्वभाववाले व्यक्तियों को हृदय-रोग का आक्रमण जल्दी से होता है।" इस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य का मुख्य आधार सन्तुलित् आहार, यथोचित श्रम या कसरत और स्वस्थ मन है।

हृदय-रोग से बचने के उपाय :

(१) रुधिराभिसरण में मन्दता या अवरोध आ जाने से हृदय-रोग होता है; इसलिए रुधिराभिसरण को गतिशील रखने के लिए कसरत, व्यायाम और स्नायु के हलनचलन की क्रियाएँ करना आवश्यक है। प्रत्येक को अपनी उम्र और शक्ति के अनुरूप कसरत करनी चाहिए। यदि आप जवान हैं तो भारी व्यायाम करें। प्रौढ़ावस्था में योगासन और मंदगति की दौड़, तैराकी और घुड़सवारी जैसी श्रम-युक्त कसरतें करें और जिन्होंने कभी कोई कसरत, व्यायाम या

योगासन किये ही न हों, वे प्रस्तुत पुस्तक में ही बताई हुई कसरतें करें और दूर-दूर खुले स्थान में प्रतिदिन तीन-चार मील की सैर करें।

(२) रक्ताभिसरण को गतिशील बनाए रखने के लिए मालिश और मसाज बड़े फलदायी सिद्ध हुए हैं। इससे हृदय और धमनियों को आवश्यक हलन-चलन की कसरत मिल जाती है। संकोच, विकास और दबाव का व्यायाम हृदय और धमनियों को प्राप्त होने से हृदय में स्फूर्ति और जोश वने रहते हैं। इससे वह रक्त के प्रवाह को ठेलने की कार्यवाही सुचारु रूप से करके संपूर्ण शरीर को पर्याप्त स्वास्थ्य प्रदान करता है। यदि प्रतिदिन संभव न हो तो सप्ताह में केवल दो दिन मालिश करने से भी अच्छा लाभ हो जाता है।

(३) हमेशा हल्का और सादा भोजन ग्रहण करें। ऊँची कॅलरी-वाला और चर्बीयुक्त आहार लेने से रक्त में 'कॉलेस्टरोल' (गाढ़े रजकण) की मात्रा बढ़ जाती है। फलस्वरूप रक्तपरिभ्रमण में अवरोध उत्पन्न होता है। अतः हृदय-रोग से वचने के लिए सादा और हल्का आहार ही लिया करें।

अवस्था, पाचन-शक्ति, शरीर का घिसाव और श्रम के प्रमाण में कॅलरी का हिसाब लगाकर भोजन लिया जाय तभी हृदय-रोग से वचा जा सकता है।

(४) स्थितप्रज्ञ बनें :

दिमाग को ठण्डा रखिए, मन को शान्त रखिए। दुनियाभर की सभी उपाधियों की जिम्मेदारी अपने सर पर उठाकर न घूमें। घर की व्यवस्था की जिम्मेदारी परिवार के सभी सदस्यों में बाँट दीजिए। चित्त को सदा प्रफुल्ल रखिए। हमेशा हँसमुख रहिए। सबके साथ हिलमिलकर आनन्दपूर्वक रहें।

सांसारिक प्रश्नों में सभी के अनुकूल बनकर रहें। यदि आप इस संसार में स्वस्थ, निरोगी और सुखशांतिमय जीवन जीना चाहते हों तो आप अपने विचारों को सबके अनुकूल परिवर्तित करें। अपने जीवन का दृष्टिकोण वदल डालें। सबकी अनुकूलता में अपनी अनुकूलता के दर्शन करें।

(५) ध्यानस्थ बनें :

ध्यान, धारणा और समाधि में बैठने की आदत डालें। ध्यानस्थ होने की आदत से मानसिक शांति और वृत्तियों की तृप्ति प्राप्त होती है। इससे आरोग्य को भारी लाभ होता है।

(६) व्यसन मुक्त रहें :

एक आरोग्य-निष्णात का कहना है कि तम्बाकू से हृदय पर वड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। तम्बाकू में रहा हुआ 'निकोटिन' नामक तत्त्व रक्त में मिलने से रक्त का दवाव बढ़ता है और रुधिराभिसरण की गति में विकृति उत्पन्न हो जाती है। धूम्रपान करनेवाले व्यक्ति की नाड़ी के स्पन्दन अनियमित और तेज होते हैं। इससे धीरे-धीरे शरीर में कमजोरी उत्पन्न होती है। यही नहीं शरीर के प्राणधारक अवयव अशक्त होकर अपनी कार्यक्षमता खो देते हैं और हृदय को क्षति पहुँचती है।

(७) प्रवृत्तिमय रहिए :

रोगमात्र से बचने के लिए लगातार प्रवृत्तिमय रहें। आप अपनी शक्ति के अनुसार कोई सेवा-कार्य खोज निकालिए। जैसे, लेखनकार्य, बच्चों को पढ़ाना, कशीदे और गूँथने-पिरोने का काम, कागज के फूल बनाना, चित्रकला या फिर अपने इष्टदेव या गायत्री मंत्र के लेखन

जैसी कोई प्रवृत्ति चुन लीजिए। अपने प्रिय शौक से सम्बन्धित विषय में व्यस्त रहकर निरंतर प्रवृत्तिशील जीवन व्यतीत करें।

हृदयरोग से बचने के लिए अमरीका के राष्ट्रपति श्री आइजन हावर का उदाहरण यहाँ उद्धृत करना समीचीन है। उनको अनेक बार दिल के दौरे पड़ चुके थे, किन्तु निरंतर देश-सेवा की उत्कण्ठा के कारण वे सर्वदा कार्य-व्यस्त रहा करते थे। नब्बे वर्ष की आयु तक हृदयरोग उनका बाल भी बाँका न कर सका था। वे हृदयरोगी होने पर भी अपनी कार्यव्यस्तता के कारण ही लम्बी आयु प्राप्त कर सके थे।

एक सन्त-वाणी है कि 'जैसा मन वैसा तन'। यदि आप हृदय-रोग के बारे में ही लगातार सोचते रहेंगे तो कभी रोगमुक्त न हो सकेंगे। मन में से रोग की ग्रन्थि हटा दीजिए और सच्चे स्थितप्रज्ञ बन जाइए। शरीर तो मन के द्वारा खींचा गया एक नक्शा है, स्वस्तिक है। इस स्वस्तिक में स्फूर्ति और आशा का गुलाबी रंग, आनन्द, तृप्ति और प्रसन्नता का लाल रंग और शान्ति का श्वेत रंग भर दीजिए। आपका जीवन-स्वस्तिक अलख के आले में ध्रुवतारे की तरह झिल-मिला उठेगा।

ठंडा और गर्म कटिस्नान :

रुधिराभिसरण में गति लाने के लिए, उसे गतिमान करने के लिए निम्नलिखित ठंडे गर्म स्थान का इलाज बड़ा अकसीर सिद्ध हुआ है। यह एक निर्दोष इलाज है।

स्नान के लिए दो बड़े टब लीजिए। एक में ठण्डा पानी और दूसरे में गर्म पानी भरें। एक मिनट गर्म पानी के टब में बैठें; फिर उसमें से उठकर एक मिनट ठण्डे पानी के टब में बैठें। ठण्डे-गर्म टब में क्रमशः

एक-एक मिनट बैठिए। इस प्रकार केवल पाँच बार कीजिए इसे बढ़ाकर १०-१० बार भी कर सकते हैं। यह क्रिया करते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखिए :

(१) अपनी शक्ति के अनुसार जितना सह्य हो उतना अधिक से अधिक ठण्डा और गर्म पानी लें।

(२) तौलिये से शरीर का घर्षण करते रहें।

(३) मालिश करने के बाद प्रयोग किया जाय तो अधिक अच्छा असर करेगा।

(४) पानी को गर्म रखने के लिए थोड़ा-थोड़ा गर्म पानी टव में मिलाते रहिए।

(५) अन्त में ठण्डे पानी के टब में से बाहर निकल कर शरीर को सूखे तौलिये से पौंछ कर कपड़े पहन लीजिए। इसके बाद गर्म कम्बल ओढ़कर सो जाइए। यदि ठंड अधिक लग रही हो तो कसरत करें और शरीर में उष्णता आने पर स्वस्थ होकर आराम के साथ सो जाएँ। पूरे शरीर को उत्साहपूर्ण रक्ताभिसरण मिलने से ताजगी और तन्दुरुस्ती में वृद्धि होती है। हृदयरोग और यकृत की बीमारियाँ इस क्रिया से धीरे-धीरे नियंत्रित होती हैं। जब तक यह इलाज चालू होगा तब तक हृदयरोग का उपद्रव नहीं होगा।

शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों प्रकार से परिपूर्ण सुयोग्य व्यक्तियों का रक्षण और पोषण परंपरागत प्राकृतिक नियम है। संसार में ऐसे व्यक्तियों के प्रति ही प्रेम एवं श्रद्धाभाव उत्पन्न होता है। ऐसे व्यक्ति ही संसार-संग्राम में विजयी होते हैं। तीनों प्रकार से स्वस्थ व्यक्ति ही भूपृष्ठ पर अति मनस् चेतना अवतरित करके एक अपूर्व अतिमानव जाति का आविर्भाव कर पृथ्वी को स्वर्ग में परिवर्तित करेंगे। आज हमें एक ऐसे नूतन मानव की आवश्यकता है जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों प्रकार से सुविकसित हो और जिसके साथ रहने से हमें शान्ति के सागर के समीप निवास करने का अनुभव हो।

२१. यकृत को कार्यक्षम रखना अत्यावश्यक है

यकृत शरीर का महत्त्वपूर्ण प्राणधारक अवयव है। यकृत पेट के कोटर में दाहिनी ओर, उदरपटल से सटकर स्थित है। वह सुँघनी के रंग का होता है। एक खड़ी दरार से वह दायें और बायें इस प्रकार दो भागों में बँटा हुआ है। बायें भाग की अपेक्षा दायाँ भाग लगभग छह गुना बड़ा होता है। दायाँ भाग मोटा और उभरा हुआ होता है, जबकि बायाँ भाग सँकरा होता है और उसके द्वारा जठर का कुछ हिस्सा ढँक जाता है। यकृत का ऊपरी हिस्सा बहिर्गोल होता है और नीचे का हिस्सा खुरदुरा होता है। यकृत के दो भागों के बीच, यकृत के नीचे की ओर पित्ताशय नामक बैंगन के आकार की एक थैली होती है
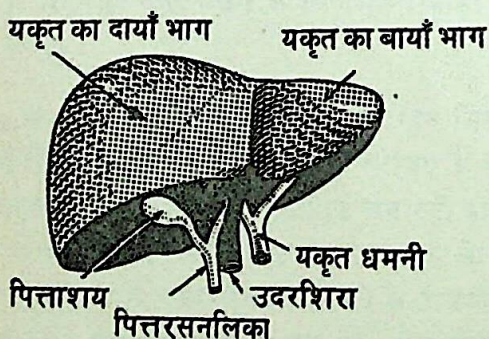
[आकृति २२]

यकृत की लम्बाई लगभग २० से.मी. और उसके चौड़े हिस्से की मोटाई १५ से. मी. होती है। उसका वजन लगभग १.४ से १.८ किलोग्राम होता है।

रचना : यकृत के नीचेवाली सतह की दरार में यकृत धमनी और उदरशिरा प्रविष्ट होती है तथा वहीं से यकृत नलिका बाहर आती है।

यकृत-धमनी अन्न-नलिका में से निकलती है और यकृत को शुद्ध रक्त पहुँचाती है।

उदरशिरा द्वारा जठर, स्वादुपिण्ड, प्लीहा और आँतों में से अशुद्ध रक्त यकृत में आता है। इस रक्त में भोजन में से शोषित अन्न-रस भी होता है।

यकृत में प्रवेश होने के बाद इन दोनों रक्तवाहिनियों की अनेक शाखाएँ बन जाती हैं और यकृत के कोषों के इर्द-गिर्द केशवाहिनियों का जाल बना देती हैं। ये कोष बहुकोण के आकार के होते हैं और पित्त-रस बनाते हैं। २४ घण्टों में दो-तीन गिलास पित्तरस बनता है।

यकृत-नलिका यकृत में उत्पन्न पित्तरस को पित्ताशय में ले जाती है। पित्ताशय यकृत के नीचे स्थित स्नायुओं की बनी एक लम्बी थैली है। उसका आकार बैंगन के जैसा होता है। उसमें पित्तरस का संग्रह होता है और आवश्यकता पड़ने पर वह पित्तरस नली द्वारा छोटी आँत के पक्वाशय विभाग में भी जाता है।

यकृत के कार्य निम्नलिखित हैं :

(१) यकृत के कोष रक्त के कुछ पदार्थों में से पित्तरस बनाते हैं, जो आहार को पचाने में उपयोगी होते हैं। नष्ट होनेवाले रक्तकणों का भी पित्तरस बनाने में खूब उपयोग होता है। पित्तरस बनाने की क्रिया निरंतर चलती रहती है। पाचन-क्रिया के लिए जब उसकी आवश्यकता नहीं होती तब पित्ताशय में उसका संग्रह होता है। पित्तरस में रहे हुए क्षार चर्बीयुक्त पदार्थों के पाचन और शोषण में सहायक होते हैं।

पित्तरस आहार को सड़ने से रोकता है, आँतों के स्नायु को संकुचन की प्रेरणा देता है और दस्त साफ लाता है।

(२) घाव हो जाने पर बहते हुए रक्त को जमने में यकृत सहायता करता है

(३) यकृत शरीर के पोषण में महत्त्वपूर्ण योग देता है। वह रक्त में प्रोत अल्ब्युमिन का उत्पादन करता है। दूसरे, यकृत शरीर के अंगों को उनकी आवश्यकतानुसार ग्लूकोज पहुँचाता है। छोटी आँत में शोषित ग्लूकोज शर्करा उदरशिरा द्वारा यकृत में आती है। उसमें से ग्लायकोजन बनाकर यकृत उसका संग्रह करता है। जब शरीर को उष्णता-शक्ति की आवश्यकता पड़ती है तब यकृत उक्त ग्लायकोजन को पुनः ग्लूकोज में रूपान्तरित करके उसे रक्त के माध्यम से शरीर के विविध अंगों में पहुँचाता है। वहाँ ग्लूकोज के दहन से उष्णता उत्पन्न होती है और आवश्यक शक्ति प्राप्त हो जाती है। तीसरे, यकृत चर्बी की भारी मात्रा में उथल-पुथल करता है। उसमें रही हुई चर्बी रूपान्तरित होकर शरीर के विभिन्न भागों में जाती है और वहाँ जमा होती है।

(४) यकृत हृदय के लिए रक्त का भण्डार है।

(५) यकृत अतिरिक्त लौह और ताम्र तत्त्व का संग्रह करता है।

(६) यकृत विटामिन 'ए' और विटामिन 'डी' से समृद्ध है। उसमें विटामिन 'बी' भी पर्याप्तमात्रा में है।

(७) शरीर के कोषों के घिस जाने पर उनमें रहे हुए कुछ नत्रल पदार्थ खिचकर यकृत में आ जाते हैं। यकृत उनसे यूरिक एसिड और यूरिया बनाता है जो चमड़ी और मूत्रपिण्डों की सहायता से शरीर के बाहर निकल जाते हैं।

(८) शरीर में रोग का विष उत्पन्न होने पर उसके प्रतिकार के लिए यकृत प्रतिविष उत्पन्न करता है।

(९) यकृत में कोई विषैला पदार्थ आ जाता है तो वहाँ उसका शोषण हो जाता है और पूरे शरीर में विष नहीं फैल पाता। वास्तव में यकृत में उत्पन्न होनेवाले कुछ द्रव्य विष के विरुद्ध रासायणिक प्रक्रिया करके विष के असर को विनष्ट कर देते हैं। इस प्रकार कुछ विषों का पूर्णतः विनाश होता है और कुछ विषों का यकृत में संग्रह होता है। संग्रहीत विष को वह शरीर की सहन-शक्ति के अनुसार धीरे धीरे शरीर में छोड़ता रहता है। किसी व्यक्ति की संदेहास्पद स्थिति में मौत हो जाने पर उसके शव-परीक्षण (Post-mortem) में यकृत की विशेष रूप से जाँच की जाती है।

शरीर के अधिकांश मुख्य प्राणधारक अवयव, जठर, आँतें, मूत्राशय, प्लीहा, रीढ़ के नीचे का भाग, पेन्क्रियास, मूत्राशय, मूत्रपिण्ड आदि यकृत के इर्द-गिर्द स्थित हैं। एकाध प्राणधारक अवयव के बीमार पड़ने पर तुरन्त उसका असर अन्य अवयवों पर भी पड़ता है। इसलिए यकृत के इर्द-गिर्द आये हुए कटिप्रदेश के अवयवों को कसरत-व्यायाम देना आवश्यक है। यकृत के मरीजों को निम्नलिखित प्रयोगों पर ध्यान केन्द्रित करने की विशेष आवश्यकता है।

(१) कटिप्रदेश के अवयवों की कार्य-शक्ति को विकसित करने के लिए कटि-स्नान करना चाहिए। ठंडे पानी से भरे टब में कटिप्रदेश को डुबोकर ठण्डे पानी का स्नान दें।

(२) भीगे तौलिये से कटिप्रदेश को भीगा घर्षण देना चाहिए, जिससे रुधिराभिसरण को गति मिलती है, अंगों की कार्यशक्ति का विकास होता है और उनमें स्फूर्ति का आविर्भाव होता है।

(३) स्नान के बाद सूखा घर्षण देना चाहिए अर्थात् कटिप्रदेश को सूखे तौलिये से जोर लगाकर रगड़ना चाहिए।

(४) प्रातःकाल में कटिप्रदेश के अवयव रिक्त होते हैं। उस समय अनुकूलता के अनुसार किसी भी तेल से पेट की हल्के हाथों से मालिश करें। यकृत के भाग को थपथपाकर उत्तेजित करें। पेट पर दोनों हथेलियों से घड़ी की सुइयों की दिशा में मालिश करें। पेडू और पेट पर, ऊपर-नीचे मालिश करें। इसके बाद हाथ की उँगलियों से यकृत के हिस्से को दबाव दीजिए।

(५) प्रस्तुत पुस्तक में निर्दिष्ट प्रमुख दस कसरतों में तीसरी कसरत विशेषतः यकृत के लिए ही है। सुबह-शाम दो बार यह कसरत अवश्य करें।

(६) घुड़सवारी करने से यकृत को व्यायाम मिलता है। ध्यान रहे, घोड़े की मद्धम रफ्तार से यकृत को कसरत मिलती है, तेज चाल से नहीं।

२२. कॅन्सर से बचिए

लन्दन के वी. बी. सी. रेडियो ने बताया है कि केवल इंग्लैण्ड में ही प्रतिवर्ष चालीस हजार लोग कॅन्सर के रोग से मरते हैं। ऐसे लोग सामान्यत: ५० से ७० वर्ष की आयु के होते हैं। मृत्यु के आंकड़ों में हृदय-रोग के बाद दूसरा नम्बर कॅन्सर का आता है। अमरीका की कॅन्सर सोसायटी द्वारा प्रकाशित आँकड़ों के अनुसार ५० से ७० वर्ष की आयुवाले प्रति आठ व्यक्तियों में एक कॅन्सर का मरीज होता है। इस प्रकार अमरीका में कॅन्सर का प्रमाण अधिक है। हमारे देश में भी कॅन्सर का प्रमाण दिनोंदिन बढता जा रहा है। यह रोग हर देश और हर जाति के लोगों में सर्वव्यापी है। लीगों में ऐसी मिथ्या ग्रंथि बन गई है कि 'कॅन्सर यानी कॅन्सल'। यदि कॅन्सर का आरंभ होते ही मरीज को उसका पता लग जाय और तुरन्त ही उसका समुचित इलाज शुरू कर दिया जाय तो निश्चय ही कॅन्सर मिट सकता है; यही नहीं, जीवन भर कॅन्सर न हो ऐसा आयोजन किया जा सकता है। आपको केवल कॅन्सर के प्रति जागृत रहना है। 'आग लगने के पहले कुआँ खोदना' अर्थात् कॅन्सर होने के पूर्व ही उसे फैलते हुए रोकने का विज्ञान समझ लेना आवश्यक हैं। सभी को इस रोग के चिह्नों से परिचित हो जाना चाहिए।

दूषित अंग कॅन्सर होने का मुख्य कारण है। किसी अंग के दूषित होने पर भी यदि उसपर लगातार घर्षण होता रहे तो कॅन्सर के कीटाणु वहाँ जम जाते हैं और एक गाँठ खड़ी कर देते हैं। यह गाँठ कॅन्सर के जंतुओं का किला है। इस किले में से कॅन्सर के जन्तुओं को बाहर निकालना मुश्किल बन जाता है। शल्य-क्रिया (ऑपरेशन) करने से इस गाँठ को

कदाचित् दूर किया जा सकता है, किन्तु कॅन्सर के रोग को निर्मूल नहीं किया जा सकता, क्योंकि आसपास में नई गाँठ निकल आती है।

श्रीमती गोदावरीबहन को जीभ पर कॅन्सर की गाँठ उभर आई थी। तीन बार ऑपरेशन करके गाँठ को निकाला गया, तथापि रोग प्राणघातक सिद्ध हुआ। गोदावरीबहन को कॅन्सर होने का कारण यह था कि वे हमेशा मुँह में सुपारी का टुकड़ा रखती थीं, जिससे जीभ के लगातार दूषित होते रहने के कारण कॅन्सर की गाँठ निकल आई थी। जीभ के दूषित होते ही गोदावरीबहन ने सुपारी चबाना छोड़कर तात्कालिक इलाज किया होता तो वे कॅन्सर से बच जातीं।

यह भयंकर रोग होने का मुख्य कारण दूषित अंग है। तम्बाकू, सिगरेट, बीड़ी, अधिक चूनेवाला पान आदि का उपयोग करते रहने से जीभ, होठ, गलफड़े आदि दूषित हो जाते हैं। जीभ पर छाले पड़े हों फिर भी यदि पान खाना जारी रखा जाय तो जीभ निरंतर दूषित रहती है और कॅन्सर की गाँठ उभर आती है; जो आखिरकार मौत का कारण बनती है। कइयों को होठ का कॅन्सर होता है। सिगरेट, बीड़ी, चूना या तम्बाकू खाने से होठ दूषित होते हैं, उनपर छाले पड़ जाते हैं। इसके बाद भी यदि तम्बाकू चूना, बीड़ी, सिगरेट आदि का व्यसन निरन्तर चालू रखा जाय तो कॅन्सर की गाँठ उभर आती है। इसके अलावा प्रोफेसरों, शिक्षकों, वकीलों, नेताओं अर्थात् गला फाड़कर बोलने के व्यवसाय से सम्बद्ध लोगों को गले का और विशेषत: स्वरपेटी का कॅन्सर होता है।

(१) पाकिस्तान के निर्माता मुहम्मदअली जिन्ना लगातार धूम्रपान करने और बोलने के कारण कॅन्सर के शिकार हुए थे।

(२) अहमदाबाद के उच्च न्यायालय के एक प्रौढ़ वकील और समाजवादी पक्ष के प्रसिद्ध राजनैतिक पुरुष श्री चन्द्रकान्त दरू निरंतर

धूम्रपान किया करते थे; इससे उनके मुँह के अंग दूषित हो गए। और उन्हें जीभ का कॅन्सर हो गया। भारत में अनेक उपायों की आजमाइश करने के बाद इलाज के लिए वे अमरीका गये। किन्तु सारे प्रयत्न निरर्थक सिद्ध हुए और अन्त में उनकी मृत्यु हो गई।

(३) कॅन्सर का एक कारण खुरदरे और टेढ़-मेढ़े दाँत हैं। नुकीले और टेढ़े-मेढ़े दाँतों के कारण खाना चबाते समय जीभ और गालों के भीतरी हिस्से में लगातार घर्षण होने के कारण अनेक बार छाले पड़ जातें हैं, अंग दूषित होते हैं। उस पर लगातार घर्षण होने से कॅन्सर की गाँठ उभर आती है। इसलिए टेढ़े-मेढ़े दाँतों को सीधा कराना आवश्यक है। दाँत की नोकों को दन्तचिकित्सक से घिसवा लीजिए, विकृत और टेढ़े-मेढ़े दाँत सीधे करा लीजिए और खुरदरे दाँतों से मुँह दूषित न हो पाए इसका विशेष ध्यान रखिए।

काश्मीर में अत्यधिक ठण्ड पड़ती है। गरीब लोग ठण्ड से बचने के लिए छाती पर कंगरी (सुलगते हुए कोयलोंवाली सिगड़ी) टाँगे रहते हैं, ताकि छाती की गर्मी मिलती रहे। यह सुलगती सिगड़ी छाती और पेट की चमड़ी को लगातार जलाती रहती है। इस प्रकार लगातार जलन का घर्षण होता रहता है और अन्त में कॅन्सर हो जाता है। अतः काश्मीर में गरीब वर्ग में छाती के कॅन्सरवाले रोगी अधिक दिखाई पड़ते हैं।

माता के स्तन के अग्रभाग (चूची) को बालक लगातार चूसता रहता है। बालक के दाँतों का घर्षण होने से स्तनाग्र भाग (Nipple) दूषित होता है और उस स्थान पर कॅन्सर होने की संभावना रहती है। कई कामुक पुरुष भी रतिक्रीड़ा के समय पत्नी के स्तनाग्रों को मुँह में

लेकर चूसते हैं और उन पर दाँतों का लगातार घर्षण करते हैं। इस प्रकार के निरंतर घर्षण से कॅन्सर होने की पूरी संभावना रहती है।

मूत्राशय या जठर में पथरी जम जाती है तब उस स्थान में लगातार घर्षण होने से कॅन्सर होता है।

निष्क्रिय जीवन के कारण अनपच अजीर्ण अथवा कब्जियत होती है और जठर तथा आँतों में मल भर जाता है। लम्बे समय तक इस प्रकार मल पड़े रहने से जठर और आँतों में गैस उत्पन्न होता है और छाले पड़ जाते हैं; जिससे आँतों या गुदा का कॅन्सर होता है।

श्री प्रवीणचन्द्र शाह की कपड़े की दुकान है। उन्हें दिनभर गाव-तकिये के सहारे बैठे रहना होता है। इसके अलावा उन्हें बार-बार चाय-नाश्ते की आदत भी है; इसीलिए वे वायु (गॅस) और कब्जियत की हमेशा शिकायत करते रहते हैं। पाचन-अवयव लगातार दबे हुए रहने के कारण उनकी पेशाब-पाखाने की हाजत भी मर जाती है। पाखाना तो अत्यंत अनियमितरूप से, और कई बार तो तीन-चार दिनों में एकाध बार होता है। अतः प्रवीणभाई को गुदा का कॅन्सर हुआ। डॉक्टर ने शस्त्रक्रिया करके उनका गुदाद्वार बन्द किया और मलविसर्जन के लिए नाभि के पास गुदा-मुख बनाया।

ऐसे निष्क्रिय जीवनवाले व्यापारियों को कॅन्सर के प्रति लगातार जागृत रहना चाहिए। उन्हें भूख लगने पर ही खाना चाहिए। बिल्कुल हल्का और चर्बीरहित आहार लेना चाहिए। दिन में नियमित दो बार पाखाने जाने की भी आदत डालनी चाहिए। प्रतिदिन हर्रे का चूर्ण फाँकना चाहिए और पैदल चलने की भी आदत डालनी चाहिए। प्रतिदिन सुबह-शाम पेट की कसरतें करनी चाहिए। ताकि पेट की तमाम तकलीफों से मुक्ति मिल सके और कॅन्सर जैसे भयंकर रोग से बचाव हो सके।

कॅन्सर के लक्षण

शरीर की सामान्य गाँठ सरकनेवाली और अलग-अलग होती है, जबकि कॅन्सर की गाँठ आसपास के स्नायुओं के साथ मजबूती से जकड़ी हुई रहती है। प्रारंभ में उस स्थान पर दर्द नहीं होता किन्तु एक लम्बे समय के वाद दर्द होने लगता है। गाँठ के स्थिर और सख्त होने पर तुरंत डॉक्टर से मिलकर उसका निदान करवाना चाहिए।

मुँह में छाले पड़ जायँ और वे ठीक न होते हों तो तुरन्त जल्द से जल्द उसका निदान करवाकर योग्य उपायों का आयोजन करें।

कॅन्सर का रोगी शीघ्रता से सूखने लगता है। उसका वजन भी शीघ्रता से कम होने लगता है। मेद, चर्बी का कम होना, भीतर ही भीतर बेचैनी महसूस होना, खुराक की मात्रा कम हो जाना, आवाज बैंठ जाना, शक्ति-स्फूर्ति का अदृश्य हो जाना, काम में दिल न लगना इन सब चिह्नों का अनुभव होते ही डॉक्टर से मिलकर फौरन निदान करवाना चाहिए।

कॅन्सर के विशेष चिह्न

कॅन्सर हुआ है या उसका प्रारंभ हो रहा है, इसकी जानकारी यदि समय पर हो जाए तो रोगी को बचाया जा सकता है। इस हेतु से कॅन्सर सोसायटियों की ओर से विभिन्न स्थानों पर विज्ञापन लगाए जाते हैं। इसी प्रकार का एक विज्ञापन बम्बई की बेस्ट कम्पनी की बसों पर लगाया गया है :

(१) मुंह में व्रण पड़ गया हो और उसमें आराम न आ रहा हो, (२) स्त्रियों को वार-वार रक्त-स्राव होता हो, (३) आहार गले में अटक जाता हो, (४) पेशाव-पाखाने की हाजत में परिवर्तन महसूस हो या कब्जियत की शिकायत हो, (५) आवाज मोटी हो गई या खाँसी

हो गई हो, (६) शरीर के किसी भी हिस्से में खास करके स्तन और गले में गाँठ दिखाई दे,. . . . (७) तिल या मस्से में, विशेषतः उनके चिह्नों में परिवर्तन दिखाई दे (पककर पीव हो जाय)।

ऊपर बताये हुए चिह्नों में से कोई भी चिह्न दिखाई दे तो तुरंत ही अपने डॉक्टर की सलाह लेकर उपचार शुरू कर दीजिए।

कॅन्सर के रोग की जानकारी जितनी देर से होगी उतनी ही अधिक हानि होती है। कॅन्सर प्राथमिक अवस्था में हो तो कॅन्सर के स्थान पर पीड़ा महसूस नहीं होती। इसलिए रोगी को रोग का ख्याल नहीं आता। उपर्युक्त चिह्नों के आधार पर रोगी अपने रोग को जल्दी से पहचान ले तो कॅन्सर को फैलने से रोका जा सकता है। पचास से सत्तर वर्ष की आयुवाले व्यक्तियों को इस रोग के चिह्नों से विशेष सतर्क रहना चाहिए।

संक्षेप में, कॅन्सर अधिकांशतः व्यक्ति की विकृत आदतों और गलत रहन-सहन का ही दुष्परिणाम है। आरोग्य-रक्षा के प्रति हमारी उदासीनता और लापरवाही भी कॅन्सर के मुख्य कारण हैं।

इसके लिए समय-समय पर, कम-से-कम वर्ष में एकाध वार कॅन्सरविषयक शारीरिक परीक्षण कराते रहना चाहिए।

कॅन्सर संक्रामक नहीं है

कुछ रोग संक्रामक होते हैं। स्पर्शमात्र से या हवा के द्वारा दूसरे को लागू पड़ जाते हैं। मरीज को छूनेवाले या उसकी सेवा-सुश्रूषा करनेवाले व्यक्ति को भी ये रोग लागू पड़ जाते हैं। कॅन्सर ऐसा रोग नहीं है। इसलिए कॅन्सर के मरीज की खूब परिचर्या करें।

कॅन्सर व्यापक रूप में फैलनेवाला रोग भी नहीं है। कालरा या हैजा, इन्फ्लूएँजा, चेचक या बड़ी माता जैसा वायरस रोग नहीं है। कॅन्सर वंशानुगत रोग भी नहीं है।

२३. मधुप्रमेह से बचें

मधुप्रमेह सामान्यतः सुसंस्कृत और समृद्ध मनुष्यों में पाया जाने-वाला रोग है। यह रोग किसी भी उम्र में बिना सूचना दिये ही आ पहुँचता है। यदि समय पर इसका योग्य इलाज करके इसकी रोकथाम न की जाय तो क्रमशः यह जोर पकड़ता जाता है। इस रोग की विचित्रता यह है कि एक बार लागू हो जाने पर मरते दम तक आदमी को इसका इलाज कराना पड़ता है; क्योंकि यह रोग कभी पूर्णतः निर्मूल नहीं होता। हाँ, उसे नियंत्रण में अवश्य रखा जा सकता है। ३५०० से भी अधिक वर्षों पूर्व लिखे गये वैदक-शास्त्र के ग्रंथों में इस रोग से सम्बन्धित काफी विवरण प्राप्त होता है। चरक-संहिता (६०० वर्ष ई. पू.) और सुश्रुत–संहिता (४०० वर्ष ई. पू.) में मधुप्रमेह का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस रोग में रोगी की पेशाब के साथ शर्करा निकल जाती है, इसलिए इसे मीठी पेशाब का रोग भी कहा जाता है। आयु-र्वेद में बीस प्रकार के मधुप्रमेह का वर्णन है। इस महारोग को आधुनिक चिकित्सा-पद्धति से उग्र स्वरूप धारण करने से रोका जा सकता है। फिर भी इसके दूरगामी प्रभाव कम भयानक नहीं हैं। इसलिए स्वास्थ्य की सुरक्षा और दीर्घायु के लिए इस रोग की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

मधुप्रमेह क्या है ?

हम जो भोजन करते हैं उसका पाचन अन्नमार्ग के विविध हिस्सों में होता है। भोजन में स्थित काँजीयुक्त पदार्थ (कार्बोदित पदार्थ), शक्कर, दूध और फलों की शर्करा आदि का पाचन होकर उनका सरल

और शोष्य शर्कराओं (ग्लूकोज, फ्रुक्टोज आदि) में रूपान्तर होता है। आँतों की दीवारों में इनका शोषण होने के बाद रक्त में मिश्रण हो जाता है। यह रक्त सीधे यकृत में जाता है। वहाँ आवश्यकता से अधिक शर्करा यकृत के कोषों में शोषित होकर ग्लायकोजन नामक अद्राव्य कार्बोदित पदार्थ में परिवर्तित और संग्रहीत होती है। इससे रक्त में प्रवाहित होनेवाली शर्करा की मात्रा लगभग एक-सी बनी रहती है। यकृत में शोषित शर्करा को ग्लायकोजन में परिवर्तित करने में रक्त के अंदर विद्यमान इन्स्युलिन का महत्त्वपूर्ण योग है। यदि इस इन्स्युलिन का उचित प्रमाण न बना रहे तो रक्त में शर्करा का प्रमाण बढ़ जाता है। मूत्रपिण्ड (Kidneys) में से रक्त छन कर मूत्र अलग हो जाता है। यह क्रिया शरीर में निरंतर चलती रहती है। उसमें शर्करा का प्रमाण मूत्रपिण्ड की क्षमता से अधिक हो तो अतिरिक्त शर्करा मूत्र के साथ बाहर निकल आती है। कुछ मरीजों के रक्त में शर्करा की मात्रा सामान्य स्तर पर होने पर भी मूत्र के साथ शर्करा बाहर निकलती है; जबकि कई मरीजों की शर्करा मूत्र के साथ बाहर नहीं निकलती, फिर भी उनके रक्त में शर्करा की मात्रा सामान्य से बहुत अधिक होती है।

उदर-गुहा में स्थित जठर के नीचे छोटी आँत के प्रथम मोड़ में स्वादुपिण्ड (Pancreas) नामक एक बड़ी ग्रन्थि होती है, जिसमें पोली और अत्यंत छोटी द्राक्ष के गुच्छे जैसी असंख्य थैलियाँ होती हैं। इन थैलियों की दीवार के कोष पाचकरस (स्वादु-रस) का स्राव करते हैं। जठर से आँतों में आये हुए अधपचे प्रवाही आहार के विविध तत्त्वों का पाचन करनेवाले आवश्यक द्रव्य इस स्राव में होते हैं। इन स्रावी गुच्छों के बीच-बीच में कोषों के ठोस समुदाय होते हैं; ये लेंगर-हान्स के द्वीप (Islets of Langerhans) कहलाते हैं। इस द्वीप

के कोष चारों ओर असंख्य सूक्ष्म रुधिर-केशिकाओं से घिरे होते हैं। इन कोषों में से जो कार्यात्मक दृष्टि से B–कोष के रूप में पहचाने जाते हैं, उनमें से इन्स्यूलिन (Insulin) नामक स्राव सीधे ही रक्त में मिल जाता है। इस प्रकार किसी भी नलिका द्वारा बहकर आगे बढ़ने के स्थान पर कोषों में से सीधे ही रक्त में मिल जानेवाले स्राव को अन्तः-स्राव (Hormone) कहा जाता है। यह अन्तःस्राव (इन्स्यूलिन) रक्त के माध्यम से यकृत में पहुँचता है और रक्त में से यकृत में शोषित अतिरिक्त शर्करा को ग्लायकोजन में रूपांतरित करता है। इस प्रकार यह अन्तःस्राव रक्त में शर्करा की मात्रा कम करके उसे योग्य स्तर पर बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण योग देता है। वंशानुगत जनीनिक* त्रुटि के कारण अमुक उम्र में इन्स्यूलिन के स्राव की योग्य मात्रा बनी नहीं रहती अर्थात् मात्रा में कमी होने से रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। सामान्यतः शर्करा की मात्रा प्रति १०० मि. ली. रक्त में ८० से १२० मि. ग्रा. होनी चाहिए। भोजन के एक घण्टे बाद यह मात्रा बढ़कर १७० मि. ग्रा. तक और फिर एक घण्टा और बीतने के बाद घटकर पुनः १३० मि. ग्रा. से कम हो जानी चाहिए। शर्करा की मात्रा १८० मि. ग्रा. से अधिक हो जाने पर मूत्रपिण्ड इस वृद्धि को सहन नहीं कर पाते। फलस्वरूप अतिरिक्त शर्करा मूत्र के साथ बाहर

---

* जनीनिक : जनीन सम्बन्धी, शरीर के प्रत्येक कोष में एक कोष-केन्द्र होता है। कोषकेन्द्र में रंगसूत्रों (Chromosomes) के २३ युग्म होते हैं। प्रत्येक रंगसूत्र पर एक ही खड़ी पंक्ति में जमे हुए असंख्य जनीन (genes) होते हैं। इन जनीनों की रासायणिक रचना और उनकी विविधता के कारण विविध शारीरिक लक्षण उत्पन्न होते हैं। संतानों को ये जनीन विरासत में मिलते हैं।

निकल जाती है । इस रोग का सर्वप्रथम वर्णन १७७५ ई. में एक अंग्रेज डाक्टर विलिस ने "पेशाब में शहद जैसा पदार्थ" के रूप में किया था । सन् १७७५ ई. में डॉ. डॉबसन ने रक्त में शर्करा की बढ़ी हुई मात्रा और पेशाब के साथ निकलनेवाली शर्करा का निदर्शन किया । इस प्रकार चिकित्सा-विज्ञान के निरंतर बढ़ते हुए अनुसन्धानों ने चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता में वर्णित इस रोग के लक्षणों और चिकित्सा-विधि का समर्थन किया, साथ ही आयुर्वेद का भी वैज्ञानिक समर्थन किया ।

स्वादुपिण्ड के लेंगरहान्स द्वीप के अलावा गले के अगले हिस्से में स्वरपेटी को आगे से घेरनेवाली थाइरोइड नामक ग्रंथि की अत्यधिक सक्रियता भी मधुप्रमेह के लिए जिम्मेदार हो सकती है । मस्तिष्क के निम्न भाग में स्थित पिच्युटरी ग्रंथि और मूत्रपिण्ड के ऊपर स्थित एड्रिनल ग्रंथि भी कार्बोदित पदार्थों के चयापचय की क्रियाओं को नियंत्रित करती है, साथ ही जननांगों के अंतःस्रावी कोषों का स्राव भी परोक्षरूप में मधुप्रमेह से सम्बद्ध है ।

मधुप्रमेह के लक्षण : (१) रोगी को बारबार पेशाब की हाजत होती है, (२) भूख ज्यादा लगती है, (३) मुँह सूखने से प्यास अधिक लगती है, (४) अकारण ही शारीरिक या मानसिक थकान महसूस होती रहती है, (५) अशक्ति का अनुभव होता है और बदन टूटता रहता है, (६) वजन कम हो जाता है, (७) जननांगों के बाहरी विस्तार में खुजली होती है और सूजन आती है, (८) दृष्टि-कार्य में तकलीफ होती है और बार-बार चश्मे के नम्बर बदलते रहते हैं, (९) घाव होने पर या फोडा-फुन्सी होने पर जल्दी आराम नहीं आता, (१०) जहाँ पेशाब की हो वहाँ शक्कर जमने के कारण चींटी-चींटों का आनाजाना विशेष होता है, (११) हाथ-पैर की उँगलियों में पीड़ा रहती है या उनकी संवेदनशीलता में कमी आ जाती है ।

यह रोग प्रायः वयस्क होने पर और विशेषतः ३५ वर्ष की उम्र के बाद होने की संभावना विशेष रहती है। क्वचित् बचपन में भी डायाविटीस (मधुप्रमेह) होने के अनेक उदाहरण देखने में आते हैं। इस रोग का उद्भव त्रुटियुक्त जनीन के कारण होता है, अतः यह वंशानुगत है। माता, पिता, दादा, दादी, नाना, नानी, चाचा, मामा फूफी या मौसी को मधुप्रमेह हुआ हो तो हमें यह रोग होने की संभावना अधिक रहती है। कभी ऐसा भी होता है कि रोग की प्रारंभिक अवस्था में उपर्युक्त लक्षण न दिखाई दें, फिर भी रोग लागू पड़ गया हो ऐसी संभावना रहती है और जब तक लक्षण पूर्णतया स्पष्ट रूप में दिखाई देते हैं, तब तक तो रोग बहुत कुछ बढ़ चुका होता है।

मधुप्रमेह के कारण उत्पन्न होनेवाली शारीरिक समस्याएँ : यदि मधुप्रमेह को नियमित उपचार के द्वारा नियंत्रित न किया जाय तो उसकी उग्रता क्रमशः बढ़ती है और क्वचित् रोगी डायाविटिक्कॉमा (मधुप्रमेहीमूर्च्छा) में प्रविष्ट हो जाता है। यह स्थिति मरीज को निश्चय ही मौत के मुँह में धकेल देती है। उग्र मधुप्रमेह के दीर्घकाल तक रहने पर निम्नलिखित शारीरिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं: (१) दृष्टि–विक्षेप की अन्धेपन में परिणति। (२) गर्मी, ठण्डी, कंप, स्पर्श आदि संवेदनाओं की अनुभूति होने की क्षमता में विक्षेप। पैरों में (विशेषतः रात के समय) न्यूराल्जिक (ज्ञानतन्तु सम्बन्धी) पीड़ा। (३) मूत्रपिण्ड की कार्यशीलता में अवरोध। (४) हृदय-रोग। (५) उच्च रक्त चाप। (६) हाथ-पैर की संवेदनाग्राही शक्ति का नाश (अंगमृत्यु या गेंग्रीन)। (७) गर्भपात, असमय गर्भस्राव या मृत शिशु-जन्म (still birth)।

यदि समय पर नियमित उपचार किया जाय तथा जीवन-पद्धति में निश्चित प्रकार के (आहार, विहार, व्यायाम आदि से सम्बन्धित) सुनिश्चित परिवर्तन अपना लिये जायँ और उनका चुस्ती के साथ पालन किया जाय तो मधुप्रमेह से उत्पन्न गंभीर शारीरिक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है।

मधुप्रमेह के कारण : मधुप्रमेह के किसी एकमात्र कारण की जानकारी अबतक तो नहीं मिल पाई है। इस रोग के अनेक मरीजों के सर्वांगी इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन हमें यह मानने के लिए प्रेरित करता है कि यह रोग अनेक कारणों के परिणाम के रूप में उत्पन्न होता है। हमारे माता-पिता का शरीर-निर्माण करनेवाले कोषों में उनके माता-पिता के जनीनों का संचरण होता है और इसी प्रकार हमारे माता-पिता की जनीनिक विरासत हमारे कोषों में आती है। मधुप्रमेह से सम्बन्धित जनीन प्रच्छन्न या अधीन (Recessive) प्रकार का होने से यदि माता-पिता मधुप्रमेह से पीड़ित हो तो उनके बच्चों को यह रोग होने की संभावना विशेष रहती है। कदाचित् ऐसे माता-पिता के बच्चे इस रोग के शिकार न भी हों तो भी वे अपनी अगली पीढ़ी के लिए रोग के वाहक तो अवश्य बन जाते हैं। कोई व्यक्ति डायाबिटिक भले ही न हो, किन्तु वह इस रोग का वाहक है या नहीं—यह जानने के लिए किसी निश्चित वैज्ञानिक पद्धति का आविष्कार अभी तक नहीं हो पाया है। अतः मधुप्रमेह वंशानुगत होने पर भी रोग लागू होने के पूर्व उसकी जानकारी नहीं हो पाती।

मधुप्रमेह के लिए जिम्मेदार या कारणभूत जनीन पर अन्य जनीनों एवं भोजन, शरीर का मेद, उम्र, शारीरिक श्रम का अभाव, मानसिक तनाव आदि परिबलों का प्रभाव भी होता है। इसलिए यह

रोग हर आयु के व्यक्तियों में विशेषत: आर्थिक सम्पन्नता के कारण शारीरिक श्रम न करनेवाले और फलस्वरूप स्थूल शरीरवाले तथा सामाजिक, पारिवारिक या आर्थिक कारणों से मानसिक तनाव का अनुभव करनेवाले स्त्री-पुरुषों में दिखाई देता है। त्रुटियुक्त जनीन धीरे-धीरे अपना प्रभाव बढ़ाकर इन्स्युलिन के उत्पादन की मात्रा कम कर देते हैं। इस प्रकार अपर्याप्त इन्स्युलिन के कारण शर्करा के पचापचय* की क्रियाओं पर यथोचित नियंत्रण नहीं रह सकता और शर्करा का उचित मात्रा में उपयोग नहीं हो सकता और रक्त में उसकी मात्रा बढ़ती रहती है, फलत: व्यक्ति को मधुप्रमेह होता है। सामान्यत: श्रम के अनुपात में आवश्यकता से अधिक आहार ग्रहण करने से मेद-वृद्धि होती है, आदमी मोटा और बेडौल हो जाता है। यद्यपि यह स्थिति मधुप्रमेह के लिए कारणभूत नहीं है फिर भी मधुप्रमेह के लिए अनुकूल वातावरण की पूर्ति तो अवश्य ही करती है।

कठोर परिश्रम करनेवाले मजदूर या श्रमजीवी शायद ही डायाबिटीस से पीड़ित होते हैं; जबकि अफसरों, शिक्षाशास्त्रियों, उद्योगपतियों और व्यापारी वर्ग के व्यक्तियों में इस रोग का प्रमाण बहुत अधिक पाया जाता है। इस वस्तु–स्थिति को मधुप्रमेह के कारणों के लिए सूचक माना जा सकता है।

---

* **चयापचय :** शरीर में चलनेवाली जिन सर्जनात्मक क्रियाओं से शरीर की संरचना होती है उन्हें चय (Anabolism) कहते हैं। शरीर के कोषों के जटिल द्रव्य अनेक जटिल प्रक्रियाओं में खर्च हो जाते हैं और कई कोष नष्ट हो जाते हैं। ऐसी खण्डनात्मक क्रियाओं को अपचय (Catabolism) कहते हैं। इन दोनों प्रकार की क्रियाओं को संयुक्त रूप में चयापचय की क्रियाएँ कहा जाता है।

मधुप्रमेह का निदान :

किसी व्यक्ति को मधुप्रमेह है या नहीं यह जानने के लिए भोजन के दो घण्टे बाद मूत्र–परीक्षा की जाती है और मूत्र में शर्करा की उपस्थिति और उसकी मात्रा कितनी है इसकी जाँच की जाती है। इसके लिए भोजन करने के वाद दो घण्टों तक व्यक्ति को कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिए। परीक्षण की विधि निम्नलिखित है।

कसौटी : काँच की एक परखनली (Test tube) में पाँच मि. ली. वेनेडिक्ट का प्रक्रियक (Benedict's regent) लेकर उसमें पेशाब की आठ बूदें मिलाइए। इस मिश्रण को हिला-मिलाकर परख-नली को स्पिरिट लॅम्प की ज्योति पर रखिए; मिश्रण अच्छी तरह उवलने लगे तब तक दो-तीन मिनट उसे गर्म कीजिए। यदि परखनली के प्रवाही के पारदर्शक नीले रंग में कोई परिवर्तन न हो तो समझना चाहिए कि पेशाब में शर्करा नहीं है और यदि प्रवाही का रंग अपारदर्शक एवं कुछ पीलापन लिये हुए हरे रंग में, कुछ लाली लिये हुए पीले रंग या ईंट जैसे लाल रंग में वदल जाय तो यह निश्चित हो जाता है कि पेशाव में शर्करा है और उसका प्रमाण क्रमशः वढ़ रहा है।

मधु प्रमेह के अंसर से मुक्त स्वस्थ व्यक्ति के मूत्र-परीक्षण में शर्करा दिखाई नहीं देती। यद्यपि साधारण मधुप्रमेह होने पर भी मूत्र की कसौटी निषेधात्मक परिणाम दर्शाती है अतः रोगी के मूत्र-परीक्षण के साथ-साथ रक्त-परीक्षण भी किया जाता है और इस प्रकार मधुप्रमेह के बारे में अधिक निश्चित और विश्वसनीय जानकारी प्राप्त हो सकती है। रक्त-परीक्षण के लिए रोगी का रक्त लेने की विधियाँ निम्नलिखित हैं।

(१) प्रातःकाल किसी भी चीज को खाने-पीने के पूर्व लिया जानेवाला रक्त (Fasting blood sample)।

(२) भोजन करने के ठीक दो घण्टे बाद लिया जानेवाला रक्त (Postprandial blood sample)।

अथवा

(३) भूखे रोगी को पचास ग्राम ग्लूकोज पानी में घोलकर पिलाया जाता है। फिर एक घण्टे और दो घण्टे बाद अथवा प्रति घण्टे बाद तीन घण्टों तक अथवा प्रति आध घण्टे पर लगातार दो-तीन घण्टों तक रक्त लिया जाता है। साथ ही हर बार रोगी के मूत्र के नमूने भी लिये जाते हैं।

उक्त प्रकार से लिये गये रक्त के नमूनों का परीक्षण स्टॅण्डर्ड फॉलिन और वू पद्धति (या अन्य पद्धति) से करने के बाद प्रत्येक में शर्करा की निश्चित मात्रा निर्धारित की जाती है। साथ ही बेनेडिक्ट के प्रक्रियक की सहायता से पेशाब में शर्करा की मात्रा अन्दाजन कितनी है यह भी निश्चित किया जाता है। ग्लूकोज पिलाने के बाद लिए हुए रक्त की परीक्षण–विधि को 'ग्लूकोज टालरन्स टेस्ट' (G. T. T.) कहा जाता है। इस परीक्षण से यह निश्चित किया जाता है कि रोगी के इन्स्युलिन की ग्लूकोज को सहन करने की मात्रा कितनी है। समय और ग्लूकोज की मात्रा को प्रदर्शित करनेवाला आलेख (Blood sugar curve) आलेखपत्र पर तैयार किया जाता है। इसी आलेख में नीचे हर बार मूत्र में पाई जानेवाली शर्करा की मात्रा भी बताई जा सकती है।

पेशाब में शर्करा की मात्रा का अनुभव प्राप्त करने के लिए Diastix के नाम से प्रसिद्ध तैयार पट्टियों का उपयोग किया जाता है। कुछ महँगी होने पर भी ये पट्टियाँ बड़ी सरल और सुविधाजनक हैं।

इन पट्टियों के एक छोर पर रसायणयुक्त पट्टी लगी होती है। उसे मूत्र में डुबो कर तुरंत निकाल लिया जाता है और आधे मिनट के बाद रासायणिक पट्टी के रंग में जो परिवर्तन होता है उसे बोतल पर दिये हुए चार्ट के साथ मिलाया जाता है। इससे मूत्र में शर्करा की मात्रा जानी जा सकती है।*

मधुप्रेमह में आहार का नियमन : मधुप्रमेह को नियंत्रित करने के लिए आहार का नियमन अत्यंत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। मन्द मधुप्रमेह का रोगी यदि स्थूल शरीरवाला हो तो किसी भी प्रकार की दवा लिये बिना केवल भोजन को नियंत्रित करके ही इस रोग को काबू में रख सकता है। शरीर की क्रियाओं के लिए आवश्यक शक्ति कोषों के कार्बोदित घटकों के दहन के परिणामस्वरूप प्राप्त हो जाती है। आहार में कार्बोदित की मात्रा सामान्य आवश्यकता की तुलना में अत्यंत कम रखने से कोष में कार्बोदित द्रव्य (शर्करा) की कमी पैदा होती है। तब शरीर में संग्रहीत अतिरिक्त चर्बी के दहन से अपेक्षित शक्ति की पूर्ति होती है। इस प्रकार मेद कम होने से वजन

---

* पेशाब में शर्करा की मात्रा एक या एकाधिक + चिह्नों द्वारा प्रदर्शित की जाती है। तद्विषयक स्पष्टीकरण निम्नलिखित है :

अति अल्प

= (trace) = ०·१ ग्राम/१०० मि.ली. मूत्र = ग्राम%

\+ = ०·२५ ग्राम%

++ = ०·५ ग्राम%

+++ = १·० ग्राम%

++++ = २ अथवा > २ ग्राम%

कम होता है और शरीर की स्थूलता दूर होने से उसका बेडौलपन भी नष्ट हो जाता है। तथा वह पुनः सप्रमाण आकार प्राप्त कर लेता है। भोजन में कार्बोदित पदार्थ कम मात्रा में लेने से इन्स्युलिन पर उसके चयापचय का बोझ घटता है। जिसके कारण मधुप्रमेह होता है उस इन्स्युलिन की उत्पत्ति कम होने पर इस प्रकार का बोझ कम हो जाय यह सचमुच सराहनीय है। सामान्यतः दुबले-पतले रोगी एवं बालरोगी के लिए वजन कम करने की सलाह अनुचित है। अत्यन्त अशक्त, ऊँचे और विशालकाय क्रियाशील आदमी को उसी उम्र के, ठिंगने और निष्क्रिय मनुष्य की अपेक्षा भोजन की आवश्यकता अधिक रहती है। इसलिए भोजन की मात्रा और उसके प्रकार का नियंत्रण मरीज की उम्र, ऊँचाई, वजन और क्रियाशीलता तथा रोग की उग्रता को ध्यान में रखकर करना चाहिए। सामान्यतः मधुप्रमेह के रोगी के लिए उसके शरीर के प्रति किलोग्राम के वजन पर ३० कॅलरीवाला सुयोग्य भोजन पर्याप्त है। फिर भी स्थूलकाय और अत्यधिक वजनवाले रोगी के लिए उक्त मात्रा घटा कर २५ कॅलरी या उससे भी कम रखनी चाहिए। दुबले-पतले रोगी के लिए एवं बालरोगी के लिए आहार की मात्रा में कुछ उदारता रखनी चाहिए। मधुप्रमेह के रोगी के लिए भोजन के प्रकार और प्रमाण के चुनाव में स्वाद और भूख का दमन करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

आहार के घटकों में कार्बोदित, प्रोटीन और चर्बी से प्रति ग्राम क्रमशः ४, ४ और ९ कॅलरी प्राप्त होती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए आहार का चुनाव करना चाहिए। साथ ही निम्नलिखित बातें भी विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिए।

(१) जिसमें शक्कर मिलाई गई हो ऐसी चाय, काफी, दूध या मिठाइयों का उपयोग नहीं करना चाहिए या अत्यन्त सीमित मात्रा में करना चाहिए।

(२) आलू, शकरकन्द, भात, साबूदाना, सिंघाड़े, रजगीर आदि स्टार्चयुक्त पदार्थ नहीं लेने चाहिए।

(३) रोटी, मोटी रोटी, डबल रोटी, बिस्किट आदि; गेहूँ, जुआर और मक्के से बने खाद्य पदार्थ अल्प मात्रा में लें।

(४) दलहन, काजू, मूँगफली के दाने आदि उचित मात्रा में लें।

(५) अंगूर, जामुन, पके आम, तरबूज, नारंगी, पिअर्स, अनानास आदि फल यथेष्ट मात्रा में ले सकते हैं। किन्तु केले, चीकू, सीताफल आदि अल्प मात्रा में लें।

(६) मांसाहारी रोगी अण्डे, बिनतली मछली, मुर्गी या अन्य पक्षी का मांस उचित मात्रा में ले सकता है।

(७) भेंस के बदले गाय अथवा बकरी का दूध उपयोग में लेना हितावह है।

(८) शहद, शक्कर, गुड़, चोकलेट, सूखा मेवा, मुरमुरे, पोहा, धान की लाई, दूध का पावडर, मक्खन आदि का सर्वथा त्याग करें।

(९) मधुप्रमेह में जिनका निःसंकोच उपयोग किया जा सकता है ऐसे ग्राह्य आहार-द्रव्य और सर्वथा त्याज्य आहार-द्रव्यों की सूची निम्नलिखित है —

ग्राह्य आहार	त्याज्य आहार
मसाला, सॉस, अचार, शर्करारहित चाय-कॉफी, सोडावॉटर, टमाटर, मटन या मुर्गी का सूप, शक्कर रहित जेली, नीबू, सेक्रीन, सिरका आदि।	किसी भी प्रकार का शरबत, कोला, मलाई की बनावटें, चॉकलेट, कॅण्डी, खीर, हलुवा, दूध-दही से बनी मिठाइयाँ, लड्डू, सूखे मेवे, तले हुए व्यंजन आदि।

मधुप्रमेह में व्यायाम : व्यायाम स्वस्थ मनुष्य के लिए जितना महत्त्वपूर्ण है उससे अधिक मधुप्रमेह के रोगी के लिए है। मधुप्रमेह में व्यायाम आहार-नियमन के जितना ही महत्त्वपूर्ण है। आहार-नियमन के साथ-साथ रोगी की प्रकृति के अनुकूल और नियमित रूप से किया गया व्यायाम मधुप्रमेह के नियंत्रण के लिए फलप्रद सिद्ध होता है। यदि मधुप्रमेह का रोगी हृदयरोग या उच्च रक्त चाप से पीड़ित हो तो उसे व्यायाम से हानि होने की संभावना रहती है। ऐसी स्थिति में यथोचित व्यायाम और यथोचित आहार का समन्वय लाभप्रद होता है।

व्यायाम के प्रकार :

(१) घूमना-टहलना : व्यायाम का यह सर्वाधिक सरल प्रकार है। आबालवृद्ध सभी यह व्यायाम आसानी से कर सकते हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल और संभव हो तो शाम को, थकावट महसूस न हो, इस प्रकार आधा-एक घण्टा तेज चाल से चलना लाभदायक होता है। इससे स्नायुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है। फलस्वरूप वे ग्लूकोज का उपयोग करके रक्त में उसकी मात्रा कम कर देते हैं। थकान न लगे इस प्रकार तेज गति से चलने से हृदय और रक्तवाहिनियों पर भी अधिक बोझ नहीं पड़ता।

(२) दौड़ना : कम समय में अधिक व्यायाम का लाभ प्राप्त करने के लिए उचित प्रमाण में दौड़ना चाहिए। दौड़ने की क्रिया एक ही स्थान पर भी की जा सकती है। इसे स्थानीय दौड़ (Spot running) कहते हैं। लड़कियाँ रस्सी-कूद करती हैं, वह स्थानीय दौड़ की ही एक पद्धति है। थकान न लगे इस बात को खास ध्यान में रखकर दौड़ने के लिए धीरे-धीरे समय निकाला जा सकता है।

(३) **तैरना :** जो लोग तैरना जानते हैं उनके लिए तैरना भी दौड़ के समान ही एक महत्त्वपूर्ण कसरत है। तैरने में थकान न लगे इसका ख्याल रखते हुए इस कसरत के लिए अधिक से अधिक समय निकालना चाहिए।

(४) **संधिस्थलों की कसरत :** हाथ-पैर के सभी जोड़ों का पाँच सेकण्ड तक शीघ्रता से हलन-चलन हो, इस ढंग से विविध कसरतें करनी चाहिए। इसी प्रकार गर्दन और कमर के जोड़ों का पर्याप्त हलन-चलन हो इस प्रकार की कसरतों का आयोजन करना चाहिए। शरीर के प्रायः सभी संधिस्थलों का हलन-चलन हो और फिर भी थकान न लगे इस ढंग से ये कसरतें अधिक से अधिक बीस मिनट तक की जा सकती हैं।

योग-व्यायाम : मधुप्रमेह के रोगी को हृदयरोग, उच्च रक्तचाप या फेफड़ों की बीमारी न हो तो कुछ योगासन, प्राणायाम और अन्य योग-व्यायाम के द्वारा बहुत अच्छा परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। योग-व्यायाम के जानकारों का दावा है कि योग-व्यायाम से मधुप्रमेह को नियंत्रित किया जा सकता है। यही नहीं, उसे निर्मूल भी किया जा सकता है; इन्स्युलिन की कमी मधुप्रमेह का मुख्य कारण है। उपरांत, अन्य सम्बन्धित अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की अपर्याप्त या आवश्यकता से अधिक क्रियाशीलता भी मधुप्रमेह के लिए जिम्मेदार है। योग-व्यायाम की अमुक क्रियाएँ आवश्यकतानुसार करने से स्वादुपिण्ड तथा अन्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की क्रियाशीलता में उल्लेखनीय परिवर्तन लाया जा सकता है। दीर्घकालीन परिचर्या के रूप में इन क्रियाओं को नियमितरूप से अपनाकर मधुप्रमेह को निर्मूल किया जा सकता है। योग-व्यायाम की निम्नलिखित क्रियाएँ मधुप्रमेह के रोगी के लिए परिचर्या के रूप में स्वीकृत हो चुकी हैं :

(१) उड्डियन बन्ध, (२) अग्निसार, (३) कपालभाती, (४) प्राणायाम और (५) भुजंगासन, अर्धशलभासन, धनुरासन, हलासन, पश्चिमोत्तानासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, योगमुद्रा, सर्वांगासन तथा मत्स्यासन जैसे आसन। इन सारी क्रियाओं की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत ग्रन्थ में अन्यत्र दी गई है।

मधुप्रमेह में निसर्गोपचार :

मधुप्रमेह की पीड़ा की तीव्रता रक्त में शर्करा की मात्रा को जानकर निश्चित की जा सकती है। मन्द मधु-प्रमेही या सम-उग्र मधु प्रमेही गोलियों के द्वारा अथवा शिरा में इंजेक्शन के द्वारा इन्स्युलिन की निश्चित मात्रा नियमित रूप से ग्रहण करे और साथ ही आहार-नियमन एवं व्यवस्थित व्यायाम करे तो रोग की उग्रता घटा कर रोग को नियंत्रित कर सकता है। इन्स्युलिन को प्राकृतिक रूप से गाय, भैंस या शूकर (सुअर) आदि के स्वादुपिण्ड से अलग करके प्राप्त किया जाता हैं। इन्स्युलिन को प्रयोगशाला में कृत्रिम ढंग से संश्लेषित भी किया जाता है और तत्पश्चात् विविध उत्पादक कंपनियाँ उसे विविध नामों से बाजार में बेचती हैं। मधुप्रमेह की ऍलोपेथी (चिकित्सा) पद्धति की परिचर्या मुख्यतः इन्स्युलिन को केन्द्र में रखकर आयोजित की गई है, जब कि आयुर्वेद में मधुप्रमेह की परिचर्या के लिए अनेक औषधियाँ और जड़ी-बूटियाँ उपयोग में ली जाती हैं।

मधुप्रमेह के उपचार का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। इसलिए हम यहाँ इस रोग को नियंत्रण में रखनेवाले कुछ निसर्गोपचार (प्राकृतिक उपचार) प्रस्तुत कर संतोष मान रहे हैं।

१. पानी के उपचार :

(१) बस्ति (enema–एनिमा) : अधिकांश रोग केवल आंतों में मल भर जाने और कब्जियत के कारण ही होते हैं। मधुप्रमेह में आहार-मर्यादा के कारण रोगी अर्धउपवास की स्थिति में होता है। इससे मल का संग्रह रहनां स्वाभाविक है। तात्कालिक मल-शुद्धि के लिए एनिमा श्रेष्ठ उपाय है। इसमें दो-सवा दो लीटर बिल्कुल कुनकुना पानी रबर की टोंटी की सहायता से गुदा-मार्ग से आँत में प्रविष्ट कराया जाता है।। एनिमा देते समय रोगी को एक निश्चित स्थिति में सुलाना, आँत में केवल पानी ही जाए और रंचमात्र भी हवा प्रविष्ट न होने पाए, पानी के प्रवेश से पेट में दर्द न हो तथा पानी की गति को नियंत्रित रखना-इन बातों की विशेष सावधानी रखनी पड़ती है।

आँत में पानी पहुँचाने के बाद नली को दूर कर पेट को धौंकनी की तरह ऊपर उठाएँ या थोड़ी चहल-कदमी करें। दस्त की हाजत होने पर पाखाना हो आएँ। एनिमा की आदत नहीं डालनी चाहिए, किन्तु केवल आवश्यकता महसूस होने पर ही यह उपचार करना चाहिए।

(२) कटिस्नान : खास तैयार किये गये गहरे टब में रोगी की नाभि तक आए, इतनां पानी भरें। ठण्डे और गर्म-दोनों प्रकार के जल से कटिस्नान किया जाता है। गर्म कटिस्नान के लिए कुनकुना या सरलता से स्नान हो सके ऐसा गर्म पानी लीजिए और निर्वस्त्र स्थिति में पाँच-सात मिनट तक उसमें बैठिए। पेडू में स्थित मूत्राशय, प्रजनन अंगों और अन्य अवयवों में रक्तपरिभ्रमण अच्छी तरह हो– यह इस कटिस्नान का प्रयोजन है।

ठण्डे कटिस्नान में रोगी की सहनशक्ति को लक्ष में रखकर यथा-संभव अधिक ठण्डा पानी उपयोग में लिया जाता है। टब में बैठने से पूर्व शरीर में थोड़ी ऊष्मा उत्पन्न करें। इसके लिए चहलकदमी या अन्य कोई व्यायाम करें या शरीर को सूखे तौलिए से रगड़ें। टब में बैठने के बाद पेड़ू पर खुरदरे तौलिये को धीरे-धीरे रगड़िए ताकि चमड़ी के छिद्र खुल जायँ और रक्त का परिभ्रमण अच्छी तरह हो। कटिस्नान निर्वस्त्र स्थिति में पाँच से सात मिनट करें। इसके बाद शरीर को पोंछ कर, ऊनी कपड़े लपेटकर पाव-आध घण्टा सो रहिए। कटिस्नान के बाद एक घण्टे तक कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिए।

(३) **मेहनस्नान (Sitz-bath) :** खास तौर से बनाये अर्ध-चन्द्राकार टॉपवाले स्टूल को उसका कटाववाला हिस्सा आगे की ओर रहे, इस प्रकार की स्थिति में रखकर उसपर बैठ जायँ। स्टूल के नीचे ठण्डे पानी से भरा हुआ एक बर्तन (डोल या तसला) रखें। महिला रोगी को मुलायम-भीने कपड़े का पोता योनिद्वार पर पाँचेक मिनट तक रखना चाहिए।

पुरुष मरीज को जननेन्द्रिय (शिश्न) की बाहरी चमड़ी से शिश्न का गुंबदाकार अग्रभाग (ग्लांस् पेनिस) ढँका रहे इस तरीके से चमड़ी को पकड़कर दूसरे हाथ से शिश्न की चमड़ी पर और शिश्न तथा गुदाद्वार के मध्यवर्ती भाग पर भीने-मुलायम वस्त्र से स्पर्श करते रहना चाहिए। यह स्नान भी पाँचेक मिनट करना चाहिए।

स्त्रियों को माहवारी कम आती हो या बन्द होनेवाली हो तब और प्रदर रोग में मेहनस्नान से विशेष लाभ होता है, पुरुषों को भी शीघ्र वीर्यस्खलन, स्नायु-निर्बलता, नपुंसकता, अनिद्रा आदि में इससे बड़ा लाभ होता है।

२. मालिश : मालिश के लिए सरसों या तिल के तेल का उपयोग करना चाहिए। सप्ताह में एक-दो बार मालिश अवश्य कराएँ। यथासंभव मालिश की पद्धति के जानकार व्यक्ति से मालिश करवाएँ। यदि हाथ, पैर, कन्धे, पेट, पेडू, छाती, गर्दन और सिर—इन सभी अंगों की मालिश हो तो चमड़ी और स्नायुओं का आरोग्य सुरक्षित रहता है।

३. सूर्यस्नान : मालिश करने के बाद सूर्यस्नान करना चाहिए। सूर्यस्नान में सूर्य की तिरछी किरणें शरीर पर पड़नी चाहिए। जाड़े की ऋतु में प्रातः नौ बजे के पहले का और ग्रीष्म ऋतु में प्रातःकाल आठ बजे के पहले का समय सूर्यस्नान के लिए योग्य माना गया है। शाम के समय सूर्यास्त के पहले के एक घण्टे के दौरान भी सूर्यस्नान किया जा सकता है। इसके लिए पूर्णतः निर्वस्त्र होकर या केवल लँगोट पहनकर जमीन पर चित लेट जाना चाहिए और क्रमशः पीठ, पेट और दोनों पार्श्वों को सूर्य-किरणों का सीधा लाभ देना चाहिए।

४. स्नान : मालिश और सूर्यस्नान के बाद शीतल जल से स्नान करना चाहिए। मालिश के तेल की चिकनाहट दूर करने के लिए साबू का उपयोग न करें, पर बेसन को पानी में भिगोकर पूरे बदन में अच्छी तरह रगड़िए। फिर पानी से अच्छी तरह रगड़कर शरीर स्वच्छ कीजिए। स्नान करने के बाद खुरदरे तौलिये से शरीर को भलीभाँति रगड़कर पोंछ डालिए। इससे शरीर में ऊष्मा और स्फूर्ति आएगी।

५. मिट्टी की पट्टी : मधुप्रमेह में मिट्टी की पट्टी उपयोगी है। इसके लिए काली खाद-रहित, कंकड़-रहित और महीन कणोंवाली मिट्टी होनी चाहिए। इस दृष्टि से चींटी के बिल की मिट्टी ज्यादा अच्छी है; जबकि नदी किनारे की या सूखे तालाब की मिट्टी तो अत्युत्तम मानी गई है।

उपयोग में लेने से पहले मिट्टी को महीन चलनी से चाल कर या कपड़छन करके मिट्टी के बर्तन में बारह घण्टे भिगो रखें। इसके बाद इस ढीली और भीनी मिट्टी को पतले और मुलायम स्वच्छ कपड़े के बीच में बिछाकर उसकी लगभग आधा इंच मोटी तह बनाइए। फिर दोनों तरफ का कपड़ा ऊपर की ओर मोड़कर मिट्टी की पट्टी तैयार कीजिए। अब इस पट्टी की मिट्टी शरीर के अधिक से अधिक निकट रहे, इस ढंग से उसे पेडू पर रखिए। यह प्रयोग आधा एक घण्टे तक करें। इस दौरान मिट्टी गर्म हो जाए तो उसे हटाकर दूसरी पट्टी रखिए। यथासंभव एक बार काम में ली हुई मिट्टी का दुबारा उपयोग न करें। कपड़ा भी हर बार अच्छी तरह धोकर और स्वच्छ करके ही उपयोग में लें। मिट्टी की यह पट्टी चमड़ी के छिद्रों द्वारा शरीर की गन्दगी को खींच लेती है।

मधुप्रमेही के लिए विशिष्ट व्यंजन :

मधुप्रमेही विशिष्ट उपचारों, नैसर्गिक उपचारों और व्यायाम के साथ नियंत्रित आहार के रूप में निम्नलिखित व्यंजन उचित मात्रा में लें यह इच्छनीय है।

शहद-नीबू-पानी का शरबत :

४ चम्मच नीबू का रस

६ चम्मच शहद

४०० मि. ली. पानी

यह शरबत प्रातःकाल भूखे पेट लेने से जठर और आतों की सफाई के साथ कब्जियत दूर हो जाती है।

गुड़ की राब : ५०० ग्राम गुड़ का चूरा करके उसमें १२५ मि. लीटर पानी डालकर उसे चार-छह घण्टे रख छोड़िए। फिर उसे धीमी आँच पर रखकर गर्म कीजिए। थोड़ा गाढ़ा होने पर उसे आग पर से उतार लीजिए। कुछ ठण्डा होने पर उसे स्वच्छ कपड़े से छान लीजिए और किसी स्वच्छ चिनाई के बर्तन में भर लीजिए। प्रतिदिन एकाध बड़े चम्मच के बराबर यह राब दूध या पानी में घोल कर पी जायँ। आठ-दस रोज में इस राब में दुर्गन्ध आने लगती है। ऐसी स्थिति में राब को दुबारा गर्म करने से दुर्गन्ध दूर की जा सकती है।

दूध : गाय का दूध गर्म किये बगैर ग्रहण न करें। दूध को सामान्य प्रेशर कूकर या मिल्क कूकर में गर्म करके उपयोग में लेना सर्वोत्तम है।

दही : ग्रीष्म ऋतु में तीन-चार घण्टे पहले जमाया हुआ और शीतऋतु में आठ से बारह घण्टे पहले जमाया हुआ दही अर्थात् ताजा दही, दूध की अपेक्षा अधिक सुपाच्य होता है।

मट्ठा : दही की अपेक्षा मट्ठा अधिक सुपाच्य है। दही को अच्छी तरह मथ कर, मक्खन निकाल लेने के बाद, मक्खन के बराबर ही पानी डालकर तैयार किया हुआ मट्ठा सबसे अधिक सुपाच्य होता है।

छाछ : दही बिलोकर मक्खन निकाल लेने के बाद उसमें दही से आधा पानी और मक्खन के बराबर अतिरिक्त पानी मिलाएँ। यह छाछ उत्तम सुपाच्य आहार है।

तुलसी का काढ़ा : ४ ग्राम तुलसी के पत्ते लेकर उन्हें अच्छी तरह धोने के बाद १५० मि. ली. पानी में उन्हें उबालें। इस पानी को महीन कपड़े से छान लें और उसमें सौ मि. ली. दूध और ४ चम्मच गुड़ की राब मिला कर अच्छी तरह हिलाएँ। तुलसी कफनाशक होने से सर्दी, खाँसी दमा आदि में यह काढ़ा गुणकारी है।

सूप : मेथी, पालक, चौलाई वगैरह में से कोई भी हरी ताजी भाजी दो-सौ ढाई सौ ग्राम लेकर उसे अच्छी तरह धोकर साफ कर लें। फिर उसे महीन कतर लें। गाजर, टमाटर, लौकी, मूली, तुरई आदि (१०० ग्राम) को छील कर, भाजी के साथ ४०० मि. ली. पानी में डालकर, प्रेशरकूकर में पकने के लिए रख दें। पक जाने बाद ठण्डा होने पर अच्छी तरह मसलकर उसका रगड़ा बनाएँ। इस रगड़े को अलग बर्तन में स्वच्छ कपड़े से छानकर उसमें दस ग्राम के लगभग अदरक और नीबू का रस मिला दें। इस सूप के लिए पके टमाटर और गाजर का उपयोग भी किया जा सकता है। भाजी के खनिज क्षार शरीर-शुद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण है। हरे धनिया का उपयोग भी विशेष इच्छनीय है।

कच्ची साग-भाजी का रस : गाजर, ककड़ी, टमाटर, पालक, मेथी, चौलाई और हरा धनिया आदि कच्ची खाई जा सकनेवाले साग-भाजी को यथेष्ट मात्रा में लेकर उन्हें महीन पीसकर चटनी बनाएँ। इस चटनी को स्वच्छ कपड़े में रखकर, निचोड़कर, उसका रस निकाल लें। १०० ग्राम रस में ५० ग्राम दही या मट्ठा अथवा १०० ग्राम छाछ मिलाएँ अथवा १०० ग्राम रस में दही, छाछ या मट्ठे के बदले दो चम्मच गुड़ की राब या (शहद) भी डाल सकते हैं।

कचूमर : ककड़ी, गाजर, मूली, प्याज, पत्तागोभी, टमाटर आदि साग और पालक, मूली, चौलाई आदि भाजी को अच्छी तरह धोकर और महीन कतर कर उस पर दही छिड़ककर कचूमर के रूप में उसका उपयोग किया जा सकता है।

अन्न की बानगी : गेहूँ, चावल, बाजरी आदि किसी भी अनाज को अथवा उसके आटे को थोड़े-से घी में १८०° से २२०° के ताप-मान पर किंचित् लाल होने तक सेंकने के बाद ही उसका उपयोग रोटी, भाखरी, भात, बाटी, ढेबरे आदि बनाने में करना चाहिए। दाल या दलहन को भी सेंकने के बाद ही पकाना चाहिए। ऐसा करने से रक्त में शर्करा की मात्रा सामान्य सतह पर रहती है और इन्स्युलिन लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

प्रत्येक व्यक्ति को उन पदार्थों का सूक्ष्म अध्ययन कर लेना चाहिए जिनसे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर होता हो। तत्पश्चात् ऐसे पदार्थों के खानपान, सूँघने या अन्य किसी भी प्रकार के उपयोग से हर हालत में बचते रहना चाहिए।

२४. वात-संधिवात रोग से बचें

संधिवात वृद्धों में पाया जानेवाला महाउपद्रवकारी रोग है। इससे शरीर के संधिस्थलों (जोड़ों) में दर्द होता है। इसी को वात, संधिवात या गठिया वात कहा जाता है।

बासी भोजन, इमली, कोकम, अमचुर आदि खट्टे मसाले, अचार ब्रेड, ढोकले, दही या दही से बने व्यंजन, जलेबी जैसा सूक्ष्म जीवाणु (बेक्टेरिया) वाला आहार, मांसाहार, शराब जैसे उत्तेजक पेय और अतिशय आहार आदि इस रोग के मूल कारण हैं। इसके अलावा शरबत और बोतलों के ठण्डे पेय, दही, श्रीखण्ड, आम तथा सेम और मटर जैसे दलहन भी इस रोग में कारणभूत होते हैं। इसलिए वात-संधिवात की प्रकृतिवाले व्यक्ति को उपर्युक्त व्यंजनों का आहार यथासंभव कम करना चाहिए या त्याग कर देना चाहिए।

अब हम संधिवात के मूल कारणों की छानबीन करें:

हमारे शरीर में हड्डियों के अनेक जोड़ या संधिस्थल हैं। इन जोड़ों का हलन-चलन घर्षणरहित हो इसके लिए प्रत्येक जोड़ के बीच तैलसिंचन की प्राकृतिक व्यवस्था है। आवश्यकतानुसार यह तैली पदार्थ अपने आप तैयार होकर जोड़ों में उसका सिंचन होता रहता है। यह क्रिया अच्छी तरह होती रहे तो किसी प्रकार के हलन-चलन या उनके मोड़ने में संधिस्थल में न तो कोई पीड़ा होती है और न ही उनमें कोई घिसावट लगती है।

नब्बे प्रतिशत वात-संधिवात का रोग घुटनों से ही शुरू होता है। इसका कारण समझने की जरूरत है। सामान्यतः शरीर के समस्त अंगों का अध्ययन करने पर हमें पता चलता है कि व्यक्ति को प्रवृत्ति-

मय रहने के लिए घुटनों का अधिकतम उपयोग करना पड़ता है। बैठने, उठने, घूमने-फिरने, दौड़ने, नाचने, गृहकार्य करने, सीढ़ियाँ चढ़ने-उतरने, साइकिल या मोटर चलाने, खेल-कूद आदि क्रियाओं में घुटनों का सबसे अधिक उपयोग होता है।

घुटनों को पूरे शरीर का बोझ उठाना पड़ता है। कोई मजदूर अपने सिर या कन्धे पर बोझ उठाए या जब हम अपने दोनों हाथों में भरे हुए थैले उठाएँ तब यह सारा बोझ आखिर तो घुटनों के जोड़ों को ही उठाना पड़ता है। प्रकृति भी आवश्यकतानुसार घुटनों में अधिकाधिक तैलसिंचन करती रहती है। उम्र बढ़ने के साथ और धन-सम्पत्ति तथा ऐशोआराम बढ़ने के साथ ही दौड़धाम और घूमना-फिरना लगातार कम होता जाता है। जीवन प्रमादपूर्ण और आरामप्रिय हो जाता है। ऐसे निष्क्रिय जीवन में घुटनों और अन्य जोड़ों में हलन-चलन की क्रिया कम हो जाती है जबकि तैल--सिंचन तो मूल प्रमाण के अनुसार प्रकृति करती ही रहती है। फलस्वरूप यह तैली द्रव्य उपयोग के अभाव में संधि-स्थल में यथावत् पड़ा रहता है। अधिक समय तक इस प्रकार पड़े रहने से उसमें सड़न उत्पन्न हो जाती है। इसी सड़न के कारण वहाँ कालान्तर में सूक्ष्म कीटाणु (बॅक्टेरिया) पैदा हो जाते हैं, जो जोड़ों में दर्द और सूजन उत्पन्न करते हैं। इससे मालूम होगा कि संधिवात सर्वप्रथम घुटनों के जोड़ों में क्यों उत्पन्न होता है। यह रोग हलन-चलन की न्यूनता के कारण होता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर शरीर के प्रत्येक जोड़ को आवश्यक हलन-चलन देना चाहिए। हलन-चलन की न्यूनता दूर होते ही रोग अपने आप दूर हो जाएगा। जोड़ों में तैल-सिंचन करनेवाले स्निग्ध द्रव्य का रूपरंग पानी के समान होता है। डॉक्टर पिचकारी से इस द्रव्य को बाहर खींचकर रोगी को रोगमुक्त

करते हैं, किन्तु धीरे-धीरे पुनः पानी का संग्रह होता है। इस प्रकार पिचकारी से पानी निकालने से यह रोग हमेशा के लिए दूर नहीं होता।

इस प्रकार घुटनों में पानी का संग्रह अधिक होने से विकृति उत्पन्न हो जाती हैं। तैल-सिचन के प्रवाही का दबाव बढ़ने से संधिस्थल में विकृति उत्पन्न होती है। सन्धि–स्थल हमेशा के लिए मुड़ जाते हैं और रोगी को हमेशा के लिए लँगड़ाकर चलना पड़ता है। रोगग्रस्त घुटना सीधा नहीं हो पाता; उसमें दर्द और शोथ (सूजन) हमेशा बने रहते हैं।

इलाज :

इस रोग से मुक्ति पाने के इच्छुक व्यक्तियों को चाहिए कि सर्वप्रथम वे इस रोग से सदा के लिए मुक्त होने का पक्का संकल्प करें और अपनी इच्छा-शक्ति को जाग्रत करें। आहार-विहार और व्यायाम में श्रद्धा रखें और तत्सम्बन्धी नियमों का पालन करें। संधिवात के कारण उत्पन्न शोथ (सूजन) और घुटनों के टेढ़ेपन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए यहाँ कुछ ऐसे उपचार बताए जा रहे हैं जिन्हें हमने स्वयं आजमाकर लाभ उठाया है।

कसरतें शुरू करने के पूर्व पैर के पंजों से जाँघ तक किसी अच्छे किस्म के तेल से थोड़ी देर तक मालिश करें। इसके बाद निम्न-लिखित कसरतें शुरू करें —

(१) एक कुर्सी पर दो-तीन तकिये रखिये, जिसकी ऊँचाई आपकी ऊँचाई से आधी हो। अब आप कुर्सी के करीब, उसके सामने चित लेट जाइये। दोनों पैरों की एड़ियाँ तकिये पर रखिए। इसके बाद दोनों हाथों की कुहनियों को जमीन पर टिका कर शरीर को धीरे

से ऊपर उठाइये। पैरों के घुटनों को यथासंभव सीधा रखने की कोशिश कीजिए। इस प्रकार शरीर को ऊपर उठाने से पीठ, कमर और कुर्सी
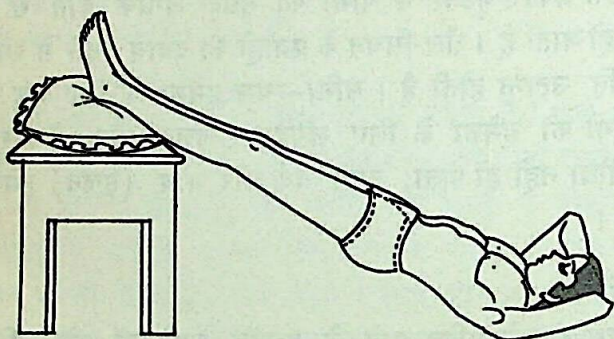
[आकृति २३]

पर रखी हुई एड़ियाँ एक सीधे ढलाव में आ-जाएँगी। पूरा शरीर पीठ और एड़ी पर आ जाएगा। इस कसरत में घुटनों को सीधा रहना पड़ता है, इसलिए थोड़ी तकलीफ एवं पीड़ा होगी। अतः धीरे-धीरे आगे बढ़ें। आरंभ ५० सेकण्ड से करें। कसरत करने के बाद पैरों और घुटनों की मालिश कीजिए। इसके बाद दोनों घुटनों को दोनों हाथों की मुट्ठियों से आहिस्ता-आहिस्ता थपथपाइये। ऐसा करने से जमा हुआ स्निग्ध द्रव्य अलग हो जायगा और पैर धीरे-धीरे सीधा होता जाएगा।

यह कसरत प्रतिदिन पाँच से पच्चीस बार करें।
इस कसरत का 'ध्यान–बिन्दु' घुटना है।

(२) दोनों पैर सीधे पसारकर बैठिए। दोनों हाथों की मुट्ठियाँ जाँघ के नीचे रखिए। इसके बाद दोनों पैरों को यथासंभव सीधे और तने हुए रखकर ऊपर की ओर उठाइये। इस स्थिति में ५० सेकण्ड

तक रहिए। घुटने यथासंभव सीधे रखने का प्रयत्न करते रहें। (आकृति १६ के अनुसार)

(३) ऊपर बताये अनुसार दोनों पैर पसारकर बैठिए। दोनों पिण्डलियों (CALF) के नीचे एक लम्बगोल तकिया रखें। दोनों हथेलियाँ कुछ पीछे की ओर फर्श पर टिकाइये, अब दोनों पैरों को तंग करके, घुटनों से यथाशक्ति सीधे रखकर ऊपर की ओर उठाइये। इसी स्थिति में ५० सेकण्ड तक रहिए।
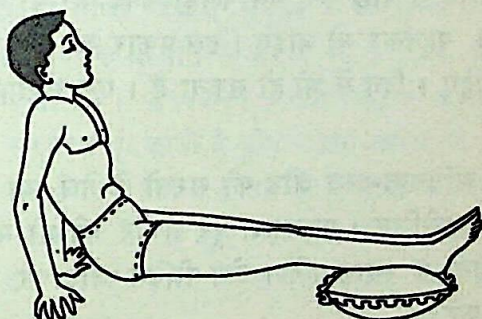
[आकृति २४]

तीनों कसरतें करने के बाद पुनः थोड़ी देर हल्के हाथों से तेल की मालिश कीजिए। तत्पश्चात् दोनों घुटनों को मुट्ठियों और हथेलियों के अग्रभाग से धीरे-धीरे थोड़ी देर तक ठोकिए और थपथपाइये।

ये तीनों कसरत ५ से ७ बार करें।

कसरतों, मालिश और थपकियों से रुधिराभिसरण को वेग मिलेगा। जमा हुआ पानी (स्निग्ध द्रव्य) अलग हो जाएगा। थोड़े समय में घुटने यथावत् हो जाएँगे और पीड़ा से मुक्ति प्राप्त होगी।

संधिवात के सामान्य उपचार :

(१) जिस जोड़ में रोग हुआ हो उसे भीगा सेंक दीजिए। इसकी विधि इस प्रकार है : प्राइमस पर तपेली में पानी उबालिए। उस पर पीतल की चलनी या जालीवाला कोई बर्तन उल्टा रख दीजिए। दो तौलिये लीजिए। साधारण भिगोकर दोनों तौलिये क्रमशः चलनी पर गर्म करके संधिस्थल पर रखिए। अधिक से अधिक जितना आप सहन कर सकें उतना सेंक लगभग आधा घण्टे तक लीजिए। इसके बाद सूखे तौलिये से पोंछ कर, गर्म कपड़ा लपेट कर या घुटनों के मोजे (प्रेसर वेल्ट) पहनकर सो जाइए। इस प्रकार का सेंक विशेषतः रात में करना चाहिए। दिन में भी हो सकता है। एक सप्ताह में ही काफी लाभ होगा।

(२) संधिवात-ग्रस्त जोड़ की सरसों के तेल या महानारायण तेल से मालिश कीजिए। यदा-कदा पूरे शरीर की भी मालिश किया करें। गर्म पानी से स्नान करें। रोग-पीड़ित जोड़ पर गर्म पानी की धारा छोड़ा करें।

(३) हाथ या पैर में संधिवात हुआ हो, तो प्रस्तुत पुस्तक में निर्दिष्ट कसरतें प्रतिदिन प्रातःकाल एक घण्टे तक कीजिए। हाथ-पैरों को हलन-चलन दीजिए। मालिश कीजिए फिर कसरतें करके गर्म पानी से स्नान कीजिए और इस प्रकरण में निर्दिष्ट आहार लीजिए।

(४) रीढ़ में संधिवात का आविर्भाव होने पर 'रीढ़ की सुश्रूषा' अध्याय में निर्दिष्ट कसरतें करने से संधिवात से मुक्ति मिलती है। ये कसरतें यदा-कदा चालू रखने से इस प्रकार के अन्य रोग भी नहीं होंगे।

(५) यथाशक्ति प्रतिदिन पैदल चलिए। जिस जोड़ में दर्द या सूज़न हो उसे विशेष हलन-चलन दीजिए।

ग्रीष्म ऋतु में होनेवाला संधिवात :

सामान्यतः संधिवात शीत ऋतु में होता है, किन्तु आजकल तो ऐसे मरीजों की संख्या बढ़ रही है, जिन्हें ग्रीष्म ऋतु में संधिवात हुआ हो। बिजली के पंखों की तेज झोंकेवाली हवा से यह विकृति उत्पन्न होती है। जोड़ों में दर्द होता है, शरीर जकड़कर तन जाता है। प्रातःकाल उठने पर जिस स्फूर्ति का अनुभव होना चाहिए वह नहीं होता, और आलसी की तरह बिस्तर में लेटे रहने को जी चाहता है। बिजली के पंखे की हवा का सीधा प्रभाव मनुष्य के स्नायुतंत्र पर पड़ता है। लगातार एक-सी हवा के आघात से शरीर की अपेक्षित और आवश्यक गर्मी कम हो जाती है। फलस्वरूप रक्ताभिसरण करनेवाली सूक्ष्म केशवाहिनियाँ संकुचित हो जाती हैं और रक्ताभिसरण की सम्पूर्ण क्रिया में एक प्रकार का विक्षेप उत्पन्न होता है। रक्ताभिसरण में मंदता आने से शरीर के जोड़ों में रहे हुए प्रवाही द्रव्य स्थगित हो जाते हैं और जोड़ों में दर्द शुरू हो जाता है, सूजन भी आ जाती है। इसी को हम 'वात रोग' कहते हैं।

तेज हवा के असर से पसीना बाष्पीभवन होकर सूख जाता है। आवश्यक क्षारों को शरीर के बाहर निकालने की क्रिया रुक जाती है। ये विजातीय क्षार चमड़ी के नीचे स्थगित होकर पड़े रहते हैं, स्नायु जकड़ जाते हैं। मूत्र–पिण्ड पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं। पेशाब कम हो जाता है। उसमें अम्लता क्षारतत्त्वों के अधिक मात्रा में स्थगित होने से मूत्र-संबंधी रोग उत्पन्न होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में तो पेशाब छूट से होना चाहिए। इसके लिए पानी और नीबू के रस का अधिकाधिक सेवन करना आवश्यक है। पेशाब कम होने से कमर और पीठ का दर्द शुरू होता है तथा संधिवात के रोग में वृद्धि होती है। जोड़ों में

विजातीय विषैले द्रव्यों के स्थगित होने के कारण ही 'बफा सो नफा' कहावत प्रचलित हुई है।

गर्मी में पंखा धीमा रखना चाहिए ताकि हवा का झोंका शरीर को न लगने पाए। पंखा इतना दूर रखें कि जिससे हवा का झोंका बदन को स्पर्श न करें। पंखे के समर्थकों को सप्ताह में दो बार मालिश करनी चाहिए। इससे चमड़ी के छिद्र खुलेंगे। पानी भी खूब पियें ताकि पेशाब और पसीने की छूट रहे।

संक्षेप में, पंखे का उपयोग बिल्कुल कम करें। केवल गर्मी और व्याकुलता दूर हो सके इतना ही, मर्यादित उपयोग करें।

२५. रीढ़ की रचना और उसकी देख-भाल

[आकृति २५]

रीढ़ की रचना :

खोपड़ी के नीचे से शुरू होकर धड़ के नीचे के छोर तक ३३ हड्डियाँ एक-दूसरे पर जम कर जो स्तम्भ बनाती हैं उसे रीढ़ या मेरुदण्ड कहा जाता है। वयस्क व्यक्ति में रीढ़ की इन ३३ हड्डियों में से प्रथम २४ हड्डियाँ स्वतंत्र और हिल-डुल सकें ऐसी हैं, जबकि अन्तिम नौ हड्डियाँ एक-दूसरे से जुड़कर एक अखण्ड हड्डी का-सा निर्माण करती है। रीढ़ की हड्डियाँ मनकों के समान होती हैं। उनके मध्यवर्ती पोले भाग से होकर रीढ़-रज्जु गुजरती है। रीढ़ के प्रत्येक मनके के बीच में और दोनों ओर छिद्र होता है। रीढ़-रज्जु की चेताओं के ३१ युग्म इन हड्डियों की दोनों ओर से एक-एक करके बाहर की ओर निकलते हैं। ये चेताएँ विविध स्नायुओं में पहुँचती हैं। रीढ़ की प्रत्येक हड्डी के बीच कूर्चा या उपास्थि होती है, जिसके कारण वह स्थितिस्थापक रहती है। रीढ़ गर्दन और कमर के पास आगे की ओर और छाती तथा पेडू के पास पीछे की ओर मुड़ी हुई है। इस प्रकार मेरुदण्ड या रीढ़ में चार मोड़ हैं।
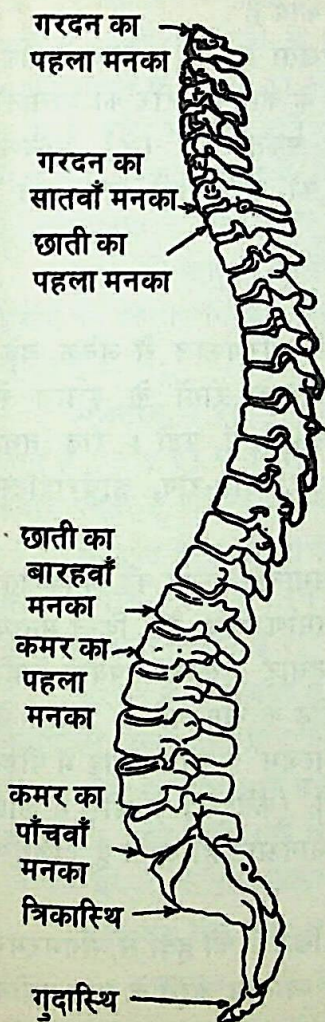
मेरुदण्ड या रीढ़ के निम्नलिखित कार्य हैं :

(१) मेरुदण्ड शरीर को सीधा रखता है। (२) मेरुदण्ड रीढ़-रज्जु की रक्षा करता है। (३) मेरुदण्ड के कारण शरीर को आसानी से आगे, पीछे और दोनों ओर मोड़ा जा सकता है। (४) मेरुदण्ड स्थितिस्थापक होने के कारण मस्तिष्क को झटके नहीं लग पाते। (५) मेरुदण्ड पर सिर टिका रहता है।

रीढ़ के रोग :

उन्नीसवीं सदी में मानव-प्रगति की हरिणफाल से अनेक नये-पुराने विज्ञान का विकास हुआ है। रीढ़ के रोगों के इलाज से संबन्धित विज्ञान की बुनियाद सन् १८९५ ई. में पड़ी। रीढ़ तथा अस्थियों की बीमारियों में केइव, गाउट, संधि-रोग, आर्थराइटिस मनकों के रोग समाविष्ट हैं।

चार पैरों से चलने और पृथ्वी के समानांतर रहने की अनुकूलता को ध्यान में रखकर प्रकृति ने रीढ़ का निर्माण किया है। किन्तु मनुष्य दो पैरों से चलकर रीढ़ की रचना के अनुसार उसका उपयोग नहीं करता। यही कारण है कि मनुष्य को रीढ़ के रोग अधिक प्रमाण में भोगने पड़ते हैं। कई लोगों को 'मसल स्पल्जम' के कारण रीढ़ में पीड़ा होती है। मनकों को जोड़नेवाली अस्थियों (फेसेट्स) के जोड़ में कोई व्याघात उत्पन्न होता है और अस्थियाँ स्थानभ्रष्ट हो जाती हैं; जिससे कमर में दर्द होते हैं।

ठण्डी हवा लगने से, पंखे या खुली खिड़की की हवा से, संगमरमर के फर्श या सिमेण्ट की बेंच पर बैठने से, व्यायाम करने के बाद पसीने से तर शरीर पर खुली हवा लगने से रीढ़, पसली या मुँह के एक ओर का लकवा हो जाता है।

मोरी की चिकनी सतह अथवा केले के छिलके पर फिसल जाने से, बच्चे को झटके के साथ उठाने से, खिड़की को जोर लगाकर धक्का मारने से, स्कूटर को कीक लगाने से या लम्बे अन्तर तक ड्राईविंग करने से कमर में पीड़ा होने लगती है। जोर से खाँसने से, उल्टी होने से अथवा करवट बदलने से दर्द होता है। इसे कमर का रह जाना (Lumbago) कहा जाता है।

जाड़े की ऋतु में खुली खिड़की से हवा के झोंके लगातार सीधे शरीर के किसी अंग को लगते रहें तो उस अंग को ऐसा रोग हो जाता है।

मस्तिष्क से रीढ़ में होकर शरीर के विविध अवयवों तक संदेश जाते हैं। रीढ़ की गति और उसके कार्य में व्याघात होने से नस पर दबाव पड़ता है, फलस्वरूप संदेश-व्यवहार में खामी उत्पन्न होती है।

मेरुदण्ड के सबसे नीचेवाले दो मनके स्थिर होते हैं। उस पर मेरुदण्ड गति करता है। इन मनकों में कोई खामी पैदा होने पर उसका सन्तुलन जाता रहता है।

गरदन के ऊपरवाले तीन मनकों में कोई खामी होने पर गरदन के पिछले हिस्से और सिर के निचले जोड़ में पीड़ा होने लगती है।

जोर से छींक आने पर भी कई बार रीढ़ के मनके स्थानभ्रष्ट हो जाते हैं। लम्बे समय तक बिस्तर में पड़े रहने से भी रीढ़ के मनकों में विविध प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

क्या करें और क्या न करें – कुछ सुझाव :

(१) बचपन से ही तनकर सीधे बैठने की आदत डालें।

(२) पैर लटकते रहें ऐसी किसी भी बेंच पर या पैरों को लटका-कर किसी अन्य स्थान पर न बैठें।

(३) सिर दीवार के साथ जोर से टकरा न जाय, इसका हमेशा ध्यान रखें।

(४) बहुत नरम गद्दों या ऊँचे सिरहानों का उपयोग न करें।

(५) ठण्डे फर्श, सिमेण्ट की बेंच या ठण्डी जमीन पर न बैठें।

(६) कमर की पीड़ा हो, उस वक्त किसी वजनदार वस्तु को न उठाएँ।

(७) एक्स-रे द्वारा निदान हुए बिना कोई इलाज न करवाएँ।

(८) छोटे बच्चे को पलने में इस प्रकार सुलाएँ कि उसकी रीढ़ सीधी रहे।

(९) रीढ़ की कसरतें अकसर करते रहें।

रीढ़ की विविध कसरतें :

रीढ़ को कार्यक्षम और प्राकृतिक स्थिति में रखनेवाली अनेक कसरतें हैं। उन्हें करने से सभी प्राणधारक अवयवों को निरोगी रखकर दीर्घायुष्य प्राप्त किया जा सकता है। रीढ़ को स्वस्थ और शक्तिशाली बनाये रखने के लिए यहाँ कसरतें प्रस्तुत हैं। ये कसरतें लेटकर, बैठकर और खड़े रहकर करने की हैं।

(१) चित लेटकर दोनों हाथों की उँगलियाँ परस्पर फंसाकर सिर के पीछे की ओर ले जाएँ। हाथ के साथ सिर और गर्दन को एक साथ यथासंभव ऊपर की ओर उठाइये। पीठ को मत उठाइये। केवल गर्दन और सिर ही उठाना है। गहरी साँस लेते हुए यह क्रिया करें। इस स्थिति में सिर को ५० सेकण्ड तक रखें। फिर सिर और गर्दन यथास्थान रखें।

इसी प्रकार लेटे-लेटे परस्पर मिलाई हुई हाथ की उँगलियों सहित सिर को ऊपर की ओर उठाकर दाहिनी ओर ले जाएँ। ५० सेकण्ड ऊपर

रखें। इसी प्रकार अब बायीं ओर ले जाएँ। ५० सेकण्ड ऊपर ही स्थिर रखें। फिर उसे यथास्थान पर ले आएँ। यह प्रयोग पाँच से पच्चीस बार करें।
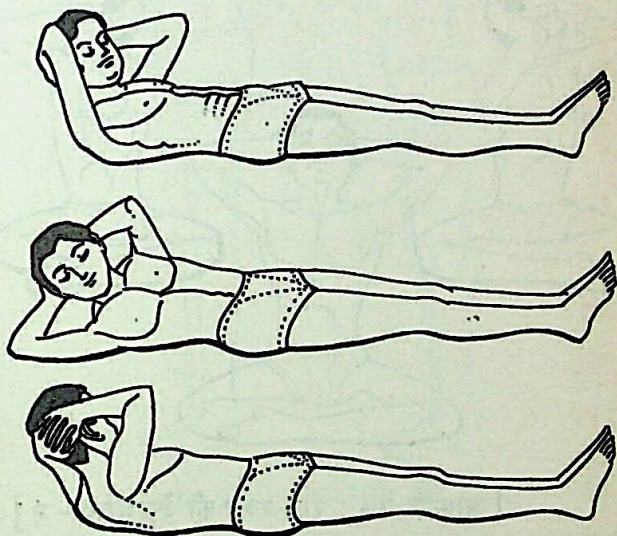
[आकृति २६ : रीढ़-रज्जु की देखभाल – १]

(२) आरामदेह बैठक पर सीधे (तनकर) बैठिए। दोनों हाथों की उँगलियाँ मिलाकर सिर के पीछे ले जाएँ। दोनों हाथों और गर्दन को (सिर के पिछले भाग को) आमने–सामने खींचें। शेष शरीर अर्थात् गले के नीचे का हिस्सा सीधा रखें। फिर इसी स्थिति में आगे की ओर जितना झुक सकें नीचे झुकें। ५० सेकण्ड तक इसी स्थिति में रहें। फिर पूर्व स्थिति में आ जाएँ। इसी स्थिति में सिर को पीछे की ओर ले जाएँ। इसी स्थिति में ५० सेकण्ड रहें। इसके बाद इसी स्थिति में

सिर को दाहिनी ओर ले जाकर ५० सेकण्ड स्थिर रहें। अन्त में सिर बायीं ओर ले जाकर इसी हालत में ५० सेकण्ड स्थिर रहें। अर्थात् यह
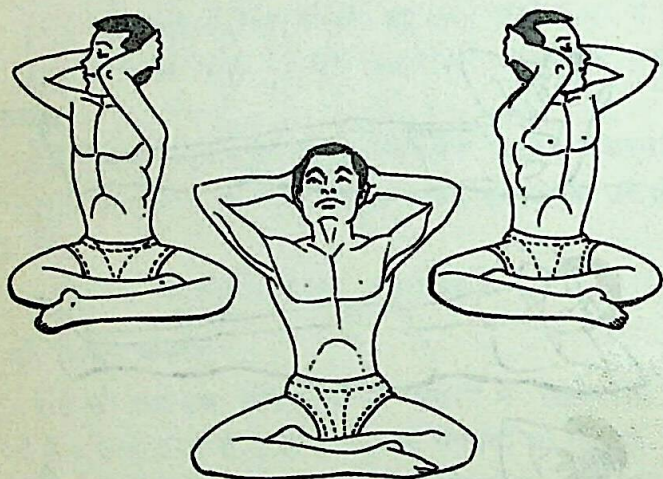
[आकृति २७ : रीढ़-रज्जु की देखभाल – २]

कसरत सीधी स्थिति में रहकर आगे, पीछे, दायें और बायें – इस प्रकार चार ढंग से करनी है। कसरत का यह प्रयोग ५ से २५ बार करें।

(३) यह कसरत खड़े–खड़े करनी है। दोनों हाथों की उँगलियाँ मिलाकर सिर के पीछे ले जाएँ। आमनेसामने खींचिए। शरीर को सीधा रखकर आगे की ओर ५० सेकण्ड का झुकाव दें। फिर पूर्ववत् स्थिति में आकर पीछे की ओर झुकाव दें। इसी प्रकार (२) के अनुसार चारों ओर अर्थात् आगे, पीछे, बायें और दायें ५० सेकण्ड का झुकाव दें। [देखिए आकृति २७–२८]
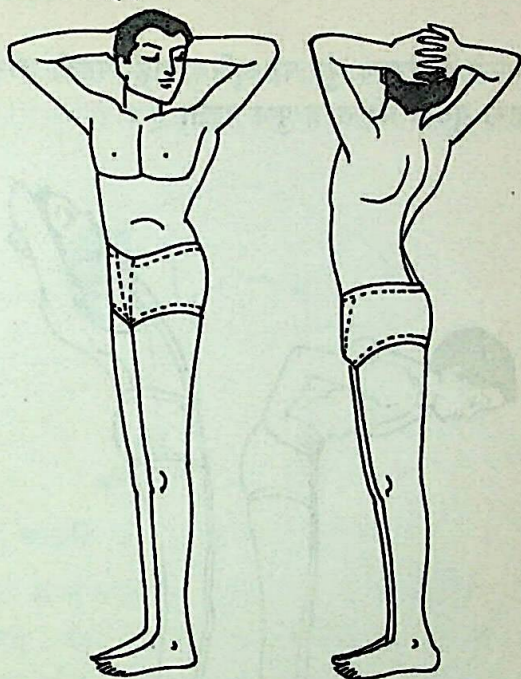
[आकृति २८ : रीढ़–रज्जु की देखभाल – ३]

इस कसरत से रीढ़ और पीठ के स्नायुओं को आवश्यक संकोच, विकास और खिचाव-तनाव का व्यायाम मिल जाने से रक्ताभिसरण गतिशील होता है और पीठ तथा रीढ़ का कोई रोग नहीं हो पाता। पीठ में कभी 'वायु' की पीड़ा नहीं उठती और यदि पीड़ा हो तो शीघ्र ही मिट जाती है।

इस कसरत से गर्दन के स्नायु मजबूत होते हैं। उम्र बढ़ने के बावजूद गर्दन की चमड़ी शिथिल नहीं हो पाती। इस कसरत से चेहरे पर तेजस्विता और चमक उत्पन्न होते हैं। चेहरे के स्नायुओं को

खिंचाव मिलने के कारण मुँह पर झुर्रियाँ नहीं पड़तीं और उम्र बढ़ने पर भी चेहरा युवान की तरह पुष्ट रहता है।
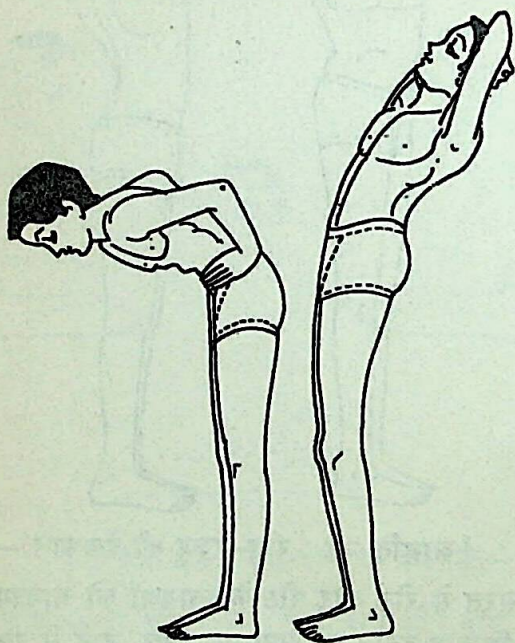
[आकृति २९]

दृष्टांत : एक बार मुझे पीठ का वातजन्य दर्द उठा था। रात को कुछ बारिश हुई थी। अतः हवा ठंडी हो गई थी। एक महत्त्वपूर्ण कार्य में व्यस्त होने से और बाहर गाँव जाना था इसलिए आवश्यक कसरत नहीं हो सकी। 'वात' की पीड़ा रह-रह कर उठती रहीं; किन्तु समय निकाल कर उपर्युक्त चित्र में प्रदर्शित कसरतें करने से तुरंत ही वात-पीड़ा गायब हो गई।

(४) उल्टे अर्थात् मुँह के बल लेट जाइये । हाथ सीधे रखकर हथेलियों और घुटनों के सहारे ऊपर की ओर उठिए (बच्चे गाय या
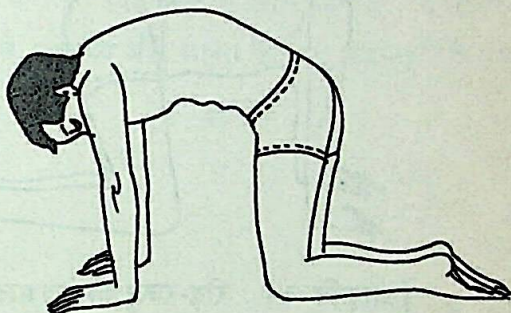
[आकृति ३० : रीढ़-रज्जु की देखभाल – ४]

घोड़ा बनकर खेला करते हैं – ठीक ऐसी स्थिति बनेगी ।) फिर रीढ़ को ऊँचा कीजिए । ऊपर छत का स्पर्श करने की भावना रखकर यथासंभव उसे ऊपर की ओर उठाइये । इस प्रकार रीढ़ गोलाकार बनेगी । इसी तरह रीढ़ को भी ऊँचा होने दीजिए ।

इस प्रकार यह कसरत एक मिनट तक करें ।

(५) ऊपर बताये अनुसार दोनों हाथ सीधे रखकर हाथ और घुटनों के सहारे ऊँचे उठिए । हाथ सीधे रखें । फिर गरदन और सिर को छत की ओर यथासंभव ऊपर की ओर उठने दें । इस प्रकार दाढ़ी को यथासंभव ऊँचे होने दें । साथ ही छाती, पेट और पेड़ को यथासंभव नीचे की ओर जाने दें । पेट और पेडू से जमीन को छू रहे हों इस भावना से पेडू और पेट को यथासंभव नीचे रखने का प्रयत्न करें । इस प्रकार डण्ड पेलने की स्थिति होगी । यह कसरत एक मिनिट तक करें ।
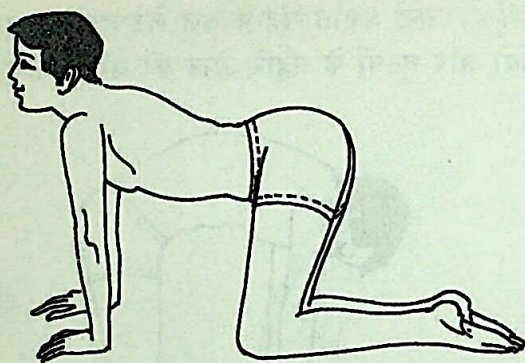
[आकृति ३१ : रीढ़-रज्जु की देखभाल – ५]

चौथी और पाँचवीं कसरत क्रमशः कीजिए। एक बार साँस लेकर अर्थात् 'कुंभक' करके, फिर साँस छोड़कर अर्थात् 'रेचक' करके – एक-एक मिनट तक करें।

यह कसरत पाँच से दस बार करें।

इस प्रयोग से रीढ़ के अवयव कोमल एवं ऐसे चपल बन जाएँगे कि आप जिस प्रकार उन्हें मोड़ना चाहें उस प्रकार मुड़ जाएँगे।

उम्र बढ़ने के साथ शरीर में जरठता आती है। स्नायु कठोर और कड़े होते जाते हैं। विशेषकर रीढ़ के अवयव कड़े हो जाते हैं; जिसके कारण हलन-चलन में हरकत होने लगती है। कमर टेढ़ी हो जाती है। फलस्वरूप चाल टेढ़ी, झुकी हुई, धीमी और शिथिल हो जाती है।

रीढ़-सम्बन्धी विकृतियों से बचने के लिए और उसकी स्थिति-स्थापकता, स्नायुओं की चपलता, जवानी का जोश, चमड़ी की कोमलता एवं चेहरे की कांति बनाए रखने के लिए अर्थात् अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने में ये कसरतें सफल सिद्ध हुई हैं।

इन कसरतों को करनेवाले व्यक्ति में वृद्धत्व के चिह्न दिखाई नहीं देते। इस पुस्तक के अध्याय–८ की कसरतों में से नं. १, ४ और ७ विशेषतः रीढ़ के लिए विशेषरूप से आयोजित हैं। ये तीनों कसरतें रीढ़ या मेरुदण्ड के स्वास्थ्य और शक्ति के लिए जड़ी-बूटी के समान हैं।

२६. पैरों की नसों का फूलना

जिन लोगों को लम्बे समय तक खड़े रहकर या पैर लटकते रहें इस प्रकार बैठकर कार्य करना पड़ता है ऐसे लोगों के पैरों की नसें फूल जाती हैं, नसों में रक्त भर जाता है। और कुछ समय में गाँठें पैड़ने लगती हैं। सामान्यतः घुटनों के नीचे के भाग में स्थित कुछ नसों में यह विकार होता है। यह रोग होने का कारण इस प्रकार है : पैरों की कुछ नसें ढीली पड़कर कमजोर हो जाती हैं। उतने हिस्से में रक्त का परिभ्रमण व्यवस्थित नहीं हो पाता। नसों की निर्बलता के कारण रक्त का नीचे की ओर बहनेवाला प्रवाह पूर्णतः लौट नहीं पाता। फलस्वरूप रक्त घुटनों के नीचे के हिस्से में स्थगित हो जाता है और नसें फूल जाती हैं। अन्त में उसमें गाँठें बँध जाती हैं।

यह रोग प्रायः वृद्धावस्था में ही दिखाई देता है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह रोग जवान व्यक्तियों को नहीं होता। ऐसे प्रमादी और आलसी लोगों श्रम, मेहनत, मजदूरी या कसरत नहीं करते, उन्हें यह रोग सहज ही हो जाता है, क्योंकि उनकी नसें निर्बल हो जाती हैं।

नसों की निर्बलता दूर करें : जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इस रोग का मूल कारण रुधिराभिसरण की मन्दता के कारण रक्त का जम जाना ही है। योग्य कसरतें करने से रक्ताभिसरण गतिशील होता है और रक्त स्थगित नहीं हो पाता। जैसे ही रक्त अच्छी तरह भ्रमण करने लगता है, यह रोग मिट जाता है।

प्रातःकाल शरीर के अवयव शिथिल होते हैं। इस समय कसरत करने से अपेक्षित परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। प्रातःकाल

बिस्तर में लेटे-लेटे अध्याय आठ में निर्दिष्ट करसतें करें। साथ-साथ ये कसरतें भी करें। हथेलियों से फूलती हुई नसों को ऊपर-नीचे घर्षण देने से रक्त की गति में सुधार होता है। नसों को मलने या मसाज करने से उन्हें आवश्यक शक्ति और स्फूर्ति मिल जाती है। घर्षण मिलते ही नसें यथावत् काम करने लगती हैं। रक्ताभिसरण को गति मिलने से रोग हमेशा के लिए मिट जाता है। प्रारंभ में लगभग बीसेक बार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर फूली हुई नसों को मलें अर्थात् उन्हें मसलें, दबाएँ और घर्षण का व्यायाम दें। जैसे-जैसे इस प्रकार का घर्षण दिया जाएगा वैसे-वैसे नसें मुलायम होती जाएँगी और उन्हें आवश्यक क्षमता भी प्राप्त हो जाएगी। यदि प्रतिदिन मनोयोगपूर्वक यह प्रयोग किया जाए तो निस्संदेह आराम मिलता ही है।

पीलपाँव या हाथीपाँव के रोग का कारण भी, संभव है, ऐसा कुछ हो। रुधिराभिसरण में आवश्यक क्षमता और शक्ति न होने के कारण रक्त के प्रवाह को ऊपर की ओर बहने के लिए धक्का नहीं लग पाता। कुर्सी में बैठे-बैठे या चलते-चलते गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त के अनुसार प्रवाही रक्त नीचे की ओर खिचता है। रक्ताभिसरण की शक्ति द्वारा पूरे शरीर में रक्त प्रवाहित रखना पड़ता है। नसों में आवश्यक शक्ति न होने पर रक्त व्यवस्थित रूप से शरीर में परिभ्रमण नहीं कर पाता। गुरुत्वाकर्षण के कारण केवल नीचे ही नीचे एकत्रित होते रहने से पैर में उसकी तहें जमती चली जाती हैं। पैर के पंजे, उँगलियों और पिण्डली के स्नायु में रक्त जम जाता है और सख्त बन जाता है। बहुत संभव है इसी प्रकार पीलपाँव का आरंभ होता होगा।

नसों में रक्त न जमने पाये और नसें फूलकर मोटी न होने पाएँ इसके लिए निम्नलिखित प्रयोग आजमाएँ :

नीचे जमीन पर बैठकर दोनों पैरों की मालिश करें । इसके बाद दोनों हाथों की मुट्ठियों से दोनों पैरों को थपथपाएँ। इससे जमी हुई नसें ढीली हो जाएँगी, रक्त का परिभ्रमण होने लगेगा और रक्ताभिसरण को वेग मिलेगा ।

चित लेट जाइए । एक कुर्सी पर, अपनी ऊँचाई से आधी ऊँचाई हो, इस प्रकार दो-तीन तकिये रखें । अब आप कुर्सी के पास और उसके ठीक सामने चित लेट जाइये । दोनों पैरों की एड़ियों को सटाकर तकिये पर रखिए । इसके बाद दोनों हाथों की कुहनियाँ जमीन पर टिकाकर शरीर को ऊपर उठाइये । इस प्रकार शरीर को उठाने से पीठ, कमर और कुर्सी पर स्थित एड़ियाँ एक ही सीधे ढलाव में आ जाएँगी । पूरे शरीर का वजन कन्धों और एड़ी पर पड़ेगा । (देखिए आकृति २३) यह कसरत ५० सेकण्ड तक करें। इस कसरत से रक्त का जमा हुआ अतिरिक्त जत्था अलग होने लगेगा । इसके बाद एड़ी का भाग यथा-स्थिति में रखकर केवल कमर का भाग ढीला करें और जमीन को छुलाएँ । इस स्थिति में पैर के स्नायु ढीले रखकर एक मिनट यों ही पड़े रहें । यह कसरत पाँच बार करें। तत्पश्चात् पैरों को नीचे लेकर बैठे-बैठे ही रोगग्रस्त हिस्से को मसलें । इस प्रयोग से नसें मुलायम बनकर आवश्यक क्षमता प्राप्त करेंगी और रक्ताभिसरण की क्रिया को गतिशील रखने में समर्थ होंगी । इसके अतिरिक्त अध्याय ८ में निर्दिष्ट, लेटकर की जानेवाली कसरतें भी करें । इससे पैरों की नसों को विभिन्न प्रकार की कसरतें मिलने से वे सशक्त बनेंगी और गुरुत्वाकर्षण का सामना करने की शक्ति प्राप्त करेंगी । फूली हुई नसें पुनः मूल स्थिति में आ जाएँगी ।

रात को सोने से पहले उपर्युक्त प्रयोग करें । इसके बाद भिगोकर निचोड़े हुए नेपकिन या तौलिये से जाँघ से लेकर पैर के तलवे तक

के हिस्से को चार-पाँच मिनट मसाज दें। अन्त में एक सूखे तौलिये से पैरों को सूखा घर्षण देकर सो जाएँ।

इस प्रकार की कसरत का प्रयोग प्रतिदिन न कर सकें तो भी यदा-कदा अवश्य किया करें।

जिस प्रकार समय पर स्टेशन पहुँचने के लिए हम सम्पूर्ण पूर्व-तैयारी और काफी दौड़धाम करते हैं, ठीक उसी प्रकार विधिवत् परम-धाम पहुँचने के लिए किसी न किसी स्वास्थ्यकारी कार्य में अपने तन, मन और आत्मा को रात-दिन व्यस्त रखना चाहिए। हम प्रत्येक दिन का इस प्रकार उपयोग करें मानो वह हमारे जीवन का अन्तिम दिन हो! संसार की व्यर्थ बातों में न हम स्वयं ही कभी रुचि रखें और न ही ऐसी बातों में रस रखनेवाले व्यक्तियों को उत्तेजन दें। मानवं को खबर नहीं है कि वह अपने सिर पर कितना बड़ा जोखिम या बोझ लेकर असावधान अवस्था में भटक रहा है! यदि हम वन्द खिड़की-दरवाजे-वाले कमरे के अन्दर किसी जहरीले जीवित साँप के साथ रहते हों तो क्या हम एक पल के लिए भी बेखबर रह सकेंगे? अस्वस्थता के निवारण एवं स्वस्थता के निर्माण के लिए हमारे जीवन में इस प्रकार की जागृति आनी ही चाहिए।

२७. निरोगी रहने के लिए चमड़ी की सुश्रूषा करें

चमड़ी शरीर की सुरक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। वह ठण्ड, धूप, गर्मी, सर्दी, हवा और रोग के जंतुओं आदि से शरीर की रक्षा करती है। चमड़ी में असंख्य छिद्र हैं। हमारे शास्त्रों के अनुसार हमारी त्वचा में साढ़े तीन करोड़ छिद्र हैं। पाश्चात्य डॉक्टरों ने या आयुर्वेद ने इन छिद्रों की कोई निश्चित संख्या नहीं दी है किन्तु कुछ लोगों की गणना के अनुसार इन छिद्रों की संख्या पचास लाख है। इन छिद्रों से पसीने के रूप में शरीर का अन्दरूनी मल, कचरा, विजातीय द्रव्य आदि शरीर के बाहर निकल जाता है। त्वचा के नीचे बारीक नसों का जाल–सा बिछा हुआ है। इन नसों में रुधिराभिसरण की क्रिया निरंतर चालू रहती है। त्वचा की वैज्ञानिक ढंग से सुरक्षा और सँभाल न रखी जाए तो हम अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं। अतः त्वचा का वैज्ञानिक अध्ययन करना आवश्यक है।

ठण्डी गर्मी के सन्दर्भ में शरीर के समस्त अंगों का अध्ययन करने पर विदित होता है कि पूरे शरीर में पैरों के तलवे सबसे कम गर्म हैं। तत्पश्चात् कुछ विशेष गर्म हैं कमर और कमर का पूरा घेरा। पेट और वक्ष-स्थल समशीतोष्ण एवं सिर 'तथा ललाट अन्य अंगों की अपेक्षा विशेष गर्म रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि सिर शरीर का सबसे अधिक गर्म अंग और पैर के तलवे सबसे अधिक ठण्डे अंग हैं। इस वैज्ञानिक तथ्य की जानकारी सभी को होनी चाहिए। सिर सर्वाधिक गर्म रहने-वाला अंग होने के कारण गर्मी के दिनों में खुले सिर धूप में नहीं घूमना चाहिए। सिर की गर्मी, चलने से उत्पन्न होनेवाली गर्मी और

सूर्य की गर्मी—इन सबका अतिरेक होने से सिरदर्द, आँखों में जलन आदि तकलीफें होने लगती हैं। लू लगने से, बेहोश हो जाने तथा हृदय-गति रुक जाने से मरने तक की अनेक दुर्घटनाएँ ग्रीष्म ऋतु में सुनने को मिलती हैं। अत: —

(१) गर्मी के दिनों में सिर पर सफेद टोपी, हॅट, साफा या गमछा अवश्य पहनना चाहिए। खुले सिर धूप में कभी न घूमें।

(२) गर्मी के दिनों में भीगा नेपकिन सिर पर रखिए।

(३) सख्त धूप में बाहर निकलने की जरूरत पड़े तो सफेद कपड़े के छाते का उपयोग करें। यथासंभव धूप में पैदल आवागमन न करें। ताँगा, रिक्शा या मोटर का उपयोग करना ही उचित है।

(४) गर्मी की ऋतु में कच्चे आम और प्याज का कचूमर बनाकर भोजन में प्रयोग कीजिए और छाछ पीजिए।

(५) ग्रीष्म ऋतु में रबर के तलेवाले जूते न पहनें। रबर ठंडी-गर्मी का सुवाहक है। धूप में रबर के जूते पहन कर कोलतार की गर्म सड़क पर चलने से उत्पन्न होनेवाली गर्मी आँखों के लिए हानिकारक है। इससे पैरों के तलवे गर्म होते हैं, जो गात्रों को अस्तव्यस्त कर डालते हैं।

(६) भोजन में श्रीखण्ड, दही, मठा, छाछ, प्याज और प्रवाही आहार को प्रधानता दें। मावे की मिठाइयों और नमकीन व्यंजनों का कम से कम प्रयोग करें। भरपेट भोजन न करें। गरिष्ठ भोजन अधिक मात्रा में लेकर धूप में बाहर न निकलें।

इसी प्रकार ठंडी से पैरों के तलवे अधिक ठण्डे न हों — इसके लिए हमें सतर्कता एवं सावधानी रखना आवश्यक है। शरीर में सबसे अधिक ठण्डे अवयव पैर के तलवे हैं। जाड़े की ऋतु में भीगे या ठण्डे टाइल्स,

सिमेण्ट या संगमरमर के फर्श एवं रात को अतिशय ठण्डी हुई हो ऐसी रेत या लॉन पर खुले पैर चहलकदमी नहीं करनी चाहिए। रात में ठण्ड से बचने के लिए पैरों में गर्म मोजे पहनना जरूरी है। पैर के तलवों में ठण्ड लग जाने से सर्दी-जुकाम तथा वायु-पीड़ा हो जाती है। शरीर के खुले अंगों को ठण्ड का अतिशय संसर्ग होने पर वात, संधिवात, गाउट या लकवा जैसे रोग होते हैं। अत्यधिक शीत में रुधिराभिसरण की क्रिया में मंदता आती है। अवयव शिथिल होकर सुन्न पड़ जाते हैं और कभी-कभी पक्षाघात का रोग हो जाता है।

इससे स्पष्ट होता है कि शरीर का आरोग्य और स्वास्थ्य त्वचा पर आधारित है। अतः चर्मरोगों का प्रतिकार करने के लिए चमड़ी की पर्याप्त देखभाल रखनी चाहिए।

(क) त्वचा की क्षमता बनाए रखने के लिए तेल-मालिश महत्त्वपूर्ण क्रिया है। चमड़ी के ऊपर तेल से मर्दन करने से त्वचा के छिद्र खुल जाते हैं, जिससे विजातीय द्रव्यों को बाहर निकलने का मार्ग मिल जाता है। मालिश की रगड़ से शरीर की त्वचा गर्म होती है, जिससे रक्ताभिसरण की क्रिया में गति आती है; त्वचा सक्षम, स्निग्ध और कोमल हो जाती है।

(ख) त्वचा को सूखा घर्षण दीजिए। सूखे तौलिये से त्वचा को रगड़िए। खुले बदन को सूखे तौलिये से पोंछिए। इससे त्वचा के छिद्र खुल जाते हैं और त्वचा के नीचे स्थित रक्त के जत्थे में हलन-चलन होने से त्वचा में रोगों का प्रतिकार करने की शक्ति बढ़ती है।

(ग) त्वचा को शीतल पानी से धोएँ। भीगे और ठण्डे तौलिये से शरीर के अवयवों को रगड़ने से रोग-प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है और रक्ताभिसरण में त्वरित वेग आता है।

(घ) ठण्डे और गर्म पानी से क्रमशः स्नान करने से रक्ताभिसरण गति और स्फूर्ति उत्पन्न होती है।

प्रस्वेदन भी त्वचा और शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। पसीना निकलने पर उसे सूखे तौलिये से पोंछ डालें। यदि पसीना अधिक होता हो तो ठण्डे पानी से नहाना चाहिए। पसीना निकलने पर खुली हवा में न बैठें। अन्यथा पसीने का बाष्पीभवन होने के कारण ठण्ड का झकोरा लग जाने से सर्दी पकड़ लेती है। पसीना होते ही उसे तुरंत पोंछ डालें और शरीर को खुली हवा न लगे इसका ख्याल रखें।

पसीना न हो तो समझ लें कि कोई रोग है। त्वचा के छिद्र बंद हो गये हों तो पसीना नहीं होता। ऐसी दशा में फोड़े-फुंसी, खुजली, दाद, घमौरियाँ आदि चर्मरोग होते हैं।

सामान्यतः नोकरी-धन्धे से घर लौटने पर ठण्डे जल से स्नान करने की आदत डालिए। यदि पसीना निकल रहा हो तो उसे सूखे तौलिये से पोंछकर फिर ठण्डे पानी से नहाना चाहिए।

सर्दी-जुकाम का इलाज :

शरीर के किसी एक अंग पर ठण्ड का असर होते ही शरीरभर में झुनझुनी फैल जाती है। जुकाम के कारण छींकें शुरू हो जाती हैं। छींक के जोश से होनेवाली क्रिया गर्मी उत्पन्न करने की एक प्राकृतिक कसरत है। इससे जुकामपीड़ित शरीर को राहत मिलती है। छींक इस बात की सूचक है कि पूरा शरीर सर्दी-जुकाम और शीत से आक्रान्त हो चुका है। इसके उपचार के लिए लोग गर्म प्रवाही भाप का नास लेते हैं। कुछ लोग बाष्पस्नान (Steam-bath) लेते हैं। कुछ लोग गर्मी उत्पन्न करने के लिए सिर, कान, पैर आदि अंगों में ऊनी कपड़े लपेटते हैं।

सर्दी दूर करने का एक सादा, सरल और सामान्य उपचार यहाँ प्रस्तुत है —

एक तौलिया भिगोकर, निचोड़ कर उससे पूरे शरीर को भीगा मसाज दीजिए। बाहर की हवा का सीधा झोंका न लगने पाये इसलिए खिड़की, दरवाजे और पंखे बन्द रखिए। कपड़े उतारकर नंगे बदन स्टूल पर बैठकर भीगे तौलिये से जोर देकर शरीर को रगड़िए। शुरू-शुरू में थोड़ी ठण्ड महसूस होगी, किन्तु फिर तुरन्त गर्मी का आविर्भाव होगा। पैरों के तलवे, सिर, कान आदि अंगों को भीगा घर्षण दें। घर्षण होते ही त्वचा गर्मी को पकड़ लेगी, ठण्डा मसाज करते ही त्वचा का समीपवर्ती रक्त ठण्डा पड़ने पर भीतर की ओर धँसेगा। इससे शरीर भर में त्वचा के नीचे जमा हुआ रक्त जत्थे में वाहर से भीतर की ओर धँसेगा। इससे तथा बाह्य मसाज के घर्षण से तुरंत ही गर्मी उत्पन्न हो जाएगी और त्वचा की ओर गर्म रक्त का प्रवाह बहने लगेगा। समग्र शरीर की त्वचा की ओर एक साथ गर्म रक्त का प्रवाह धँस जाने से सारी सर्दी अदृश्य हो जाएगी। यह प्रयोग करने के वाद तुरंत ओढ़कर सो ज़ाइये। यह प्रयोग किसी भी समय किया जा सकता है, फिर भी रात के समय करने में विशेष अनुकूलता रहेगी। प्रयोग करने के बाद तुरंत ओढ़कर सो जाना अनिवार्य है। आवश्यक लगे तो यह प्रयोग दिन में दो बार करें।

त्वचा की देखभाल करनेवाले ऐसे प्रयोग बार-बार करते रहेंगे तो कभी चर्मरोग नहीं होंगे और आवश्यक रोग-प्रतिकारक शक्ति प्राप्त होगी।

चर्मरोग और नमक :

ऐसी एक मान्यता है कि नमक और दूध या दूध और प्याज एकसाथ खाने से कुष्ठ रोग हो जाता है। दूध में नमक डालने से दूध

फट जाता है। शरीर में नमक नहीं डालना चाहिए, क्योंकि शरीर भी दूध का बना हुआ है। मनुष्यमात्र का प्रमुख आहार दूध और अनाज है। बच्चों को दाद-खाज, खुजली और फोड़े-फुंसियाँ आदि चर्मरोग होने लगें तो उन्हें तुरंत नमक बंद कर दें। मिर्च से भी हमें शरीर के लिए कोई पोषक तत्त्व नहीं मिलता। उसका प्रयोग केवल स्वाद के लिए ही होता है। मिर्च से और विशेषत: हरी मिर्च से दाद, खाज, खुजली और फोड़े-फुंसियाँ आदि चर्मरोग होते हैं। चर्मरोग केवल दवाओं से नहीं मिटेंगे। दवा के साथ नमक-मिर्च का उपयोग बन्द कर दें। याद रखिए, परहेज से ही रोग निर्मूल होता है।

खिचड़ी में नमक होता है, इसलिए दूध और खिचड़ी परस्पर विरोधी भोजन हैं। चर्मरोग से पीड़ित व्यक्ति दूध और खिचड़ी साथ-साथ न खाएँ। इसी प्रकार दूध की बनी मिठाइयों के साथ भी नमकीन पदार्थ नहीं खाने चाहिए। जिन्हें शरीर के किसी भी अंग से रक्तस्राव हो, जठर में पीड़ा-जलन होती हो, कोई चर्मरोग हो उनके लिए चावल की खीर, दूध-भात, दूध-रोटी आदि नमक-मिर्च से रहित आहार उपयोगी है।

रोग कहीं बाहर से नहीं आता, किन्तु आहार से ही उत्पन्न होता है। विरुद्ध आहार से ही रोग को आमंत्रण मिलता है। यही कारण है कि रोग-मुक्त होने के लिए आयुर्वेद में परहेज पर अत्यधिक भार दिया गया है।

२८. आँख की कसरत और देख-भाल

१. बाह्य लक्षण : आँख एक अत्यंत नाजुक इन्द्रिय है। खोपड़ी के आगे के हिस्से में हड्डियों के गढ़े में आँखें सुरक्षित हैं। इन गढ़ों में चर्बी का आच्छादन होता है जिससे साधारण आघात से आँखों को सुरक्षा प्राप्त हो सकती है।
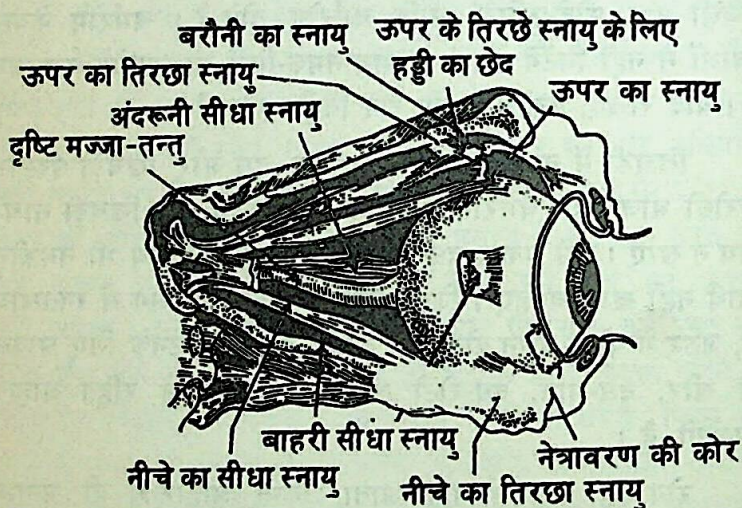
[आकृति ३२]

आँख के अण्डाकार डेले (eyeball) का व्यास २.५ से. मी. के लगभग होता है। उसका अधिकांश हिस्सा ढँका रहता है। आगे की ओर आँखें खुली रहती हैं। यह हिस्सा भी पलकों के द्वारा बंद हो सकता है। प्रत्येक पलक में इच्छावर्ती स्नायु होते हैं। ऊपर की पलक में उपास्थि का एक पतला टुकड़ा होता है। पलक पर बाहर

से कोमल त्वचा का आवरण होता है और भीतरी हिस्से में अन्तः त्वचा का नेत्रावरण होता है। बाहरी जीव-जन्तुओं और रजकणों से पलकें और बरोनियाँ आँखों की रक्षा करती हैं। आँखों की भौंहें ललाट के पसीने को आँखों के भीतर जाने से रोकती हैं।

इतने पर भी यदि कोई पदार्थ आँख में चला जाय तो आँसुओं के प्रवाह के साथ बहकर बाहर निकल जाता है। अश्रुग्रन्थि आँख के गढ़े में बाहर की ओर ऊपरी हिस्से में होती है और उसमें से अश्रुनलिका द्वारा प्रवाही निकलकर आँख को गीली और साफ रखता है।

आँख के साथ चार आड़े और दो तिरछे – इस प्रकार छह स्नायु जुड़े होते हैं। उनके संकुचित होने से आँख सभी दिशाओं में हलन-चलन कर सकती है। देखते समय दोनों डेलों का हलन-चलन एकसाथ और एक ही दिशा में होता है।

२. रचना : आँख के डेले के तीन आवरण होते हैं :
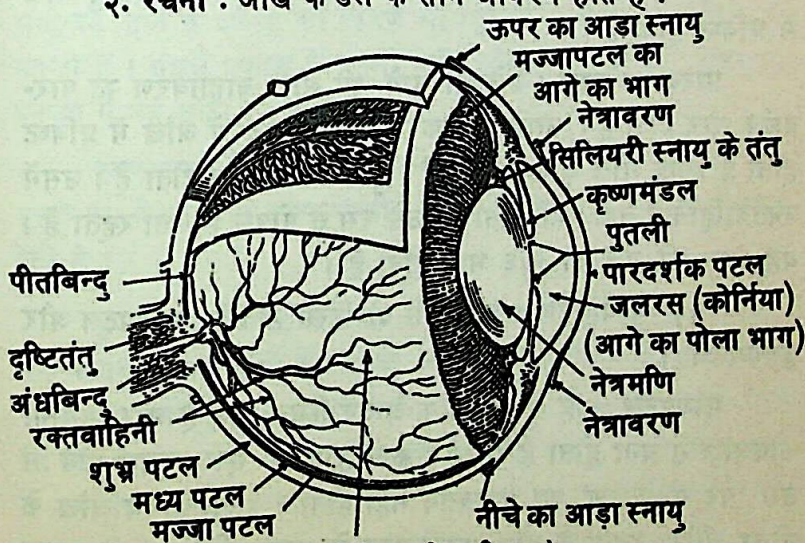
ऊपर का आडा स्नायु
मज्जापटल का आगे का भाग
नेत्रावरण
सिलियरी स्नायु के तंतु
कृष्णमंडल
पुतली
पारदर्शक पटल
जलरस (कोर्निया) (आगे का पोला भाग)
नेत्रमणि
नेत्रावरण
नीचे का आड़ा स्नायु
पीतबिन्दु
दृष्टितंतु
अंधबिन्दु
रक्तवाहिनी
शुभ्र पटल
मध्य पटल
मज्जा पटल
काँचरस (पीछे का पोला हिस्सा)

[आकृति ३३]

(१) बाह्यावरण, (२) मध्यावरण और (३) अन्तरावरण (मज्जा पटल)।

(१) बाह्यावरण : इसके भी दो हिस्से हैं : शुभ्रपटल और पारदर्शक पटल।

शुभ्रपटल : शुभ्रपटल श्वेत तंतुओं से बना अपारदर्शक कठोर पटल है और वह डेले की सतह का ५/६ भाग पीछे की ओर रोकता है। उस पर आगे के हिस्से में पारदर्शक पटल होता है। दोनों की कोर के पास अन्त:त्वचा का नेत्रावरण होता है।

शुभ्रपटल की बाहरी सतह पर चार आड़े और दो तिरछे इस प्रकार छह स्नायु जुड़े होते हैं। उनके संकोचन से आँख का डेला आस-पास और ऊपर-नीचे घूम सकता है।

शुभ्रपटल के पीछे से मस्तिष्क के साथ जुड़ा हुआ दृष्टितन्तु आँख में प्रविष्ट होता है।

पारदर्शक पटल : डेले की आगे की ओर बाह्यावरण का पारदर्शक स्तर होता है। उसमें से होकर बाहर की किरणें आँख में प्रविष्ट होती हैं। यह गोल आकार का और कुछ उभरा हुआ होता है। उसमें रक्तवाहिनियाँ नहीं होतीं इसलिए उसे रस से पोषण मिलता रहता है। यह पटल पूरे डेले का १/६ भाग होता है।

(२) मध्यावरण : इसके भी दो हिस्से होते हैं : मध्यपटल और कृष्णमंडल।

मध्यपटल : यह शुभ्रपटल के अन्दर स्थित स्तर है और संयोगी कोषजाल से बना होता है। उसमें काले रंग का एक पदार्थ होने से उस पर से प्रकाश का परावर्तन नहीं होता। इसके कारण आँख के भीतर अँधेरा रहता है और बाहरी वस्तु के स्पष्ट प्रतिबिम्ब की रचना

होती है। इस आवरण में रक्तवाहिनियाँ होती हैं। इसके पिछले हिस्से से दृष्टितंतु आँख में प्रविष्ट होता है।

कृष्णमण्डल : जिस स्थान पर शुभ्रपटल और पारदर्शक पटल एक-दूसरे से मिलते हैं वहाँ मध्य पटल का एक खड़ा पर्दा होता है। उसे कृष्ण मण्डल कहा जाता है। इस पर्दे के मध्य भाग में एक छिद्र होता है। इसे आँख की 'पुतली' कहते हैं इसमें से होकर प्रकाश की किरणें आँख में प्रविष्ट होती हैं।

पुतली के आसपास दो प्रकार के स्नायु होते हैं; एक गोलाकार और दूसरे वृत्त की त्रिज्याओं की भांति जमे हुए गोलाकार स्नायु के संकोचन से पुतली छोटी हो जाती है। दूसरे प्रकार के स्नायुओं में खिचाव से पुतली का छिद्र बड़ा हो जाता है। इस प्रकार पुतली के छोटे-बड़े होने से प्रकाश की किरणें भी न्यूनाधिक मात्रा में प्रविष्ट हो सकती हैं। धुँधले प्रकाश में पुतली बड़ी होती है जबकि तेजयुक्त प्रकाश में वह छोटी हो जाती है।

कृष्णमण्डल के पर्दे के पिछले हिस्से पर एक रंगीन द्रव्य होता है। इसके रंग के अनुसार आँख काली, कंजी, नीली या आसमानी दिखाई देती है।

कृष्णमण्डल के पर्दे की कोर के समीप अन्दरूनी हिस्से में सिलियरी स्नायु के तन्तु होते हैं। इनके साथ आँख के नेत्र काँच की थैली का बन्धन बुना होता है। सिलियरी स्नायु के संकोचन से उक्त थैली खिचती है, नेत्रकाँच पतला हो जाता है और स्नायु के शिथिल पड़ने से नेत्रकाँच बीच से मोटा हो जाता है। इस प्रकार सिलियरी स्नायु नेत्रकाँच की केन्द्र-लम्बाई को घटाने-बढ़ाने का कार्य करता है।

(३) अन्तरावरण (नेत्रपट, मज्जापटल) : दृष्टितन्तु आँख में प्रविष्ट होने के बाद अनेक शाखाओं में बँट जाता है और मध्यपटल के भीतरी भाग में छा जाता है। इससे आँख के भीतर के २/३ हिस्से का आच्छादन बन जाता है। इसे मज्जापटल या नेत्रपट कहते हैं। यह आँख के डेले (eyeball) के पिछले हिस्से में होता है। यह बहुत नाजुक और पारदर्शक आवरण है।

नेत्रपट में कोष और तन्तु की अनेक परतें दिखाई देती हैं। उसके मध्य भाग में जहाँ सलाई और शंकु आकार के कोष अधिक होते हैं उसे 'पीत बिन्दु' कहते हैं। यहाँ अनेकों शंकु होते हैं, जिन पर बाहरी वस्तु में से आनेवाली किरणों से वस्तु के प्रतिबिम्ब की रचना होने पर उनका उद्दीपन होता है और जिसकी प्रेरणा दृष्टि-तन्तु द्वारा मस्तिष्क को पहुँचती है। वहाँ वस्तु को देखने की संवेदना उत्पन्न होती है। इस प्रकार पीतबिन्दु का दृष्टिज्ञान तीव्र होता है।

जहाँ से दृष्टितन्तु आँख में प्रविष्ट होते हैं उस जगह नेत्रपट पर शंकु नहीं होते। इसलिए वहाँ निर्मित होनेवाले प्रतिबिम्ब की प्रेरणा मस्तिष्क को नहीं मिलती इस स्थान को 'अन्धबिन्दु' कहा जाता है।

३. नेत्रमणि (नेत्रकाँच, दृक्काँच) : यह बहिर्गोल काँच के आकार का एक पारदर्शक पदार्थ है। यह कृष्णमण्डल के पीछे होता है। इसमें प्याज की भाँति अनेक परतें होती हैं। इसका पिछला भाग अगले भाग की अपेक्षा अधिक उभरा हुआ होता है। इसके आसपास पारदर्शक थैली का आवरण होता है। इस थैली के छोर सिलियरी स्नायु के तन्तुओं के साथ गुँथे हुए होते हैं। सिलियरी स्नायु के आकुंचन प्रसरण से नेत्रकाँच मोटा-पतला होने पर उसकी केंद्र-लम्बाई में परिवर्तन होता है।

४. आँख के विभाग : नेत्रमणि और कृष्ण-मण्डल से आँख के दो विभाग पड़ जाते हैं : अगला विभाग और पिछला विभाग।

अगला विभाग : आगे की तरफ कृष्णमण्डल और पारदर्शक पटल के बीच का विभाग छोटा होता है। उसमें पानी जैसा पारदर्शक प्रवाही होता है।

पिछला विभाग : पिछले विभाग में काँचरस (तेजाब-रस) नामक एक अर्धप्रवाही द्रव्य होता है। वह भी पारदर्शक होता है। जलरस और काँचरस के कारण आँख के गोले का आकार यथावत् बना रहता है।

५. द्विनेत्र दृष्टि : आँख में जो प्रतिविम्ब पड़ता है वह उल्टा होता है, किन्तु हम उसे सीधा देखने के अभ्यस्त हो जाते हैं। दूसरे, हमारी दोनों आँखों में एक ही वस्तु के दो प्रतिबिम्बों की रचना होती है। किन्तु दोनों आँखों के ज्ञानतन्तु उक्त प्रतिबिम्बों की प्रेरणा मस्तिष्क के एक ही केन्द्र में ले जाते हैं। जिससे हमें ऐसा प्रतीत होता है मानो हम एक ही प्रतिविम्ब पा रहे हैं। दो आँखों से देखने के कारण ही हमें वस्तु की लम्बाई, मोटाई और उसके अन्तर का स्पष्ट बोध होता है। सुई में धागा पिरोते समय यदि हम अपनी एक ही आँख खुली रखते हैं तो हमें सुई के छेद और धागे के छोर की स्थिति का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता और हमें सुई के छेद में धागा पिरोने में तकलीफ पड़ती है।

६. दूरस्थ और समीपस्थ वस्तुएँ देखना : बाहर की वस्तु की किरणें जब आँख के पारदर्शक माध्यमों से गुजर कर नेत्रपट के पीत-बिन्दु पर स्पष्ट प्रतिबिम्ब की रचना करती हैं तभी हमें वस्तु दिखाई देती है। नेत्रपट पर स्पष्ट प्रतिबिम्ब रचने में नेत्रमणि का योगदान मुख्य है।

नेत्रमणि के पार्श्व भाग बीच से फूले हुए होते हैं; इसलिए उसे बहिर्गोल दृक्काँच कहा जा सकता है। बहिर्गोल काँच में उभरनेवाले प्रतिबिम्ब का स्थान, काँच की केन्द्र-लम्बाई और वस्तु के अन्तर पर निर्भर है।

नेत्रपट पर स्पष्ट प्रतिबिम्ब रचे जाने पर ही वह वस्तु स्पष्ट दिखाई देती है। वस्तु समीप हो या दूर हो तो भी नेत्रपट और नेत्रमणि के बीच का अन्तर समान ही रहता है। मतलब कि नेत्रमणि की केन्द्र-लम्बाई में वस्तु के अन्तर के अनुसार कमी-बढ़ती हो तो ही नेत्रपट पर स्पष्ट प्रतिबिम्ब की रचना होती है।

जब हमें कोई दूरस्थ वस्तु देखनी होती है तब सिलियरी स्नायु के आकुंचन से नेत्रमणि की थैली खिंच जाती है और दृक्काँच पतला हो जाता है। इससे उसकी केन्द्र-लम्बाई बढ़ती है तथा वस्तु का स्पष्ट प्रतिबिम्ब काँच की केन्द्र-लम्बाई के अन्तर पर नेत्रपट पर पड़ता है।
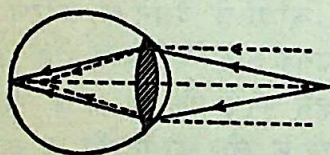
पास में देखते समय नेत्रमणि मोटा हो जाता है।
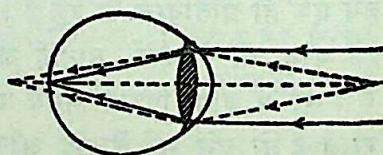
दूर देखते समय नेत्रमणि पतला हो जाता है।

[आकृति ३४]

निकटवर्ती वस्तु देखनी हो तब नेत्रमणि मोटा हो जाता है। इसलिए उसकी केन्द्र-लम्बाई घटती है और वस्तु का प्रतिबिम्ब काँच के मुख्य केन्द्र से कुछ दूर अर्थात् ठीक नेत्रपट पर पड़ता है।

नेत्रमणि में आकार-परिवर्तन की गजब शक्ति होती है। पलक झपकते ही हम अत्यंत दूरस्थ वस्तु से निकटवर्ती वस्तु पर दृष्टि टिका सकते हैं। कॅमरा या प्रकाश के अन्य साधनों में इतनी सरलता और शीघ्रता से यह क्रिया नहीं हो सकती। नेत्रमणि की इस शक्ति को दृष्टिमेल कहा जाता है।

७. लघु दृष्टि : लघु दृष्टि की क्षति में आँख का डेला अधिक लम्बा हो जाता है। इसलिए दूर से आनेवाली समानान्तर किरणें नेत्रपट के आगे के हिस्से में एकत्रित होकर प्रतिविम्ब की रचना करती हैं। कई बार काँच मोटा हो जाता है इसलिए उसकी केन्द्र-लम्बाई कम होने के कारण दूरवर्ती वस्तु का प्रतिबिम्व नेत्रपट के आगे की ओर पड़ता है। फलस्वरूप दूरवर्ती वस्तु स्पष्ट दिखाई नहीं देती; किन्तु फिर भी इन दोनों स्थितियों में निकटवर्ती वस्तु का प्रतिबिम्ब नेत्रपट पर उभरने में कोई तकलीफ नहीं पड़ती, इसलिए पास की वस्तुएँ साफ देखी जा सकती हैं।
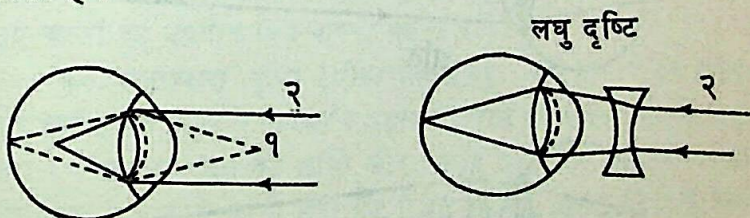
[आकृति ३५]

आँख की इस क्षति को लघु दृष्टि कहा जाता है। यह त्रुटि विशेषत: बालकों और युवकों में दिखाई पड़ती है। दूर की वस्तु देखने के लिए उन्हें अन्तर्गोल काँच के चश्मों का उपयोग करना पड़ता है। दूर से आनेवाली किरणें अन्तर्गोल काँच में से होकर गुजरते समय

कुछ विस्फारित होकर (फैलकर) आँख में जाती हैं। इसलिए वस्तु का प्रतिबिम्ब पहले की अपेक्षा कुछ पीछे, ठीक नेत्रपट पर उभरता है और वस्तु को साफ देखा जा सकता है।

८. लंबी दृष्टि, गुरु दृष्टि या दीर्घ दृष्टि : आँख का डेला चपटा हो जाने से आसपास का अन्तर कम हो जाता है। तब आँख में लंबी दृष्टि की क्षति उत्पन्न होती है। उसमें, दूरवर्ती वस्तु में से आनेवाली किरणें नेत्रकाँच से नेत्रपट पर केन्द्रित होकर प्रतिबिम्ब बनाती हैं और निकट-वर्ती वस्तु में से आनेवाली किरणें नेत्रपट के पिछले हिस्से में कुछ दूर केन्द्रित होकर प्रतिबिम्ब बनाती हैं। इसलिए दूर की वस्तु स्पष्ट देखी जा सकती है, किन्तु निकटवर्ती वस्तु साफ दिखाई नहीं देती। कई बार नेत्रकाँच पतला हो जाने के कारण यह क्षति उत्पन्न होती है।
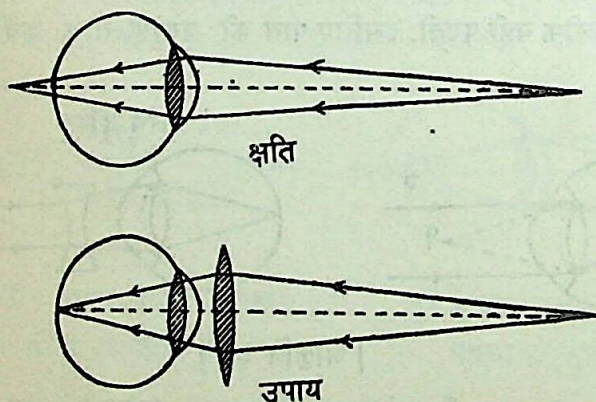
[आकृति ३६]

इस प्रकार की क्षति सामान्यतः बड़ी उम्र के व्यक्तियों में पाई जाती है। ऐसे लोग निकट की वस्तुएँ देखने के लिए बाहिर्गोल काँच के

चश्मों का उपयोग करते हैं। निकटवर्ती वस्तु में से आनेवाली किरणें बहिर्गोल काँच में से होकर गुजरती हैं तब वक्रीभवन के कारण कुछ केन्द्रित होती हैं और एक–दूसरे के करीब आती हैं। इस कारण पास की वस्तु का प्रतिबिम्ब ठीक नेत्रपट पर बनता है और वह स्पष्ट दिखाई देती है।

९. **बयालीसा (वृद्ध दृष्टि)** : कुछ व्यक्तियों के नेत्रमणि की स्थितिस्थापकता चालीस-बयालीस वर्ष की उम्र के बाद कम हो जाती है। साथ ही सिलियरी स्नायु की शक्ति भी कम हो जाती है। इन दो कारणों से उनका नेत्रमणि अमुक सीमा तक ही फूल पाता है। नेत्रमणि पतला रहने के कारण नजदीक की वस्तु का प्रतिबिम्ब ठीक नेत्रपट पर पड़ने की बजाय कुछ पीछे की ओर पड़ता है, इसलिए पास की वस्तु साफ दिखाई नहीं देती। इस त्रुटि को हम 'बयालीसा आ गया' कहते हैं। इस प्रकार की क्षतिवाले व्यक्ति पास की वस्तु देखने के लिए बहिर्गोल दृक्काँचवाले चश्मों का उपयोग करते हैं। उन्हें दूर की वस्तु देखने के लिए चश्मों का उपयोग नहीं करना पड़ता।

१०. **अस्तव्यस्त दृष्टि (एँस्टिग्मेटिजम)** : इस प्रकार की क्षति-वाले व्यक्ति की आँख के पारदर्शक पटल का मोड़ सर्वत्र एक समान नहीं होता। पारदर्शक पटल की आड़ी और खड़ी धुरी के मोड़ में थोड़ा फर्क होता है। इससे आड़ी धुरी पर स्थित वस्तुएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं जबकि खड़ी धुरी पर स्थित वस्तुएँ अस्पष्ट दिखाई देती हैं। इसी प्रकार जब खड़ी धुरी पर स्थित वस्तुएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं तब आड़ी धुरी पर स्थित वस्तुएँ अस्पष्ट दिखाई देती हैं। दोनों धुरियों से आने-वाली किरणों का केन्द्रीकरण नेत्रपट पर एक स्थान पर नहीं होता। फलतः पास के, दूर के अथवा दोनों अन्तर के पदार्थ अस्पष्ट दिखाई देते हैं।

यह क्षति दूर करने के लिए ऐसे सिलिण्ड्रिकल काँच के चश्मे पहनने पड़ते हैं जिनकी एक ओर की सतह बाहिर्गोल और दूसरी ओर की सतह समतल होती है।

आँख की कसरतों से आँख को लाभ :

शरीर के किसी भी स्नायु को कसरत मिलने पर उसके कद, शक्ति और स्थितिस्थापकता तथा चमक में वृद्धि होती है। यह नियम शरीर के प्रत्येक अवयव को समानरूप से लागू होता है। आँख छह प्रकार के स्नायुओं से सुरक्षित है। इन छहों स्नायुओं को कसरत देने से आँख के कद, तेज, शक्ति, चमक और स्फूर्ति में वृद्धि होती है, आँख रोगरहित होती है और उसे रोग का सामना करने के लिए आवश्यक प्रतिकारक शक्ति प्राप्त करती है। धुँधलापन, बयालीसा जैसी आँख की क्षतियाँ, मोतियाबिन्द, आँखों में अँधेरा छा जाना, आँख की पीड़ा होना, आँख का लाल होना आदि चक्षु-रोग दूर हो जाते हैं। आँख की कसरत प्रतिदिन न हो सके तो कम-से-कम सप्ताह में दो बार करने से भी आँख निरोगी रहती है और साथ ही वह रोग के विरुद्ध प्रतिकारक शक्ति भी प्राप्त कर लेती है।

आँख की कसरतें : ये कसरतें बिस्तर में लेटे–लेटे, बैठकर और खड़े-खड़े की जा सकती हैं।

(१) बिस्तर में लेटे-लेटे, बैठे-बैठे और खड़े-खड़े यथासंभव निरंतर दूर, दाहिनी ओर, बायीं ओर, ऊपर, नीचे एवं चारों ओर लगातार टकटकी लगाकर (त्राटक का प्रयोग कर रहे हों इस प्रकार) देखने का प्रयत्न करें।

(२) आँखों को जोर से खोलें और बन्द करें।

(३) आँखों की खोलने-मूँदने की कसरत जोर देकर क्रमशः करें, अर्थात् जब एक आँख खुली रखें, उस समय दूसरी आँख बन्द रखें ।

(४) दोनों आँखों को गोल चक्राकार गति में घुमाएँ । दूर क्षितिज की ओर दृष्टि रखकर दोनों आँखों को घुमाएँ । इस प्रकार दोनों आँखों को हलन-चलन और खिचाव-तनाव का व्यायाम दें ।

(५) रात को खुली जगह में लेट जाइये । लेटे-लेटे दूर-सुदूर आकाश, चंद्र तथा तारों के सामने टकटकी लगाकर देखने का प्रयत्न करें । आँखों में आँसू भर आएँ तबतक निरंतर देखते रहने की कसरत करें । इतना याद रखें कि यह प्रयोग सूर्य, धूप अथवा तेज रोशनीवाले विद्युत गोले के सामने कदापि न करें । केवल रात्रि के समय और वह भी आकाश तथा चाँद-तारों की ओर देखते हुए यह प्रयोग करना है ।

(६) कुछ लोगों की दृष्टि दूरवर्ती पदार्थों को देख नहीं सकती । ऐसे लोगों को बाह्य त्राटक करना चाहिए और चंद्र, तारे, प्रकाशित नक्षत्र, तृणाच्छादित पर्वत-शिखर, हरीभरी वनश्री या अन्य किसी दूरस्थ लक्ष पर दृष्टि स्थिर करने का प्रयत्न करें । इस व्यायाम से आँख की क्षति दूर हो जाती है, आँख का तेज बढ़ता है और कालांतर में आँख पूर्ववत् हो जाती है ।

(७) चलते समय दृष्टि दूर रखें । दूरवर्ती वृक्ष, मकान, बिजली के खम्भों की ओर दृष्टि रखकर चलने की आदत डालिए । इससे आँखों का तेज बढ़ेगा । निरंतर नीचे की ओर देखकर चलने से दृष्टि थक जाती है, आँखें दुखती हैं और सिर-दर्द होने लगता है । ऐसा अनुभव हमें प्रायः उस समय होता है, जब हम पहाड़ी, वन्य अथवा पथरीले ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में लगातार नीची दृष्टि रखकर गुजरते हैं ।

(८) दिन में दो-चार बार आँखों पर ठण्डे जल का छिड़काव करें। ठण्डा जल आँखों के लिए टॉनिक के समान है। कई जानकार लोग प्रायः आँखों को शीतल जल का स्नान दिया करते हैं। कुछ लोग नदी, तालाब या डोल के पानी में आँखें डुबोकर उन्हें खोलने-मूँदने की क्रिया करते हैं। इससे आँखों को कसरत और ताज़गी प्राप्त होती है।

सन् १९८१ के जून-जुलाई महीनों में गुजरातभर में आँखों का संक्रामक रोग फैल गया था। आँखें लाल होकर तीन-चार दिनों तक दुखती रहती थीं। लोगों को समझाया गया था कि अन्य किसी भी प्रकार का इलाज करने की बजाय दिन में पाँच-सात बार आँखों पर ठण्डा पानी छिड़कें। ऐसा करने से अनेक लोगों को एक-दो दिन में ही आराम हो गया था।

(९) लिखते-पढ़ते समय प्रकाश सीधा आँखों पर न पड़े, बल्कि
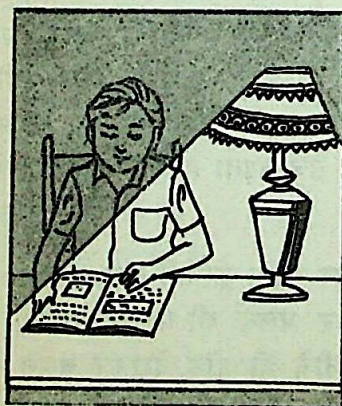
(सही तरीका)
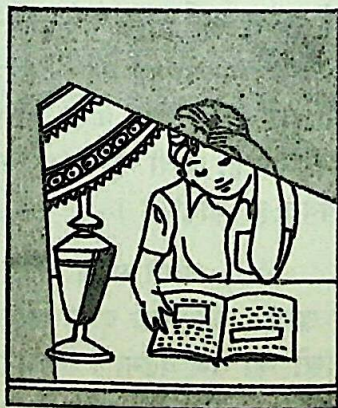
(गलत तरीका)

[आकृति ३७ : पढ़ने की आदतें]

पीछे से या बायीं ओर से आए, ऐसा आयोजन करें। दिन में भी सूर्य की किरणें सीधे ही आँखों या पुस्तक पर न पड़ें ऐसी व्यवस्था करें। बस या रेलगाड़ी में यात्रा करते समय सूर्य की किरणें सीधे ही आँखों पर न पड़ें ऐसी बैठक पसंद करें। इस प्रकार की सुविधा उपलब्ध न हो तो आँखें बन्द रखें और रूमाल को भिगोकर उससे आँखें ढँक दें।

(१०) धुंधले प्रकाश में पढ़ने-लिखने का काम न करें। पढ़ने-लिखने की क्रिया पर्याप्त प्रकाश में ही करनी चाहिए ताकि आँखों को खींचना न पड़े। इसी प्रकार झिलमिलाते प्रकाश से भी बचना चाहिए।

(११) धुँधले और महीन अक्षरों की या अतिशय बारीक टाइप की हुई लिखावट न पढ़ें, क्योंकि इससे भी आँखें खिचती हैं और आँखों को हानि पहुँचती है।

(१२) तेज रफ्तार से चलनेवाले और ऊपर-नीचे उछलनेवाले वाहन में बैठे-बैठे अधिक न पढ़ें। इससे आँखों को अधिक श्रम पड़ता है। इसके विपरीत आँखें बन्द रखकर उन्हें आराम देना चाहिए।

(१३) लेट-लेटे भी नहीं पढ़ना चाहिए। इसी प्रकार टेढ़े होकर, तिरछे लेटकर, तकिये का सहारा लेकर भी नहीं पढ़ना चाहिए। पुस्तक को आँखों के नीचे रखकर ही लिखना-पढ़ना चाहिए। चहलकदमी करते-करते नहीं पढ़ना चाहिए। लिखने-पढ़ने के लिए कुर्सी-मेज का उपयोग करना चाहिए। प्रकाश की अनुकूल व्यवस्था करने के बाद सीधे (तनकर) बैठकर लिखना-पढ़ना चाहिए।

(१४) शीर्षासन और सर्वांगासन आँख की रोशनी बढ़ाने के लिए अत्यावश्यक हैं। 'हठ योग-प्रदीपिका' में बताया गया है कि ८० वर्ष की अवस्था में भी शीर्षासन करनेवाले व्यक्ति को मोतियाबिन्द नहीं आता; आँखों का तेज बढ़ता है और बड़ी उम्र तक रोग-प्रतिकारक

शक्ति सुरक्षित रहती है। इन आसनों को करते समय आँखें बन्द रखनी चाहिए।

(१५) आँखों में जलन होती हो, आँखें लाल हो गई हों, लगातार फिल्में देखने से आँखों में पीड़ा होती हो या ऊत्र से आँखें थक गई हों तो आँखें बन्द करके, चित लेटकर 'शवासन' करें। फिर गहरी साँसें लेते हुए दूरस्थ हरे-भरे वृक्षों पर दृष्टिपात करें। आँखों पर ठण्डा पानी छिड़कें। आँखें मूँदकर विश्राम करें। थोड़ी ही देर में थकावट दूर हो जाएगी और आँखें यथावत् हो जाएँगी।

(१६) नारायण तेल से धड़ के ऊपरी हिस्से की मालिश कीजिए। सिर, कान, नाक, गर्दन, ललाट, आँखें, गाल और दाढ़ी के नीचे स्थित टेंटुए के इर्द-गिर्द का कोमल प्रदेश – इन समस्त अंगों की हल्के हाथों से मालिश करें और फिर उन्हें बिल्कुल धीमे-धीमे ठोकिए या थपथपाइए। ऐसा करने से रक्त गतिमान बनता है और विकृति दूर होकर स्वास्थ्य-लाभ होता है। इन अवयवों को कार्यशील रखने के लिए यदि प्रतिदिन संभव न हो तो सप्ताह में दो दिन अवश्य मालिश करें।

ठोकने-थपथपाने की उक्त क्रिया सप्ताह में दो बार की जाय तो भी अपेक्षित लाभ प्राप्त होता ही है। इसी प्रकार सिर और गरदन को अर्थात् छोटे मस्तिष्क और बड़े मस्तिष्क को मालिश करने से और थपथपाने से रक्ताभिसरण को फौरन वेग मिलता है तथा उपर्युक्त अंगों को पर्याप्त रक्त-प्रवाह मिलता रहता है।

विटामिन 'ए', 'बी', 'सी', 'डी' आँखों के लिए उपयोगी हैं :

आँखों के लिए विटामिन 'ए', 'बी', 'सी' और 'डी' अत्यन्त उपयोगी हैं। विटामिन और आँखों के लिए आवश्यक विविध प्रकार के खनिज मुख्यतः हरी सब्जियों और फलों में होते हैं।

विटामिन 'ए' वाले पदार्थ : दूध, मक्खन, छाछ, घी, कॉडलीवर तेल, पके आम, पपीता, तरबूज, गाजर, छुहारा, अंजीर, संतरा, खजूर, पत्तागोभी, टमाटर, करेला, चौलाई, पालक तथा मेथी की भाजी, अरवी (घुइयाँ), सहिजन की पत्तियों की भाजी, अजवाइन की पत्तियों की भाजी, हरा धनिया, पुदीना, नागरबेल के पत्ते, नीम के पत्ते, सोयाबीन आदि ।

विटामिन 'ए' के अभाव में रतौंधी, धुँधले प्रकाश में कम दिखना, आँखें शुष्क और निस्तेज रहना आदि तकलीफें होती हैं । ये विटामिन पर्याप्त मात्रा में लेने से दृष्टि व आँखें सतेज रहती हैं ।

विटामिन 'बी' भी आँखों के लिए बहुत उपयोगी है । उसमें भी 'बी' मुख्य है, जिसे थायामिनन के नाम से जाना जाता है । यह विटामिन मुख्यत: दूध, अण्डा, दही, सेव, संतरा, केले, द्राक्ष, ककड़ी, कुम्हड़ा, हरी मटर, करेला, गाजर, मूली, गोभी, सोयाबीन, गेहूँ का चोकर, नारियल, बादाम, किसमिस, मूँगफली, मूँग, मोठ, अरहर आदि से प्राप्त होता है ।

विटामिन 'बी' की कमी से आँखों में दर्द होना, उनमें से पानी टपकना, आँखों की जलन आदि तकलीफें होती हैं । तदुपरान्त भूख कम लगना, वजन कम होना, ज्ञानतन्तुओं की अशक्ति आदि व्याधियाँ महसूस होती हैं । ज्ञानतन्तुओं का केन्द्रस्थान मस्तिष्क है । मस्तिष्क और आँखों में परस्पर गहरा सम्बन्ध है । ज्ञानतन्तुओं को स्वस्थ रखने में ये विटामिन महत्त्वपूर्ण योग देते हैं । आँखों से देखने का केन्द्र (Visual centre in the brain) मस्तिष्क के पिछले हिस्से में स्थित है उसे इनसे पुष्टि मिलती है ।

विटामिन 'सी' भी एक महत्त्वपूर्ण विटामिन है । आँखों का जल्दी थक जाना, फुर्ती कम होना, आँखों में भारीपन महसूस होना आदि तकलीफें विटामिन 'सी' की कमी से उत्पन्न होती हैं ।

इस विटामिन के लिए खट्टे-मीठे फलों का सेवन करना चाहिए । इस प्रकार के फलों में आँवले, नीबू, सन्तरे, मोसम्बी, अमरूद, चकोतरा, जामुन, तरबूज, नासपाती, पपीता, बेर, सेव, करेले, गोभी आदि मुख्य हैं ।

विटामिन 'सी' प्राप्त करने का सर्वोत्तम तरीका है प्रतिदिन प्रातःकाल ठण्डे पानी में आधा नीबू निचोड़ कर वह खट्टा जल पीना । जिन्हें जोड़ों की पीड़ा न हो उन्हें नीबू का यह जल अवश्य पीना शुरू कर देना चाहिए । कुछ प्रसिद्ध वैद्यों का मत है कि यदि आजीवन आँखें स्वस्थ रखनी हों तो प्रतिदिन प्रातःकाल नीबूवाला खट्टा जल पियें । आँवलों की ऋतु में नीबू की जगह एक बड़ी चम्मच आँवले का रस मिलाकर पियें । जोड़ों की तकलीफवालों को भी आँवले के जल से कोई हानि नहीं होती ।

विटामिन 'डी' मुख्यतः दूध, दही, मक्खन, कॉडलीवर तेल आदि पदार्थों में से प्राप्त होता है । सूर्य की प्रातः कालीन लाल किरणों में से भी विटामिन 'डी' अपेक्षित मात्रा में प्राप्त हो जाता है । इस विटामिन का असर भी आँखों पर अच्छा होता है । इससे ज्ञान-तन्तुओं को पोषण प्राप्त होता है ।

२९. कान की रचना और देख-भाल

[प्रस्तुत अध्याय का प्रयोजन-कान की रचना, कान के रोगों का परिचय और उसके घरेलू उपचारों से पाठक को परिचित कराना है। फिर भी कर्णरोग की असामान्य स्थिति में डॉक्टर या वैद्य का परामर्श एवं उपचार कराना अनिवार्य है।]

कान शरीर का संवेदनशील अवयव है। वह सुनने का कार्य करता है। वह शारीरिक सन्तुलन को बनाये रखने का कार्य भी करता है। बहरे व्यक्ति को सुनने की क्रिया में व्याघात होने पर उसमें एक प्रकार की लघुता-ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है। बचपन से ही पूर्णतः बहरापन आ गया हो तो व्यक्ति का वाणी-विकास भी नहीं हो पाता। फलस्वरूप व्यक्ति गूँगा बन जाता है और ऐसी दशा में वह घर-समाज के लिए एक भारी समस्या रूप बन जाता है।

कान की रचना : कान के तीन विभाग होते हैं – (१) बाह्य-कर्ण, (२) मध्यकर्ण और (३) अन्तः कर्ण।

(१) **बाह्यकर्ण :** इस विभाग में बाहर दिखाई देनेवाला कान, कर्णनलिका और कान के पर्दे का समावेश होता है। बाहर का कान टेढ़ी-मेढ़ी उपास्थि (कास्थि या कूर्चा) का बना होता है। वह बाहर से खोपड़ी की हड्डियों के साथ स्नायु और अस्थि-बन्धन से जुड़ा होता है। इस पर और कर्णनलिका के भीतर त्वचा की परत होती है।

बाहरी कान : यह ध्वनि-तरंगों को एकत्रित करके कर्णनलिका में भेजता है।

कर्णनलिका : यह लगभग तीन से. मी. लम्बी होती है और अन्दरूनी भाग में कुछ ऊपर की ओर मुड़ी होती है। उसका अन्दरूनी भाग

अस्थियों का और बाहरी भाग उपास्थि का बना होता है। इसके बाहरी छोर के पास एक ग्रन्थि होती है। उसमें से मोम जैसा पदार्थ नलिका में आता है। इस पदार्थ से कान के अवयव मुलायम रहते हैं और रुधिराभिसरण सरलता के साथ गतिमान रहता है। तदुपरान्त नलिका के बाहरी हिस्से में बारीक बाल होते हैं। वे सूक्ष्म कीटाणुओं और रजकणों आदि को कान के भीतर प्रविष्ट होने से रोकते हैं।
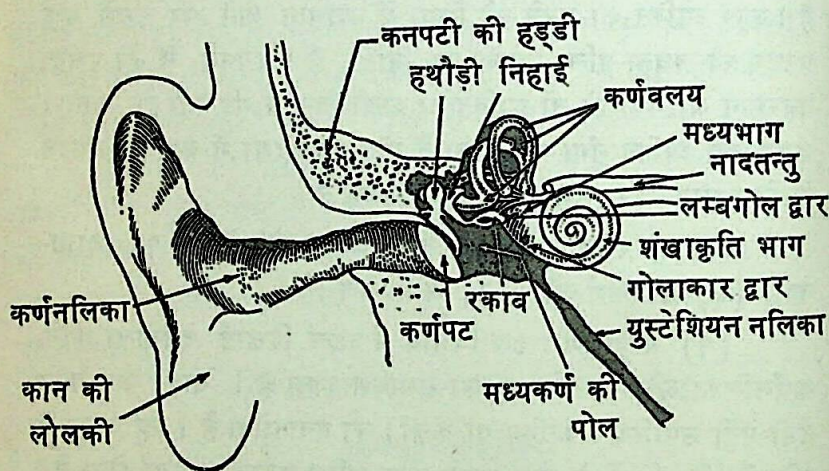
[आकृति ३८]

कर्णनलिका के भीतर छोर पर पतला, लम्बगोल पर्दा होता है, जिसे कर्णपट (कान की ढोल) कहा जाता है। यह तना हुआ रहता है और ध्वनि-स्पन्दनों के टकराने पर कंपित होता है।

(२) **मध्यकर्ण :** कान का यह भाग कर्णपट के पीछे होता है। खोपड़ी की कनपटी की हड्डी में जो छिद्र होता है उसके पोले भाग में ही यह भाग स्थित है। इस पोले भाग में से युस्टेकियन नामक नलिका

निकल कर गले में जाती है। यह लगभग २·५ से. मी. लम्बी होती है। उसमें अन्तःत्वचा का आवरण होता है जो गले की अन्तःत्वचा से जुड़ा होता है। इस नली में हवा रहती है। जब कोई भारी आवाज कान से टकराती है तब इसकी कुछ हवा संकुचित होकर बाहर निकल जाती है। ऐसी स्थिति में बाहर और भीतर की हवा का दबाव एक समान बना रहता है। इससे कर्णपट फट नहीं पाता।

मध्यकर्ण की पोल में तीन छोटी हड्डियाँ होती हैं। आकार के आधार पर इन्हें हथोड़ी, निहाई और रकाब नाम दिये गये हैं। हथोड़ी का हत्था कर्णपट से जुड़ा होता है। उसका चौड़ा भाग निहाई को छूता है। निहाई का दूसरा छोर रकाब के साथ जुड़ा होता है। रकाब का दूसरा हिस्सा अन्तकर्ण के बाहरी छिद्र पर स्थित पर्दे पर होता है।

कर्णपट के कम्पन का असर इन तीन अस्थियों द्वारा अन्तःकर्ण के पर्दे तक पहुँचता है।

(३) आन्तर्कर्ण : कान का यह भाग ठेठ अन्दरूनी हिस्से में कनपटी की हड्डी के त्रिभुजाकार भाग में होता है। उसकी रचना गुफा जैसी अटपटी होती है। इसलिए उसे 'अस्थिकुहर' कहते हैं। उसमें इस गुफा के ही आकार की एक पतले आवरण की थैली 'त्वक्कुहर' होती हैं। इस थैली में एक प्रकार का प्रवाही होता है। गुफा के बाहर के सख्त स्तर और अन्दरूनी थैली के अन्तःत्वचा जैसे स्तर के बीच भी एक अन्य प्रवाही होता है।

अन्तःकर्ण की गुफा के तीन भाग होते हैं : मध्यभाग, शंखाकृति भाग और अर्धगोलाकार कर्णवलय।

मध्यभाग : यह अस्थिकुहर के बीच का पोला हिस्सा है। उसके भीतर मस्तिष्क के आठवें मज्जातंतु की अनेक शाखाएँ फैली हुई हैं।

इसके बाहर की ओर स्थित लम्बगोल द्वार के पतले पर्दे पर रकाब का एक छोर होता है। यहाँ मध्यकर्ण से आनेवाले ध्वनि-आंदोलन आन्तर् कर्ण में प्रविष्ट होते हैं। मध्यभाग में ऊपर पीछे की ओर स्थित तीन अर्ध वृत्ताकार नलिकाओं के पाँच छिद्र होते हैं। इसके आगे की ओर शंखाकृति भाग होता है।

कर्णवलयों की तीन नलियों में से एक नली खड़ी, एक आड़ी और एक तिरछी होती है। उसमें से दो नलियाँ एक-दूसरे के साथ एक ओर जुड़ी हुई होती हैं। इसलिए मध्यभाग में नलियों के छह के स्थान पर पाँच मुख होते हैं। प्रत्येक नली के मुख में श्रवणतन्तु की शाखा फैली हुई होती हैं, जिससे उसका मुख के पासवाला भाग फूला हुआ है।

कर्णवलयों के कार्य : (१) कर्णवलय में से श्रवणतन्तु की शाखा बाहर निकलकर छोटे मस्तिष्क की ओर जाती है और उसके द्वारा कर्णवलय छोटे मस्तिष्क को शरीर का सन्तुलन बनाये रखने में मदद करते हैं।

(२) शरीर के अवयवों की भिन्न-भिन्न स्थितियों के अनुसार नलियों के भीतर स्थित एण्डोलिफ और पेरिलिफ नामक दोनों प्रकार के प्रवाहियों पर पड़नेवाला दबाव बदलता रहता है। उससे उत्पन्न होनेवाली प्रेरणा मस्तिष्क में पहुँचती है और अवयवों की स्थिति तथा उनकी गतिविधि का मस्तिष्क को ज्ञान होता है।

शंखाकृति भाग का आकार शंख के समान होता है। उसके बाहर गोलाकार द्वार होता है। इस द्वार पर स्थित पर्दे के कारण मध्यभाग और शंखाकृति भाग का पोला हिस्सा अलग पड़ जाता है।

शंखाकृति भाग में नादतन्तु के छोर जुड़े होते हैं। अन्तःकर्ण में प्रविष्ट होनेवाले ध्वनि-आन्दोलनों से ये छोर उत्तेजित होते हैं और

उसकी प्रेरणा नाद-तन्तु (आठवाँ मज्जातन्तु) द्वारा श्रवण-केन्द्र में पहुँचती है।

सुनने की क्रिया कैसे होती है ?

जब दो वस्तुएँ टकराती हैं तब कम्पन उत्पन्न होता है। कम्पन के कारण हवा के माध्यम में ध्वनि-आन्दोलन उत्पन्न होते हैं। इनमें कुछ ध्वनि-तरंगें बाह्यकर्ण के द्वारा कर्णनलिका में से होकर कर्णपट पर जा टकराती हैं और उससे पर्दा काँपने लगता है।

मध्यकर्ण में पर्दे के साथ जुड़ी हुई हथोड़ी की हड्डी निहाई की हड्डी पर टकराती हैं और निहाई का दूसरा छोर रकाब की हड्डी को कंपन का असर पहुँचा देता है। रकाब की हड्डियों का दूसरा पार्श्व अन्तः-कर्ण से जुड़ा होता है। जोड़ के स्थान पर अन्तःकर्ण के मध्यभाग का पर्देवाला द्वार होता है। रकाब के कम्पनों का असर उक्त द्वार के पर्दे पर पड़ता है। इस प्रकार आवाज के आन्दोलन का असर अन्तःकर्ण में भी पहुँच जाता है।

अन्तःकर्ण में पहुँचने के पूर्व मध्यकर्ण में ध्वनि के आन्दोलन कुछ प्रबल बन जाते हैं। अन्तःकर्ण की गुफा में पतले आवरण के बाहर और भीतर पेरिलिंफ और एण्डोलिफ नामक जो प्रवाही होता है उसमें भी आन्दोलन अधिक प्रबल हो जाते हैं और थैली में स्थित श्रवणतन्तु के छोरों को उत्तेजित करते हैं। इसकी प्रेरणा आठवें श्रवण-तन्तु द्वारा मस्तिष्क के श्रुति-केन्द्र में पहुँचती है और ध्वनि सुनाई देने की संवेदना होती है।

कान के रोगों के कारण :

वायु, पित्त और कफ—ये तीनों दोष और उनके मिश्रणों (वातपित्त, पित्तकफ, कफवात) को प्रकोपित करनेवाले सभी कारण

कर्णरोगों के कारण बनते हैं और कर्ण-शिरा में प्रविष्ट होकर विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।

पण्डितप्रवर चरक के मतानुसार कान के लगभग २८ प्रकार के रोग है। इन रोगों को उन्होंने वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक -- इस प्रकार चार विभागों में विभक्त किया है तथा दोष-प्रकोपक कारण को रोग की उत्पत्ति का कारण बताया है जैसे ---

(१) वातिक (वायु विषयक) कर्ण-रोग के कारण – चना, चौरा, मटर, ग्वार, सेम, बासी भोजन, कुलफी, आइसक्रीम, ठण्डे पेय, कोदों, सूखे मुरमुरे, अकारण अनशन, जागरण, अधिक चलना, पदयात्रा, पंखे की हवा, ठण्डी हवा, सिर को भिगोकर किया हुआ ठण्डा स्नान, अधिक व्यायाम, चोट लग जाना, अतिशय परिश्रम, जाड़े के मौसम में ठण्डे पानी में तैरना, अत्यधिक बोलना, अति मैथुन, चिन्ता, शोक, भय, दुःख आदि कान के वातिक रोगों के कारण हैं।

(२) पैत्तिक (पित्तजन्य) कर्ण-रोग के कारण : तीखा, खट्टा, खारा, उष्ण, तीक्ष्ण और गरमागरम भोजन पित्तवर्धक है। तम्बाकू का सेवन, धूम्रपान, अतिश्रम, दिन को सोना, अति मैथुन, अकारण अनशन, सूर्य की धूप, और आग की आँच, उड़द, अतिशय खट्टे-तीखे अचार, अतिशय अदरक, अतिशय खट्टी-तीखी कढ़ी, कोकम, खट्टे आम, खट्टे पेय, खट्टा दही, खट्टी छाछ, खट्टे अमरूद, अधिक मात्रा में टमाटर, तले हुए आहार का अत्यधिक सेवन, भिण्डी, तीखी मिर्च, काली मिर्च, अधिक नमक, बाजरी, तीखी जरठ मूली, बीजवाले बैंगन, राई, अधिक मात्रा में लहसुन, अधिक मात्रा में नीबू, बासी भोजन, सुखाया हुआ खाद्य पदार्थ, सहिजन की फलियाँ, सौंठ का विशेष मात्रा में सेवन कान के पित्तजन्य रोगों के लिए कारणभूत हैं। यद्यपि कर्ण-रोगों के पित्तजन्य कारण

अत्यंत कम हैं, इसलिए पित्तजन्य कर्णरोग की मात्रा भी नहीं के बराबर पायी जाती है।

(३) श्लैष्मिक (कफ या श्लेष्म से सम्बन्धित) कर्णरोग के कारण : उड़द, आइस्क्रीम, अंगूर, अंजीर, ककड़ी, काली द्राक्ष, कुल्फी, केले, कुम्हड़ा, खट्टे पेय, शक्कर, गुड़, घी, चीकू, खट्टी छाछ, अमरूद, टमाटर, ठण्डे पेय, प्याज, तरबूज, तिल, दही, दिन को सोना, दूध, नारंगी, पावरोटी (डबलरोटी), फ्रीज का पानी, फ्रूट-ज्यूस, फ्रूट-सलाद, बर्फ, दूध-बिस्कुट, भिण्डी, मक्खन, मांस, मिठाई, अतिशय नमक, वनस्पति घी, श्रीखंड, सिंघाड़े, गन्ने का रस, तैरना, ठण्डे जल में स्नान आदि श्लैष्मक कर्ण-रोग के कारण हैं।

(४) सान्निपातिक कर्णरोग के कारण : जब दो दोषों के कारण एकत्रित होते हैं तब द्विदोष कर्णरोग हो जाते हैं। जैसे, आइस्क्रीम, कुल्फी, फ्रीज का पानी, ठण्डी हवा आदि से कफवातजन्य कर्णरोग होते हैं; जबकि त्रिदोषजन्य कर्णरोग में तीनों दोषों के कारण एकत्रित होते हैं। जैसे जरठ मूली, वासी भोजन, क्रोध, परिश्रम, ठण्ड आदि कारण एकत्रित होने से त्रिदोषजन्य कर्णरोग होते हैं।

कर्णरोग के लक्षण :

(१) वातजन्य कर्णरोग : वायु के कारण होनेवाले कर्णरोग में कान में विविध प्रकार की आवाजें आती हैं, पीड़ा होती है, सूजन आ जाती है तथा कान में से एक पतले किस्म के प्रवाही का स्राव होने लगता है और बहरापन भी महसूस होता है।

(२) पित्तजन्य कर्णरोग : पित्त से होनेवाले कर्णरोग में कान में सूजन आ जाती है, लाली दिखाई देती है, कोई भीतर करवत चला

रहा हो ऐसी तीव्र वेदना और जलन होती है तथा कान में से पीले रंग का दुर्गन्धयुक्त स्राव होता है ।

(३) **कफजन्य कर्ण-रोग :** कफ से होनेवाले कर्ण-रोग में विपरीत शब्द सुनाई देते हैं । कान में खुजली होती है । कान में सूजन आ जाती है । सूजनवाली जगह कुछ सफेद रंग की दिखाई देती है । पीड़ा अवश्य कुछ कम होती है । कान से चिकना, गाढ़ा स्राव भी होता है ।

(४) **सन्निपातजन्य कर्ण-रोग :** सब दोषों के एकत्रित होने से उत्पन्न कर्ण-रोग में तीन दोषों के लक्षण दिखाई देते हैं और जिस दोष की प्रबलता होती है उसी के लक्षणवाला स्राव होता है । जैसे, वायु की प्रबलता हो तो पतला, काला या झागयुक्त स्राव होता है; पित्त की प्रबलता हो तो पीला, लाल, रक्तयुक्त, दुर्गन्धवाला, पतला और गर्म स्राव होता है और जब कफ की प्रबलता हो तो सफेद, गाढ़ा, चिकना और अधिक मात्रा में स्राव होता है ।

बच्चों के कर्ण-शूल के लक्षण :

बच्चों के रोगों को पहचानना बड़ा कठिन है, क्योंकि बालक स्वयं शरीर में कहाँ-क्या होता है और कहाँ पीड़ा हो रही है, यह बता नहीं सकता । इसलिए चिकित्सकों को बच्चों के शारीरिक लक्षण, उनके हाव-भाव आदि के आधार पर ही निर्धारित करना पड़ता है । बच्चों को कर्णशूल प्रायः बार-बार उठ खड़ा होता है । कर्णशूल की पहचान के लिए निम्नलिखित कुछ बातें स्मरणीय हैं —

(१) बच्चा बार-बार कान का स्पर्श करे ।
(२) वह सिर हिलाया करे ।
(३) वह अपने कान को छूने न दे ।
(४) वह स्तनपान करने या खाने में अरुचि बताए ।

(५) उसे नींद आए अथवा वह नींद में से बार-बार चौंककर रोने लगे।

कान के रोग :

(१) कर्ण-शूल (कान में दर्द और चमक उठना) :

सामान्यत: कान में पीड़ा हो रही हो या चमक उठ रही हो तब निम्नलिखित उपचार में से यथासंभव उपचार करने चाहिए। इन उपचारों से आराम न हो तो यथाशीघ्र चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

(१) लहसुन की दो कलियाँ कूटकर उसमें अजवाइन के थोड़े दाने मिलाकर १२ मि. लीटर तिल के तेल में गर्म कर छान लीजिए। इस तेल की दो-तीन बूंदें, सहन हो सकें उतनी गर्म रखकर, कान में डालें।

(२) आक के पक्के पत्ते पर तेल लगाकर, उसे आग पर गर्म कर हाथ से मसल कर दो-तीन गर्म बूंदें कान में डालें।

(३) मरुवा का रस कान में डालें।

(४) सरसों के तेल में अदरक का रस गरम करके उसकी बूंदें कान में डालें।

(५) विश्वसनीय फार्मेसी का हिंग्वादि तेल खरीदकर उसकी बूंदें कान में डालें।

(२) कर्णनाद : विकृत या प्रतिकूल गतिवाला वायु शब्द का वहन करनेवाली शिरा में रुक जाने से विक्षुब्ध होता है तब कान में बार-बार विविध प्रकार की आवाजें सुनाई पड़ती हैं। इस आवाज को 'कर्णनाद' कहते हैं।

इस रोग में अन्त:कर्ण में स्थित कॉकलिया नामक अंग की विकृति होती है ।

इस रोग में निम्नलिखित उपचारों में से शक्य उपचार करें ।

(१) बकरी के मूत्र में सैन्धव नमक डालकर और किंचित् गर्म कर के उसकी बूँदें कान में डालें ।

(२) कपास के बीजकोश का रस कान में डालें ।

(३) नागरबेल के पत्ते का रस कान में डालें ।

(४) बकरी के मूत्र में लहसुन, अदरक और आक के पत्ते का रस मिलाकर उसकी बूँदें कान में डालें ।

(५) सरसों के तेल से कर्णपूरण करें ।

(३) कर्णकृमि (कान में कीड़े पड़ जाना) :

कर्णस्राव, कर्णपाक, विद्रधि जैसे रोगों के उपद्रव से, कान की अस्वच्छता अथवा वातादि दोषों के कारण कान में सड़न पैदा होती है और उसमें कृमि-कीट उत्पन्न होते हैं । कर्णकृमि प्राय: त्रिदोष के कारण ही होते हैं ।

इस रोग में निम्नलिखित उपायों में से शक्य उपाय आजमायें –

(१) स्वमूत्र कान में डालें ।

(२) नीम के रस में गर्म किया हुआ सरसों का तेल कान में डालें ।

(३) गोमूत्र के साथ हरताल का चूर्ण पीसकर कान में डालें ।

(४) सिरके में पापड़-खार, अजवायन और इन्द्रायण का गर्भ मिलाकर कर्णपूरण करें ।

(५) दूधिया बच्छनाग (कलिहारी) की जड़ का रस निकालकर उसमें थोड़ा त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर) मिलाकर कान में डालने से कृमि बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं ।

(४) कर्ण-स्राव :

कर्ण-स्राव अर्थात् कान में से एक चिकने पदार्थ का बहना। प्रायः पीव या मवाद के बहने को कर्ण-स्राव कहा जाता है। कान साफ करने के बाद निम्नलिखित उपचारों में से संभव उपचार करें —

(१) शुद्ध शहद सिन्दूर मिलाकर उसकी दो-दो बूँदें प्रातःकाल और रात्रि में कान में डालें।

(२) धतूरे के पत्ते के रस में चारगुना सरसों का तेल और थोड़ी हल्दी डालकर चौगुने पानी में धीमी आँच पर उबालकर तेल सिद्ध करें। इस तेल की दो-तीन बूँदें रोज सुबह-शाम कान में डालें।

(३) मनुष्य की हड्डी के चूर्ण को चौगुने तिल के तेल और तेल से दुगुने पानी में डालकर धीमी आँच में उबालकर तेल सिद्ध करें। इस तेल की दो-तीन बूँदें प्रतिदिन सुबह-शाम कान में डालें।

(५) कर्ण-कण्डु (कान में खुजली होना) :

कान में हमेशा या लम्बे समय तक असह्य खुजली होती है, उसे कर्ण-कण्डु कहते हैं। यह रोग सामान्य होने पर भी यदि उसका योग्य उपचार न किया जाय तो वह कफजन्य कर्ण-रोगों की उत्पत्ति कारण बनता है। खुजलाहट होने पर रोगी कदापि कान को कुरेदे नहीं और निम्नलिखित उपचारों में से यथाशक्य उपाय करें —

(१) स्वमूत्र की बूँदें कान में डालें।

(२) निबौली का तेल गर्म करके उसकी दो-चार बूँदें प्रातःकाल और रात्रि में कान में डालें।

(३) दार्व्यादि अथवा मरिच्यादि तेल गर्म करके कान में डालें।

(४) त्रिफला या नीम के काढ़े से कान साफ करें।

(५) रोज रात को त्रिफला चूर्ण या हरें का चूर्ण पानी के साथ फाँकें ।

(६) **कर्णशल्य :** (कान में कुछ फँस जाना) :

कान में मक्खी, बगई, चींटा, पतिंगा, कनखजूरा आदि कीड़े घुस जाने पर बड़ी बेचैनी और वेदना होती है ।

कभी-कभी छोटे बच्चों के कान में जीवाणुओं के अलावा बेर की गुठली, चना-मटर-मूँगफली का दाना, ककड़ी आदि वस्तुएँ घुस जाती हैं । तब कर्णशल्य होती है । इन पदार्थों को बाहर निकालने के लिए कभी पिचकारी का उपयोग नहीं करना चाहिए । इन वस्तुओं को टुकड़े करके निकालना चाहिए । यदि इस प्रकार वस्तु न निकल सके तो रोगी को कान के निष्णात डॉक्टर को ले जाना चाहिए ।

यदि कान में कोई जीव-जन्तु घुस गया हो तो निम्नलिखित उपायों में से शक्य या अनुकूल उपाय करें ।

(१) गाय का घी साधारण गर्म करके उसकी बूँदें कान में डालने से जीव-जन्तु बाहर निकल जाता है ।

(२) सफेद प्याज का रस कान में डालने से जीवजन्तु बाहर आ जाता है ।

(३) कान में जामुन के पत्तों का रस भर देने से जन्तु बाहर निकल आता है ।

(४) क्लोरोफोर्म की पिचकारी मारने से जन्तु मर जाता है । फिर कान को पिचकारी के द्वारा धोने से जन्तु बाहर आ जाता है ।

(५) शुद्ध मधु अथवा पुरानी शराब की बूँदें कान में डालें ।

(७) **कर्णमल :** कान में मैल हो जाना स्वाभाविक है; क्योंकि वह कान की रक्षा करने में सहायक बनता है । यदि कान में मैल

अधिक मात्रा में उत्पन्न हो तब श्रुतिमार्ग सँकरा हो जाने से बहरेपन का अनुभव होता है ।

कान में से मैल निकालने के लिए गर्म किया हुआ सरसों का तेल या तिल का तेल कान में डालना चाहिए अथवा कर्णरोग में उपयोगी किसी भी तेल से कर्णपूरण करें । मैल के पिघल जाने पर कर्णशलाका के द्वारा अत्यन्त सावधानी के साथ मैल निकालें । कान स्वच्छ करने के लिए कर्णशलाका या कर्ण-स्वस्तिक (कान का चिमटा) न हो तो दिया सलाई की नोक पर रुई लपेटकर उससे भी कान साफ किया जा सकता है ।

यदि मैल जमकर सख्त हो गया हो तो स्वर्जिका क्षार (सोडा बाइ कार्ब) का पानी या एरण्डी का तेल डालकर उसे नरम बनाने के बाद ही सलाई अथवा उपयुक्त साधन से बाहर निकालें। अनिवार्य होने पर ही पिचकारी से कान धोएँ ।

(८) बहरापन : कान के सभी रोगों में यह रोग सबसे अधिक परेशान करनेवाला है । इस रोग में व्यक्ति श्रवणेन्द्रिय गँवाकर पंगु और लाचार बन जाता है । इस रोग के कारण व्यक्ति अपने विकास में पिछड़ जाता है । उसे घर और समाज में बहुत कुछ सहन करना पड़ता है । यदि बचपन से ही बहरापन हो तो शिक्षा, व्यवसाय, वैवाहिक जीवन, सामाजिक व्यवहार आदि में व्यक्ति को बहुत हानि सहन करनी पड़ती है । इसलिए इस रोग से बचने के लिए रोगी को समय पर पर्याप्त इलाज कराना अनिवार्य है ।

बालकों को बचपन से होनेवाला बहरापन, जन्मजात बहरापन और बहरे-गूँगे बच्चों का साधारण बहरापन असाध्य माना जाता है।

बहरेपन के रोगियों को कर्णरोगों के विशेषज्ञ चिकित्सक का परामर्श और उपचार लेना चाहिए। बहरापन दूर करने के लिए निम्नलिखित उपायों में से संभव और अनुकूल उपाय आजमाएँ :

(१) आक के पत्तों का रस गर्म करके कान में डालें।

(२) मरुआ (अँविया) के पत्तों का रस गर्म करके लगातार तीन दिन तक कान में डालें।

(३) सहिजन के कन्द का रस, केले के कन्द का रस, अदरक का रस और शहद समान मात्रा में मिलाकर उसमें चौथाई भाग तिल का तेल मिलाकर उसे पकाइए। इस प्रकार तैयार किये गये तेल की दो-चार बूँदें रात को कान में डालें।

(४) भोजन में गाय के पुराने घी का विशेष मात्रा में सेवन करें।

(५) सोंठ, धनिया और हींग के कल्क (क्वाथ) में तेल सिद्ध करके कान में डालिए।

कान के बहरेपन के सरल उपाय :

(१) रुई में लपेटी हुई लहसुन की कली को कान में रखिए।

(२) उत्तम प्रकार की हींग का चूर्ण रुई में डाल कर कान में रखिए।

(३) बछनाग और व्रज तिल के तेल में गर्म करके कान में डालिए।

प्रौढ़ावस्था और कान : उम्र बढ़ने के साथ गात्र शिथिल होते हैं और गात्रों की शिथिलता के कारण अवयवों के कोषों का स्राव कम हो जाता है। तदनुसार कान में भी 'Wax' का स्राव कम हो जाता

है। फलस्वरूप कान के अवयव कड़े हो जाते हैं। इस समय में शरीर के क्षार तत्त्व का असर कान पर पड़ता है। अंजन 'Wax' की कमी होने पर कान में खुजली और खाज जैसे रोग हो जाते हैं। इसीलिए चरक ने कान में अभ्यंग तेल डालने को कहा है। कान में तेल का अभ्यंग करने से कान सदा निरोगी रहते हैं। कान में तेल डालने से कान के विजातीय द्रव्यों का मैल गर्म होकर बाहर आ जाता है। कान के अन्दरूनी नाजुक अवयवों को तेल की मालिश मिलने से वे मुलायम और कार्यक्षम रहते हैं।

कान के सभी रोगों की सामान्य पथ्यापथ्य चीजें :

कान के किसी भी प्रकार के रोग में मरीज को निम्नलिखित आहार का सेवन करना लाभप्रद है :

अजवायन, तीखे अचार, आँवले; उबला पानी, कढ़ी (तीखी), काजू, हरा धनिया, फूलगोभी, पत्तागोभी, खजूर (कम मात्रा में) सूखी रोटी, छुहारे खिचड़ी, गाजर, गलके, पीपरामूल, छाछ (पतली और ताजा), जीरा, जुआर, तिल का तेल, चौलाई की भाजी, अरहर, तोरई, अनार (मीठे), मूँग और उड़द की दाल, गाय का दूध, दूध का काढ़ा, दूधी, धनिया, पपीता (कम मात्रा में) परवल, पान, पापड़ (उड़द को छोड़कर), पालक की भाजी, आलू (कम मात्रा में), बाजरी, मोटी रोटी, चावल, मूँग, शहद, मुरमुरे, मिर्च, हरी मिर्च, काली मिर्च, नमक, मेथी की भाजी, राई, बैंगन, रोटी, लहसुन, शकर कंद (कम मात्रा में) मूँग फली का तेल (कम मात्रा में), सहिजन, सैन्धव, सूरन, सोआ, सोंठ, हल्दी, हींग, आदि।

कान के किसी भी प्रकार के रोग में रोगी के लिए निम्नलिखित आहार का सेवन हानिकर है :

उड़द, आइस्क्रीम, इमली, अंजीर, अण्डे, ककड़ी, कुलफी, आम, कोकम, कोदों, केले, खट्टे पेय, शक्कर, भैंस का घी, चौरा, ग्वार, छाँछ (गाढ़ी), अमरूद, जौ, टमाटर, खरबूजा, ठण्डे प्याज, तरबूज, तली हुई चीजें, दही, दूध, नारंगी, डबल रोटी, फ्रीज का पानी, फ्रूट ज्यूस, फ्रूट सलाद, बर्फ, बिस्किट, भिण्डी, मूँगफली, मक्खन, मलाई मोसम्बी, नीबू, सेम, बासी भोजन, विरुद्ध आहार, वनस्पति घी, श्रीखण्ड, मूँगफली का तेल, गन्ने का रस, सेव आदि ।

कान के रोगी के लिए निम्नलिखित विहार का सेवन लाभकर है ।

धूप-सेवन, मालिश (कान के पीछे डॉक्टर की सूचना होने पर ही) मौन, कान पर सेंक, संयम आदि ।

कान के रोगी के लिए निम्नलिखित विहार का सेवन हानिकारक है :

अतिशय आराम, अधिक जागरण, वातानुकूलित वातावरण, अधिक चलना, ठण्डी हवा, पंखे की हवा, अधिक वाचालता, सिर को भिगोकर स्नान, मैथुन, ठण्डा स्नान, तैराकी आदि ।

कान की देख-भाल के लिए सूचनाएँ :

(१) किसी भी हालत में कान कुरेदने नहीं चाहिए।

(२) कान में फूंक न मरवाएँ ।

(३) गाल या कनपटी पर तमाचा न मारें ।

(४) सिर पर न मारें ।

(५) कोलाहल से दूर रहने का प्रयत्न करें ।

(६) छोटे बच्चे को स्नान कराते समय उसके कानों में रुई के फाहे डालें ताकि कानों में पानी न जा सके ।

(७) स्नान करने के बाद स्वच्छ तौलिये से कानों को पोंछ डालें।

(८) बचपन से ही प्रतिदिन कानों में तिल के तेल की गर्म बूँदें डालें।

(९) रेलगाड़ी के इंजन की सीटी और जोर की आवाज करने-वाले यंत्रों से दूर रहें।

(१०) हवाई जहाज की यात्रा में वायुयान के उड्डयन करते व उतरते समय कानों में रुई के फाहे डालें।

(११) गर्म दवाओं का अतिशय सेवन न करें। गर्म दवा के सेवन के दौरान दो ग्राम गिलोय का सत्त्व मधु के साथ सुबह-शाम लें।

(१२) नियमितता के साथ पथ्य, पोषक और सप्रमाण आहार, शान्त व प्रसन्न चित्त से करें।

(१३) कब्जियत न होने पाये इसकी विशेष सावधानी रखें।

(१४) सूक्ष्म जन्तु उड़ते-उड़ते कान में प्रविष्ट न होने पायें इसलिए कुदरत ने काम पर बाल पैदा किये हैं। अतः कान के बाल कदापि न काटें।

(१५) मस्तक शरीर के अन्य अवयवों की अपेक्षा अधिक गर्म अवयव है। सर्दी से तुरन्त प्रभावित होनेवाली ग्रन्थियाँ भी मस्तिष्क में स्थित हैं। अतः सिर को सर्दी-गर्मी का असर अधिक होता है। इस-लिए अतिशय गर्मी या अतिशय सर्दी में कानों को ढँक देना चाहिए।

(१६) जाड़े के मौसम में बच्चों को कानटोपी पहनाया करें।

(१७) मस्तक के अंगों में रक्ताभिसरण निरंतर होता रहे इसका ध्यान रखें।

३०. दाँतों की रचना और देख-भाल

दाँतों का जन्म, माता के कर्तव्य और दूधिया दाँत :

गर्भवती माता जो आहार लेती है, उसी से रक्त बनता है। इस रक्त से स्वयं माता के अपने शरीर को और उसके गर्भ को पोषण मिलता है। गर्भ का विकास होने पर उसकी हड्डियों और दाँतों की संरचना के लिए चूने के क्षार और विटामिन 'डी' की आवश्यकता पड़ती है। इस विटामिन के अभाव में चूने के क्षारों का उपयोग हड्डियों और दाँतों की संरचना में नहीं हो सकता। यदि माता के आहार में चूने के क्षार से युक्त पदार्थ और विटामिन 'डी' न हो तो शिशु माता की अस्थियों में से चूने के क्षार खींच लेता है। फलस्वरूप माता के दाँत और हड्डियाँ कमजोर होने लगती हैं। इसलिए सगर्भा स्त्रियों को चूने के क्षार और विटामिन 'डी' से युक्त आहार का पर्याप्त मात्रा में सेवन करना चाहिए।

शिशु के जन्म के बाद उसकी माता के स्तनों में उत्पन्न दूध ही पिलाया जाना चाहिए। हड्डियों और दाँतों के निर्माण में माता के दूध का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

जब बच्चा छह माह का होता है तब उसके दूधिया दाँत आने शुरू हो जाते हैं। इन दिनों बच्चे को चीज-वस्तुओं या अपनी उँगलियों को कुतरने की आदत पड़ जाती है। नौ महीने की उम्र होते ही बच्चे के दोनों जबड़ों में चार-चार दाँत उग आते हैं।

कई अनुभवी लोग हाथीदाँत की चकती या बजरबट्टू जैसी चीजें ऊन के धागे में पिरोकर बच्चे के गले में पहना देते हैं। बालक इन्हीं चीजों को मुँह में डालकर कुतरने लगता है, जिससे उसके दोनों जबड़ों और नये दाँतों को पर्याप्त कसरत मिलती है। बच्चों को लकड़ी की

चुसनी या प्लास्टिक के खिलौने खेलने के लिए नहीं देने चाहिए। उन से बच्चे के शरीर में धूल और धूल के साथ रोग के कीटाणु प्रविष्ट होने का भय रहता है। इसके अलावा ऐसी चीजों से जबड़ों को प्रतिकूल या उल्टी कसरत मिलती है। इसके बदले बच्चे के हाथ में करेला, गाजर, सेवफल आदि दिये जायँ तो बच्चा उन पर अपने जबड़ों से प्रहार करने का प्रयत्न करेगा। इससे उसके जबड़ों-दाँतों को आवश्यक कसरत प्राप्त होगी। बच्चे में उँगलियाँ अथवा रबर की टोंटी चूसने की आदत नहीं डालनी चाहिए। इस आदत के कारण उसके जबड़ों का आकार बिगड़ जाता है।

दूधिया दाँत निकलते समय बच्चे को कै-दस्त होने लगते हैं, खाँसी आने लगती है, बुखार आता है, आँख दुखने लगती है। गले में सूजन आ जाती है, कब्जियत रहती है या पेट में मरोड़ उठती है। यदि बच्चे को पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'डी' और कॅल्शियमयुक्त आहार दिया जाय तो वह उक्त तकलीफों से मुक्त हो जाता है।

बच्चों को दाँत आने शुरू होते ही उनके मसूड़े कुछ लाल हो जाते हैं। इस समय माता को अपनी उँगली पर एक मोटा-सा स्वच्छ कपड़ा लपेटकर उसे नमक के मन्द घोल में डुबोकर उस उँगली को आहिस्ता-आहिस्ता बच्चे के मसूड़ों पर फिराना चाहिए।

कुछ अज्ञानी और वहमी लोग दाँत उगाने के लिए सेवन की जानेवाली दवाओं या विद्युत-पट्टियों का उपयोग करते हैं; किन्तु इन चीजों से दाँत उगने में कोई लाभ नहीं होता; बल्कि ऐसी दवाओं में कभी-कभी उपयुक्त क्षारों से दाँतों के कठोर स्तर को हानि होती है।

बच्चे को स्तनपान छुड़ाने का समय आने पर गाय का दूध पिलाना शुरू कर देना चाहिए। गाय के दूध के अभाव में बकरी का दूध

और फलों का रस दिया जाए। दूध उबालकर और ठण्डा करके देना चाहिए। बच्चे को आग पर सेंकी हुई छोटी-सी रोटी कुतरने के लिए दी जा सकती है और उसे चबाने के लिएं दबाव भी डाला जा सकता है। इससे बालक के दाँतों को कसरत मिलती है।

बिस्कुट तथा मगज आदि मिठाइयाँ बालक के लिए सुपाच्य नहीं होतीं और दाँतों को भी खराब करती हैं। शक्कर और शक्कर की बनी हुई चीजों के उपयोग से दाँत खराब होने की संभावना है। इनके स्थान पर बच्चों के लिए गुड़, खजूर, अंजीर, द्राक्ष, मीठे फल आदि उत्तम हैं।

बालक की उम्र दो वर्ष की होने तक सभी दूधिया दाँत उग आते हैं। अब बच्चे के जबड़ों की हड्डियाँ और मुँह बड़े होने लगते हैं किन्तु एक भी नया दाँत नहीं उगता। छह-सात वर्ष की उम्र होने पर उसके ऊपर-नीचे के दोनों जबड़ों में प्रथम दो-दो दाढ़ें उग आती हैं। ये दाढ़ें बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। बालक को इन दाढ़ों का उपयोग आजीवन करना होता है। ये दाढ़ें ठीक हों, तभी अन्य सभी दाँत नियमित और कतार बद्ध उगते हैं। दूधिया दाँत गिर जाने पर इन दाँतों के कारण ही मनुष्य के जबड़े व्यवस्थित रहते हैं और टेढ़े-मेढ़े नहीं हो पाते।

दाँतों की रचना :

छह वर्ष की उम्र होने पर बच्चे के दूधिया दाँत क्रमशः एक के बाद एक गिरने लगते हैं और उनके स्थान पर स्थायी दाँत आने लगते हैं। २१ वर्ष की आयु तक दोनों जबड़े ऊपर-नीचे सोलह-सोलह दाँतों से भर जाते हैं। ये स्थायी दाँत आजीवन साथ निभाते हैं।

दाँतों की रचना : प्रत्येक दाँत के तीन भाग हैं—मूल, गर्दन और सिर।

(१) मूल : दाँत का जो हिस्सा जबड़ों के मसूड़े में जकड़ा हुआ होता है, उसे दाँत का मूल कहा जाता है। मूल के नीचे के भाग में से
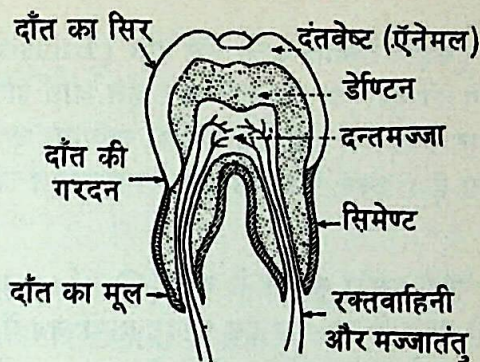
[आकृति : ३९]

रक्तवाहिनी और मज्जातन्तु दाँत में प्रविष्ट होते हैं। मूल पर सिमेण्ट नामक गाढ़ा पदार्थ होता है जिससे दाँत जबड़े की हड्डी में मजबूती के साथ चिपके रहते हैं।

(२) **गरदन :** दाँत का जो सँकरा हिस्सा मसूड़े में बैठा होता है उसे गरदन कहा जाता है।

(३) **सिर :** दाँत के खुले भाग को दाँत का सिर कहते हैं। उस पर अत्यन्त कठोर और चमकीला सफेद पदार्थ, इनेमल (दन्तवेष्ट) का आवरण होता है। वह दाँत के भीतरी भाग की रक्षा करता है।

दाँत की अन्दरूनी पोल में दन्तमज्जा नामक नरम पदार्थ होता है। उसमें रक्तवाहिनी और मज्जातन्तु होते हैं। दन्तमज्जा पर डेण्टिन नामक सख्त पदार्थ होता है, जो दाँत की अधिकांश जगह रोक लेता है।

दाँत के प्रकार :

प्रत्येक जबड़े की दोनों ओर आठ दाँत होते हैं। यदि हम मुँह के सामने के हिस्से से प्रारम्भ करके जबड़े के मूल की ओर बढ़ें तो हमें निम्नलिखित किस्म के दाँत दिखाई देंगे—

(१) टुकड़े करनेवाले फरसे जैसे दाँत (Incisors) : प्रत्येक पार्श्व में आगे की ओर दो-दो–इस प्रकार कुल आठ दाँत होते हैं । ये फरसे की धार के समान होते हैं । इनका उपयोग खुराक के टुकड़े करने में होता है । इनमें से प्रत्येक दाँत का एक मूल और एक सिर होता है ।

(२) राक्षी अथवा कुत्ते के-से दाँत (Canines) : टुकड़े करने वाले दाँत की बगल में एक-एक इस प्रकार दोनों जबड़ों में कुल चार दाँत होते हैं । इनके छोर नुकीले होने से वे खाद्य पदार्थ को पकड़ने और चीरने में उपयोगी हैं । इन दाँतों के भी एक सिर और एक मूल होता है ।

(३) छोटी दाढ़ें (Bicuspids) : दोनों तरफ राक्षी दाँत के बाद दो-दो इस प्रकार कुल आठ दाँत होते हैं । उसका सिर दो भाग मिल कर बना होता है । छोटी दाढ़ का एक ही मूल होता है ।

फरसे जैसे दाँत राक्षी दाँत छोटी दाढ़ें बड़ी दाढ़ें

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
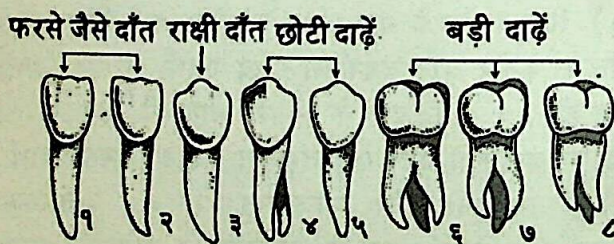
[आकृति : ४०]

(४) बड़ी दाढ़ें (Molars) : प्रत्येक छोर पर तीन-तीन इस प्रकार कुल बारह दाँत होते हैं । दोनों तरफ की अन्तिम दाढ़ अठारह वर्ष की उम्र के बाद उगती है । इसीलिए इसे 'अक्ल की दाढ़' कहते हैं । बड़ी दाढ़ों के सिर चौड़े होते हैं और प्रत्येक के चार भाग

होते हैं। मूल दो या दो से अधिक होते हैं। दाढ़ें खुराक को पीसकर उसका बुरादा बनाती हैं।

इस प्रकार कुल ३२ दाँतों में ८ टुकड़े करनेवाले दाँत, ४ राक्षी दाँत, ८ छोटी दाढ़ें और १२ बड़ी दाढ़ें हैं।

लार-ग्रन्थियाँ :

मुँह में दोनों ओर तीन-तीन लार-ग्रन्थियाँ होती हैं। सबसे बड़ा पॅरोटिड लारपिण्ड (Parotid gland) गाल में कान के आगे और नीचे के भाग में है। दूसरा सबमॅक्सिलरी लारपिण्ड (Submaxillary gland) नीचे के जबड़े की हड्डी के नीचे होता है और तीसरा सबसे छोटा सबलिंग्युअल लारपिण्ड (Sublingual gland) जीभ के नीचे होता है। इस प्रकार कुल छह लार-ग्रन्थियाँ होती हैं।

लारग्रन्थियों में लार-रस तैयार करनेवाले कोषों की छोटी-छोटी गाँठें होती हैं। रक्त में से रिसने वाले रस से ही ये कोष लार-रस बनाते हैं। मुँह में भोज्य पदार्थ आते ही लार का स्राव अधिक मात्रा में होता है। आहार को अच्छी तरह चबाया जाए तो मुँह में ही लार के द्वारा स्टार्च का पाचन हो जाता है।

दाँतों की सड़न और उसका पाचन-क्रिया पर प्रभाव :

खाना खाने के बाद कुल्ला करके मुँह और दाँतों को अच्छी तरह साफ करना चाहिए। कुछ लोग खाना खाने के बाद ब्रश करते हैं या नमक के पानी के कुल्ले करते हैं। दाँतों के स्वास्थ्य के लिए यह एक उत्तम उपाय है।

निम्नलिखित चीजों के अत्यधिक उपयोग से भी दाँत खराब होते हैं और कालान्तर में दाँत सड़ने लगते हैं—

(१) चॉकलेट, पिपरमेण्ट जैसी मीठी वस्तुएँ।

(२) एकदम मुलायम और नरम रोटी, पूरी, दही-बड़े, मैदे की बनी चीजें, नरम डबल रोटी आदि।

(३) दूधपाक, मिठाइयाँ, नरम पकोड़ियाँ, बेसन के खस्ता सेव (गाँठिया), पूरनपूरी, नमकीन चबैना, खमण आदि।

(४) शक्कर और शक्कर से बनी चीजें, मुरब्बा, रेवड़ी आदि।

दाँतों की सड़न शुरू होने पर दाँत पर एक सफेद धब्बा दिखाई देता है। ये धब्बे लगातार बढ़ते जाते हैं और दाँत में बारीक छेद पड़ने लगते हैं।

प्रत्येक मनुष्य के मुँह में अत्यन्त सूक्ष्म जीवाणु होते हैं जो आँखों से नहीं दिखाई पड़ते। गर्मी, नमी और अँधेरा एकत्रित होने पर ये जीवाणु बढ़ने लगते हैं और जोर भी करने लगते हैं। नरम आहार का सेवन करनेवालों के मुँह में दाँतों के बीच मसूड़ों में से दाँत फूटते हैं, उस जगह और दाँत के एकदम ऊपर के भाग में आहार के कण चिपके रहते हैं। इन कणों में जीवाणु चिपक जाते हैं और फिर बढ़ने लगते हैं। इनके असर से आहार में एक प्रकार का खट्टा तेजाबी पदार्थ उत्पन्न होता है; जिससे दाँत के ऊपरी सख्त दन्तवेष्ट का आवरण सड़ने लगता है।

जो लोग अपने दाँतों को ठीक से साफ नहीं करते, उनके दाँतों में तेजाबी पदार्थ का निर्माण होता है। उसके असर से दन्तवेष्ट और उसका अन्दरूनी भाग सड़ जाता है तथा दन्तवेष्ट की परत में छिद्र पड़ जाते हैं। धीरे-धीरे यह असर दाँतों में गहराई तक होने से दाँत सड़ने लगते हैं। फलतः दाँतों में पीड़ा शुरू हो जाती है। कभी-कभी मसूड़ों की चमड़ी खुलकर सरक जाती है और डेण्टिन अनावृत्त हो

जाता है तब उस पर हवा के परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है। इससे दाँत के ज्ञान-तन्तु उत्तेजित होते हैं। फलस्वरूप दाँतों में पीड़ा होने लगती है। दाँनों की पीड़ा से शरीर के अन्य भागों में भी असह्य वेदना होने लगती है।

जिनके दाँत सड़े हुए होते हैं। वे खुराक को अच्छी तरह चबा नहीं सकते। जिससे उनके भोजन में लार अच्छी तरह घुल-मिल नहीं सकती और मुँह में स्टार्च का पाचन नहीं हो पाता।

दाँत सड़ रहे हैं, ऐसा लगने पर दन्त-चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

टेढ़े-मेढ़े दाँत :

दाँतों के टेढ़े-मेढ़े होने के संभवित कारण निम्नलिखित हैं —

(१) यह एक वंश-परंपरागत लक्षण है।

(२) कॅल्शियम और विटामिन 'डी' की कमी।

(३) दूधिया दाँतों की सफाई न रखने से समय के पहले ही उनके झड़ जाने पर अथवा दूधिया दाँतों को निकालने के बाद उनकी रिक्त जगह अपने आप भर जाने पर।

(४) जबड़े सँकरे अविकसित और सप्रमाण न होने पर।

(५) पौष्टिक आहार के अभाव में आहार का अच्छी तरह पाचन नहीं होता। फलतः मसूड़ों में रक्त-परिभ्रमण की कमी हो जाती है तब दाँत की पकड़ ढीली पड़ जाने पर।

(६) अँगूठा या उँगली को मुँह से चूसने की बच्चों के आदत से।

(७) होठ कतरने से या नींद में दाँतों के बीच जीभ आ जाने से।

(८) गंदी रबर की टोंटी या चुसनी मुँह में रखे रहने के कारण।

(९) दाँत निकलते समय मुँह में कोई भी चीज डालने से।
(१०) गले में काकल के फूल जाने से।
(११) मुँह खुला रहने पर श्वासोच्छ्वास में विघ्न आने पर।

यदि दाँत व्यवस्थित पंक्ति में न उगे हों, टेढ़ेमेढ़े हों या टूटे हुए हों तो अंतिम इलाज के रूप में दन्तचिकित्सक से दाँतों को व्यवस्थित करवा लेना चाहिए।

पायोरिया तथा अन्य रोग :

दंत-रोगों में पायोरिया एक भयंकर रोग है। इस रोग में मसूड़ों और दाँतों के बीच की जगह में मवाद हो जाता है। दाँतों की सड़न और पायोरिया में बड़ा फर्क हैं! दाँतों की सड़न छोटे बच्चों में भी हो जाती है। जिनके दाँत सड़ने लगते हैं उन सभी व्यक्तियों के दाँतों में पीब नहीं होती। पायोरिया युवान एवं प्रौढ़—किसी भी व्यक्ति को हो सकता है।

पायोरिया में सबसे पहले मसूड़े फूलने लगते हैं और लाल हो जाते हैं। उनमें से खून भी रिसने लगता है और उँगली से छूने से दर्द भी होता है। मसूड़ों और दाँतों के बीच के हिस्से में खुराक भर जाने से सड़ने लगता है और पायोरिया शुरू हो जाता है। ऐसे मरीज के मुँह से दुर्गंध आती है। उनके मुँह का जायका बिगड़ जाता है और उनकी जीभ गन्दी दिखती है। प्रारंभ में ही डाक्टरी उपचार किया जाय तभी इस प्रकार के रोग को रोका जा सकता है।

पायोरिया हुआ हो ऐसे व्यक्तियों को पाखाना ठीक से साफ नहीं होता और धीरे-धीरे समग्र पाचन-मार्ग बिगड़ जाता है। उनके मुँह, जीभ, दाँत बिगड़ जाते हैं और दाँत कमजोर हो जाते हैं।

दन्तमूल में उत्पन्न पीव कभी-कभी बाहर निकल आती है जिसका बुरा असर गले में, मुँह में और फेफड़ों में पड़ता है। कई दफा वह अपने मूल स्थान से आसपास की हड्डियों पर भी असर करती है। दाँतों में उत्पन्न होनेवाली पीव से निम्नलिखित रोग होने की भी संभावना है।

(१) अनपच या बदहजमी।
(२) भारी कोष्ठबद्धता।
(३) पेट की आँतों के रोग।
(४) गिलटी और गर्दन के भीतर की अन्य ग्रन्थियों का फूलना।
(५) आँख की अन्दरूनी सूजन।
(६) आँख, कान, नाक और गले के कुछ रोग।
(७) ज्ञानतन्तुओं पर सूजन आ जाना।
(८) रक्त-विकार हो जाना।
(९) शरीर का फीका हो जाना।
(१०) हृदय के रोग।
(११) मूत्राशय में सूजन।
(१२) जोड़ों और स्नायुओं में दर्द होना।
(१३) सामान्य कमज़ोरी।

दाँत खराब होने के कारण आहार को भलीभाँति चबाये बगैर निगल लिया जाता है, इसलिए पेट में उसका पाचन भलीभाँति नहीं हो पाता। ऐसा आहार आँतों में उफनता है, जिससे अंत्ररोग होते हैं। इससे दस्त होते हैं या कोष्ठबद्धता होती है। फलस्वरूप शरीर सूखता जाता है।

दाँतों के सड़ने से उनकी किनारियाँ खुरदरी हो जाती हैं। इन कोरों से जीभ टकराने से वह घिसती है और उसमें घाव हो जाते हैं। अन्त में जीभ का कॅन्सर भी हो सकता है।

दाँत में उत्पन्न जहरीला मवाद आगे बढ़कर मसूड़ों की ग्रंथियों के करीब से लगातार वहने के कारण वह हिस्सा कमज़ोर बन जाता है, और वहाँ सूजन आ जाती है। कई बार यह सूजन इतनी बढ़ जाती है कि उसकी शल्यक्रिया अनिवार्य हो जाती है।

पीब के ये कीटाणु फेफड़ों में जाने से खाँसी जैसे रोग होने की संभावना रहती है, तो कभी वे रक्त में घुल-मिलकर सारे शरीर में फैल जाते हैं। फलस्वरूप एपेण्डीसाइटिस, गुदा–रोग, संधिवात, सरदर्द, अनिद्रा आदि रोग होने की संभावना है।

दाँतों की स्वच्छता और देखभाल विषयक सूचनाएँ :

दाँतों की स्वच्छता : दाँत साफ करने के लिए बबूल, नीम या बरगद की दातून उत्तम है। इनकी छाल के कसैले या कड़वे रस के कारण दाँतों के इर्दगिर्द एकत्र हुए रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। यदि ब्रश से दाँत साफ करने की आदत हो तो मुलायम ब्रश का इस्तेमाल करें। ब्रश नया हो तो उसको सुहागा (टंकणक्षार) और नमक के पानी में कुछ घण्टे डुबोकर रखने से वह मुलायम हो जाएगा। उँगली से दाँत साफ करने की रीत भी अच्छी है। उँगलियों से दाँत साफ करने-वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने नाखून न बढ़ने दे।

दातून या ब्रश को दायें–बायें न घिसकर दाँतों पर ऊपर–नीचे की ओर घिसना चाहिए ताकि दाँतों के बीच की बाजुओं को कोई हानि न पहुँचे। प्रत्येक दाँत को अंदर-बाहर और ऊपर–नीचे साफ करने के लिए पहली उँगली (तर्जनी) और अँगूठे का उपयोग करने की पद्धति

सर्वश्रेष्ठ है। इस पद्धति से दाँत और जबड़ों को अच्छी कसरत मिल जाती है।

बाज़ार में विकनेवाले विभिन्न प्रकार के दंतमंजनों और पेस्टों का उपयोग करना हितावह नहीं है। पेस्टों में मिश्रित किये जानेवाले ग्लिसरिन से दाँतों पर एक पतली और चिकनी परत जम जाती है, जिस पर भोजन के बारीक कण चिपकने की संभावना है। ये कण कालान्तर में सड़ने लगते हैं और मुँह में दुर्गन्ध फैलाते हैं।

दाँतों की देखभाल और आहार :

(१) दाँतों को कुरेदें नहीं।
(२) प्रतिदिन प्रातःकाल उठने पर और रात को सोने से पहले दाँतों को अच्छी तरह साफ करें।
(३) नाश्ता, भोजन या पेय पदार्थ ग्रहण करने के बाद नमक के पानी से कुल्ले करें।
(४) प्रातःकाल उठकर तुरन्त ही बेड-टी (Bed-tea) न पिएँ।
(५) अत्यन्त गर्म या अत्यंत ठण्डे खाद्य पदार्थों या पेय पदार्थों का सेवन न करें।
(६) पौष्टिक आहार लिया करें। पेट हमेशा साफ रखें।
(७) कॅल्शियम और विटामिन 'डी' युक्त पदार्थों को भोजन में स्थान दें।
(८) एक मुट्ठी तिल प्रतिदिन चबाया करें।
(९) छुहारे, खोपरा, ककड़ी, गाजर जैसी कठिन चीजें चबाने का अभ्यास रखें।
(१०) तेल में थोड़ा पानी डालकर, कुछ देर मुँह में रखकर, रोज कुल्ले करें।

(११) तेल में साफ उँगली डुबोकर उससे प्रतिदिन मसूड़ों को घिसें।

(१२) गर्भवती स्त्रियों को सगर्भावस्था में दूध, अंजीर आदि कॅल्शियम और लौहतत्त्ववाले पदार्थों का सेवन अवश्य करना चाहिए।

(१३) पान, तम्बाकू, सुपारी, जरदी, गाँजा, बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि व्यसनों का त्याग करें।

रात को सोते समय दाँत अवश्य साफ करें :

रात में सोते समय मुँह सतत बन्द रहता है। इससे मुँह में बाहर की शुद्ध हवा का आवागमन नहीं हो पाता। फलस्वरूप दाँतों के बीच में अटके हुए अन्न-कण सड़ने लगते हैं और उनसे बदबू आने लगती है। इस सड़ाँध का दुष्प्रभाव मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओं पर होने के कारण अच्छी नींद नहीं आती। इसलिए प्रातःकाल उठने पर सिर भारी-भारी लगता है। अतः अच्छी नींद प्राप्त करने के लिए मुँह की दुर्गन्ध को दूर करना आवश्यक है और इसके लिए रात को सोते समय दाँत अवश्य ही साफ करने चाहिए।

रक्ताभिसरण, कसरतें और तेल-मालिश :

उम्र बढ़ने के साथ (१) शरीर और मुँह के गात्र शिथिल हो जाते हैं। (२) रक्तवाहिनियाँ गुरुत्वाकर्षण का प्रतिकार करने में असमर्थ होती हैं।

शरीर और मुँह के गात्र शिथिल होने पर जबड़ों के तन्तु ढीले पड़ जाते है। फलस्वरूप दाँत सड़ने लगते हैं और गिर जाते हैं।

(१) मस्तक के अवयवों को रक्त-प्रवाह पहुँचाने के लिए शीर्षासन और सर्वांगासन लाभदायक हैं। इन आसनों से रक्त-प्रवाह की

दिशा बदलती है । दिन में एक बार ये योगासन करने से मस्तक के अवयवों को रक्त-प्रवाह पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाता है । रुधिराभिसरण की इस क्रिया से अवयवों की सफाई का कार्य हो जाता है और वे आवश्यक क्षमता भी प्राप्त कर लेते हैं । रक्त-प्रवाह स्नायुओं का आहार है । रक्त-प्रवाह प्राप्त होने से गात्र शिथिल नहीं हो पाते । इससे शिथिलीकरण की प्रक्रिया रुक जाती है । इस प्रकार शरीर के अवयवों को वृद्ध होने से रोका जा सकता है ।

(२) ढलुवे तख्त (Standing board) पर सोने से भी शीर्षासन और सर्वांगासन जैसी ही क्रिया हो जाती है । ढलुवे तख्त की सहायता से रक्त-प्रवाह की दिशा बदली जा सकती है । इस तख्त के उपयोग से जवड़ों के तन्तुओं को पर्याप्त रक्त-प्रवाह मिल जाता है और वे आवश्यक क्षमता प्राप्त कर लेते हैं तथा दाँतों को हमेशा निरोगी रखते हैं ।

(३) जो लोग शीर्षासन, सर्वांगासन या ढलुए तख्त का प्रयोग न कर सकते हों वे अपने सिर को पलंग से बाहर गर्दन से लटकती स्थिति में रखे और कंधे की ढाल (पीठ) को पलंग की पाटी पर जमा कर रखे । जबड़े और मस्तक के अवयवों को धीमे हाथों मसाज दें यह क्रिया एक-दो मिनट तक करें । यह प्रयोग पाँच बार करें ।

(४) जबड़े, गाल, ललाट और मस्तक के सारे अवयवों को अभ्यंग-तेल-मालिश करते रहने से दंतमूल और जबड़ों को पर्याप्त कसरत मिलेगी और आवश्यक रक्त-प्रवाह नियमित रूप से मिलेगा । इससे ये अंग शिथिल नहीं हो पाएँगे ।

कृत्रिम दाँत :

जिनके कुदरती दाँत गिर जाते हैं या गिराने पड़ते हैं उन्हें कृत्रिम दाँतों की आवश्यकता पड़ती है । जिस जगह से दाँत निकाले गये हों,

उस जगह के आसपास के दाँत स्वस्थ रखने के लिए डॉक्टर सूचित करे उसी दिन से कृत्रिम दाँत लगा देने चाहिए। इन दाँतों के कारण जबड़ों की कमान का आकार यथावत् वना रहता है और भलीभाँति न चबाये गये तथा लाररहित आहार के पेट में जाने का भय नहीं रहता। यदि कृत्रिम दाँत न लगवाये जायँ तो मुँह के स्नायु मुरझा जाते हैं और मुँह का आकार बिगड़ जाता है।

कृत्रिम दाँतों का चौकठा लगवानेवाले व्यक्ति को कई बार मसूड़ों और तालू पर छाले पड़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में डॉक्टर की सलाह लेनी चाहिए किन्तु चौकठे का उपयोग बन्द नहीं करना चाहिए।

रात को सोते समय मुँह में से चौकठा निकाल कर अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए। यदि चौकठे के साथ पट्टियाँ हों तो उन्हें भी ब्रश द्वारा अच्छी तरह साफ करना चाहिए। रात को चौकठा नमक के ठण्डे पानी में डुबोकर रख दें। यदा-कदा साबू, पापड़खार या क्षार के पानी से चौकठे को साफ किया जा सकता है।

वर्ष में एक बार दन्त-चिकित्सक से अपने दाँतों की जाँच करा लेना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

३१. सिर के बाल निरोगी रखिए

ईश्वर ने ठण्डी-गर्मी से बचने के लिए प्राणियों को बाल दिये हैं। बालों के अभाव में प्राणी प्राकृतिक हवामान का सामना नहीं कर सकता। हिमालय में बर्फ जमी रहती है और सख्त ठण्ड पड़ती है। इसलिए वहाँ भेड़-बकरियों और गायों को ईश्वर ने लम्बे-लम्बे बाल दिये हैं, जो हवामान से उनकी रक्षा करते हैं। बालरहित प्राणी हिमालय में जी नहीं सकता। इसी प्रकार उष्ण प्रदेशों में धूप की गर्मी से रक्षण प्राप्त करने के लिए कुदरत ने ऊँट जैसे पशुओं को लम्बे बाल दिये हैं।

साँप, छिपकली और गिरगिट जैसे प्राणियों के शरीर पर बाल नहीं होते। इसीलिए शीत ऋतु में ये प्राणी शिथिल हो जाते हैं और बाहर घुसते नहीं दिखाई देते। ठण्डी के मौसम में उष्णता पाने के लिए साँप बिल (जमीन) में छिप जाता है। इसी प्रकार छिपकली जाड़े की ऋतु में ठण्ड से शिथिल हो जाती है और दीवार पर नहीं चढ़ सकती। ठण्डी ऋतु में वह लकड़ियों के गुप्त स्थानों में दुबकी रहती है। इसी प्रकार गिरगिट भी शरीर पर बालों का आवरण न होने से ठण्ड सहन नहीं कर सकता और वृक्ष के कोटर में दुबक कर पड़ा रहता है। इसीलिए ईश्वर ने मनुष्य को ठण्डी और गर्मी सहन करने के लिए सिर पर बाल दिये हैं। आजकल आचार, आहार-विहार और रहन-सहन में आधुनिकता के नाम पर अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। यही कारण है कि कई लोगों के सिर के बाल भर-जवानी में सफेद हो जाते हैं या झड़ जाते हैं। सिर के बालों को मुलायम, सघन और श्याम रखने के लिए वैज्ञानिक देखभाल और व्यायाम की आवश्यकता है। बाल असमय में सफेद हो जायँ, झड़ जायँ या सिर गंजा हो जाय इसके पहले निम्नलिखित रहस्यों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लें।

(१) सिर के बालों की जड़ों में प्रकृति ने तेल की व्यवस्था की है, ताकि वालों को आवश्यक खुराक मिलती रहे और वे घने और काले बने रहें। बालों के पोषण के लिए प्रकृति के द्वारा उनके मूल में निहित तेल से अनेक सूक्ष्म नसों और कोषों की ठण्डी-गर्मी से सुरक्षा होती है। आधुनिकता के अतिरेक में कई लोग अज्ञानतावश प्रतिदिन सिर में साबुन घिसकर गर्म पानी से स्नान करते हैं। और इस प्रकार प्राकृतिक तेलांजन को धोकर नष्ट कर देते हैं। इससे बाल तेलरहित बनकर अकाल में खुश्क होकर झड़ने लगते हैं। फिर तो अधिक से अधिक बाल झड़ते जाते हैं। सफेद होने लगते हैं और अन्त में सिर गंजा हो जाता है।

जाड़े की ऋतु में उपर्युक्त प्राकृतिक तेल वालों के मूल में कम मात्रा में उत्पन्न होता है। इन दिनों बालों को साबुन और गर्म पानी से धोने से तेल धुल जाता है। इस कारण बालों के मूल में पीड़ा होती है। वालों में कंघी करते समय बालों की जड़ों में फोड़े हुए हों ऐसा अनुभव होता है।

हमारे एक मित्र भी मनुभाई भट्ट ने एक बार शिकायत करते हुए कहा कि उनके सिर के वाल फोड़े की तरह दुखते हैं। मैंने उन्हें उपर्युक्त कारण समझाया और साबुन तथा गर्म पानी से सिर धोने की प्रवृत्ति बन्द करवा दी। थोड़े दिनों में पीड़ा दूर हो गई। ३५ वर्ष की अल्पायु में वैज्ञानिक शुश्रूषा के अभाव में उनके बाल असमय में ही रुई की पूनी के समान सफेद हो गये थे। इसलिए ठण्डे पानी से स्नान करें और ठण्डे पानी से ही सिर धोएँ। सिर धोने में (विशेषत: जाड़े की ऋतु में) साबुन का उपयोग न करें। जाड़े की ऋतु में कुनकुने पानी से सिर धोया करें।

(२) सिर को अच्छी तरह रगड़िए। तेल-मालिश कीजिए। जाड़े के मौसम में सरसों के तेल से और ग्रीष्म ऋतु में तिल के तेल से मालिश करें। आयुर्वेद के प्रसादरूप नारायण तेल का बारहों महीने उपयोग किया जा सकता है। धीमे हाथों से बालों की मालिश करें।

(३) मालिश करने के बाद तेलवाले हाथों से बालों की खींचातानी करें। बालों को धीमे हाथों से मसलकर व्यायाम दें। तेलवाले हाथों से बालों को खींचा-तानी की कसरत देने से आप ऊबेंगे नहीं। इस प्रकार बालों के मूल को व्यायाम मिलने से अंजन का तेल अधिक मात्रा में निकलेगा, बाल घने होंगे और उनका झड़ना बंद हो जाएगा।

(४) मालिश करने के वाद धीमे हाथों से सिर के बालों को ठोकिए, थपथपाइए। ऐसा करने से बाल की जड़ों को आवश्यक व्यायाम मिल जाता है और बाल की जड़ों के छिद्र खुल जाने से प्राकृतिक तेल का अंजन ठीक से होता है। रुधिराभिसरण को गति मिलने से सिर के बालों की जड़ों के समीपवर्ती सूक्ष्म अवयवों को पर्याप्त रक्त-प्रवाह प्राप्त हो जाता है और उन्हें रोग-प्रतिरोधक शक्ति प्राप्त होती है। अंजन का आवश्यक खुराक मिलते रहने से बाल घने और काले रहते हैं। इस प्रकार बाल मुलायम, सुन्दर और घने रहने से चेहरा चमक उठता है।

(५) गर्मी या ठण्डी में सिर खुला रखकर वाहर न घूमें।

(६) शीर्षासन और सर्वांगासन जैसे आसन नियमित रूप से करने से सिर के बाल और अवयवों को चमत्कारिक लाभ होता है। इन आसनों से रक्ताभिसरण की क्रिया में त्वरित गति आती है और बालों को तथा उनके स्नायुओं को पोषण मिलता है। इन आसनों को करने से सफेद बाल काले हो गये हों, ऐसे कई उदाहरण देखने में आये हैं। यद्यपि अधिक उम्र के कारण जो बाल प्राकृतिक रूप में सफेद हो गये

हों उन्हें काला करने की कोई दवा या इलाज आज तक इस संसार में खोजे नहीं जा सके हैं। युवावस्था में उपर्युक्त दोनों आसन नियमित रूप से किये जायँ तो बालों को भरपूर पोषण और स्वास्थ्य प्राप्त होता है। बड़ी उम्र में भी बाल काले रहते हैं और जीवनभर माथे पर चाँद नहीं पड़ती। नवयुवकों को चाहिए कि वे ये आसन करें और सदाबहार जवानी का उपभोग करें।

संसार की विविध वस्तुओं या सिद्धियों को प्राप्त करने से ही हम पूर्णतः सुखी-स्वस्थ हो जाएँगे, इस प्रकार की आशा या भ्रान्ति ही सब प्रकार की व्याधियों की जननी है और वही पुनः हमें बन्धन में डालती है। फलस्वरूप विविध प्रकार की ऐसी पीड़ाएँ उत्पन्न होती हैं जिनसे हमें बार-बार काँटे चुभने-सा अनुभव होता है।

३२. तोतलापन : एक लघुताग्रन्थि

तोतलापन कोई रोग नहीं है। वैद्यकीय दृष्टि से परीक्षण करने पर स्वर-ग्रन्थियों और जीभ में कोई खामी मालूम नहीं होती। तुतलाना या हकलाना एक मानसिक दोष या त्रुटि है। अभिभावकों या माता-पिता की अज्ञानता के कारण बच्चे तोतलेपन का शिकार हो जाते हैं। यदि योग्य प्रयत्न किये जायँ तो यह दोष या त्रुटि दूर की जा सकती है।

बालक शीघ्रता या जल्दबाजी में बोलने का उपक्रम करता है तब उससे 'तत्......तत्......त' होने लगता है। यदि वह शान्ति से स्पष्ट शब्दों में बोलने का प्रयत्न करे तो यह दोष या त्रुटि धीरे-धीरे सुधर सकती है। इसलिए अभिभावक विशेष ध्यान रखें कि बच्चे सोच-समझकर स्पष्ट उच्चारण करने को प्रेरित हों। बालक अपने कथन में स्पष्ट हो और उसके बाद वह धीरे-धीरे उच्चारण की ओर ध्यान देते हुए निश्चित शब्दोच्चार करे, इसके लिए माता-पिता सतर्क रहें। बच्चों में कोई भी काम जल्दबाजी या उतावली के साथ कर डालने की कुदरती वृत्ति होती है, क्योंकि वे जल्द से जल्द बड़े हो जाना चाहते हैं और दुनिया के बारे में बहुत कुछ जान लेना चाहते हैं। अपने से बड़े बालकों के साथ रहकर छोटे बच्चे उन्हीं की तरह शीघ्रता से बोलने का प्रयत्न करते हैं; तब ऐसे दोष और त्रुटि उत्पन्न होते हैं। अत: अभिभावक बच्चे को धीरे से स्पष्ट शब्दों में बोलना सिखाए। बच्चे के स्वभाव में कोई लघुताग्रन्थि न आ जाय इसके लिए उनमें यह भावना जगानी चाहिए कि "तुम तो बहुत होशियार हो, दूसरों की अपेक्षा तुम बहुत अच्छा बोलते हो, सभी बच्चों से तुम ज्यादा चतुर हो' .... स्कूल में भी पढ़ाई-लिखाई के मामले में वह बहुत होशियार है ....उसे सबकुछ आता है .... कपड़े अच्छी तरह पहनना आता

है। अरे! अब तो उसे चित्र बनाना भी आ गया है !" इन शब्दों से उसमें लघुताग्रन्थि या भीरुता उत्पन्न नहीं होगी और उसका आत्मविश्वास बढ़ेगा ।

बच्चों के कानों में भूत–प्रेत की बातें कदापि न पड़ने पाएँ इसका भी अभिभावकों को खास ध्यान रखना चाहिए । यदि इस प्रकार की बातें बच्चे तक पहुँची हों तो उन्हें निकाल देनी चाहिए । "गन्दे, मैले और आवारा लड़के को भूत कहते हैं ।" ऐसा कहकर उसके मन से भूत–प्रेत का डर निकाल डालें ताकि उसमें भीरुता, लघुताग्रन्थि और पलायनवृत्ति न आने पाए । डर निकाल देने से बालक मस्त, जोशीला और रोबीला बनेगा । ऐसे बालकों में कभी तोतलापन नहीं आता । उसकी भाषा रौबदार और प्रभावशाली बन पाएगी ।

यदि माता–पिता इतनी सावधानी न रख सकें तो जाने–अनजाने बालक डरपोक बन जाता है, उसे भूत-प्रेत से भी डर लगता है । वह अंधेरे में अकेला नहीं रह सकता । कुत्ते-बिल्लियों से भी वह डरता है । घर में उसका कोई प्रभाव नहीं रह जाता । घर के सभी बच्चे उसका तिरस्कार करते हैं । इससे बालक निर्माल्य और उदासीन रहता है । घर के बाहर बड़े लड़के उसे डराते–धमकाते हैं, जिससे वह हमेशा घबराहट का अनुभव करता रहता है । घबराहट ही घबराहट में उसकी घिग्घी बँध जाती है, वह खुल कर साफ-साफ कुछ बोल नहीं पाता और इस प्रकार वह जीवनभर के लिए लघुताग्रंथि (Inferiority complex) का शिकार हो जाता है । तुतलानेवाला बालक हमेशा सबसे डरता रहता है । निरन्तर डर का मारा वह बाहर जाता है । दिन ढलते ही वह भूतप्रेत व अँधेरे से डरने लगता है । ऐसे बालक

प्रायः रुआँसे चेहरेवाले होते हैं। बाहर किसी के साथ बोलते समय घबराहट में वे 'तत्. . . .तत्. . . .त' करने लगते हैं। बोलते–बोलते उसके दिल की धड़कनें बढ़ जाती हैं। इन सब कारणों से उसमें मान्-सिक कमज़ोरी आ जाती है। अन्त में तुतलाने की क्रिया स्थायी बन जाती है और बड़ी उम्र तक वह यथावत् बनी रहती है।

इलाज (बड़ी उम्रवालों के लिए) :

तोतलेपन को दूर करना बिल्कुल आसान है। आप जिस ढंग से बालक को समझाते हैं, उसी ढंग से आप अपने मन को समझाएँ। केवल आपको अपना दृष्टिकोण बदलना है।

निम्नलिखित प्रयोग क़रने से आपकी मानसिक त्रुटि और दोष दूर हो सकेंगे ––

(१) आपको अपने मन में यह विचार दृढ़ करना है कि आप सबसे अधिक सज्जन और चारित्र्यवान् हैं। आपके आसपास के अधिकांश लोग बहुत लोभी, कंजूस, झगड़ालू, व्यसनी, जुआड़ी, दिन-रात पैसे के पीछे दौड़नेवाले और रोगिष्ठ मनवाले हैं, जबकि आप में इस प्रकार का कोई दुर्गुण नहीं है। आप सबको सत्य, धर्म और भगवान के प्रति उन्मुख करते हैं, ऐसा अपने मन में ठसाने का प्रयत्न करें।

(२) मन में इस प्रकार की ग्रन्थि बना लें कि इस दुनिया के अधिकांश लोग मूर्ख हैं। सुबह से शाम तक गधे की तरह मजदूरी करनेवाले हैं। प्रतिदिन खाने के लिए केवल सेरभर अनाज चाहिए और वह भगवान् ने पर्याप्त मात्रा में दिया है, फिर भी इन मूर्ख लोगों को संतोष नहीं है। वे धन-संग्रह करने में ही डूबे रहते हैं। अन्त में सारी कमाई यहीं छोड़कर, कोई भी अच्छा काम किये बिना वे मर कर नरक में जाते हैं।

(३) अपने मन में तीसरी गाँठ यह बाँध लीजिए कि इस दुनिया के ज्यादातर लोग भौतिक सुखों को प्राप्त करने के लिए दिन-रात दौड़-धूप, चोरी, लूट-मार और हत्याएँ करने और जेब काटने में गौरव लेते हैं। इस प्रकार लोगों के प्रति अपने हृदय में तिरस्कार और घृणा उत्पन्न होने दीजिए।

ऐसा करने के बाद आप अपने मन के साथ चर्चा कीजिए कि ऐसे लोगों की अपेक्षा आप कितने अच्छे, सच्चे और सज्जन हैं, भगवान में श्रद्धा रखनेवाले और शान्तिपूर्वक प्रभु-भक्ति करनेवाले हैं।

इस प्रकार की मानसिक तैयारी करने के बाद निम्नलिखित प्रवृत्ति करें —

(१) आपकी मनोवृत्ति का समर्थन करनेवाली आध्यात्मिक तथा प्रेरणाप्रद पुस्तकें पुस्तकालय से लाकर जोर-जोर से पढ़िए।

(२) अपने घर में ही व्यासपीठ बनाइये और ऊँचे आसन पर बैठकर कथावाचक की तरह जोर से पढ़ना शुरू करें।

(३) आप स्वयं ही एक महान आध्यात्मिक संत हैं ऐसा मन में दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके कथावाचन करें। इस परीक्षण-सभा में कोई सुननेवाला प्रेक्षक नहीं होना चाहिए। पाँच सौ लोग सुन सकें इतने जोर से बिना रुके कथा-पाठ करते रहें। निरंतर धाराप्रवाह कथा चल रही है और उसमें विक्षेप न पड़ने पाए, ऐसा पक्का विचार मन में रखकर सतत कथावाचन करें। धीरे-धीरे पढ़ें। एक-एक शब्द चुन-चुनकर और तौल-तौल कर बोलें। आपके उच्चारण स्पष्ट होने चाहिए। लेख तैयार है। आपको तो सिर्फ एक कथाकार की स्थिर शैली से पढ़ना है और लोगों को धर्म-मार्ग की ओर उन्मुख करने के लिए उपदेश देना है।

घर में आपके इस नाटक का जैसे-जैसे पुनरावर्तन होता जायेगा त्यों-त्यों आप में छटा आती जाएगी और उच्चारण स्पष्ट एव शुद्ध होते जाएँगे।

(४) सुबह-शाम प्रार्थना करने का नियम रखें । घण्टी बजाते-बजाते शीघ्रतापूर्वक जोर-जोर से आरती का गान करें ।

(५) जोर-जोर से संस्कृत के श्लोकों का पारायण करें । श्लोकों को कण्ठस्थ करें । कण्ठस्थ किये हुए श्लोकों को बोलते समय जीभ अटकेगी नहीं । अतः घर में आते या घर से वाहर जाते समय श्लोकों का मुखपाठ शीघ्रता से करते रहें ।

(६) बच्चों के साथ खुलकर बातें करने से जीभ नहीं अटकती । इसलिए बच्चों को एकत्रित करके उन्हें कहानियाँ सुनाने की योजना बनाएँ । कहानी सुननेवालों में किसी बुजुर्ग की उपस्थिति न होनी चाहिए । लगातार धाराप्रवाह बिना रुके कहानी कहिए । नई-नई कहानियाँ सुनाएँ । महाभारत की कथाएँ बच्चों को विस्तारपूर्वक सुनाइए ।

(७) ऐसा प्रयोग करने के बाद आपके हृदय में आत्मविश्वास उत्पन्न होगा और थोड़े ही समय में आप स्वयं यह मानने लगेंगे कि तुतलाना कोई रोग नहीं है, केवल एक मानसिक खामी ही है ।

ऐसा ज्ञान होते ही आप सबके साथ निःसंकोच, धीरे-धीरे सावधानीपूर्वक बिना रुके बोलने लगेंगे । मन में सभी को बालक के समान ही समझें और सीख देते-देते वार्तालाप का क्रम चालू रखें ।

(८) अपने घर में या छत पर इस ढँग से बोलने की शुरूआत कीजिए, जैसे आप अपने मित्र को चुनाव में विजयी बनाने के लिए भाषण कर रहें हैं । भाषण पहले से लिखकर तैयार रखिए । फिर उसे दो-चार बार शीघ्रता से उतार-चढ़ाव के हावभाव के साथ पढ़ जाइये । इसके बाद उसे कण्ठस्थ करके, चीख-चीख कर बोलने का प्रयत्न कीजिए । भाषण करते समय जो विचार मन में आते जायँ उन सभी को भाषण में जोड़ते जाइये । ऐसा करते रहेंगे तो थोड़े दिनों में ही

आप अपनी जबान पर काबू पा सकेंगे, अपने दिमाग से लघुताग्रंथि दूर कर सकेंगे और अन्त में तोतलेपन पर विजय प्राप्त कर सकेंगे।

मैं जब दस-बारह वर्ष का था, उस समय मेरी जीभ अटका करती थी। मैं तुतलाहट की विकृति का शिकार हो गया था। कक्षा में शिक्षक से बातें करते समय या बाजार में खरीदी करते समय जीभ अटकने लगती थी। सब्जी-विक्रेता से 'करेले क्या भाव दोगे ?' इतना पूछने में खूब समय लग जाता और इतना बोलने में जीभ कई बार रुक जाती। इस तुतलाहट को दूर करने का श्रेय मेरे वर्ग-शिक्षक श्री वालजीभाई (सर्व विद्यालय, कड़ी, गुजरात) को है। मेरे इस विश्वास को दूर करने के लिए वे मेरे घर आते और उपर्युक्त प्रयोग करने की प्रेरणा देते। श्री वालजीभाई की सलाह के अनुसार मैं अपने घर की छत पर जाकर जोर-जोर से कथा-वार्ता कहता, संस्कृत के श्लोक गाता, भाषण देता,'करेले क्या भाव दोगे ?' इस प्रकार के प्रश्न जीभ को रोके बगैर पूछता। इस प्रकार लगातार अभ्यास करते रहने से और जीभ पर नियंत्रण प्राप्त करने से मेरा तोतलापन हमेशा के लिए चला गया।

ऐसे प्रयोग अनेक व्यक्तियों पर आजमाकर देखा हैं और उनकी खामी दूर की है। इन प्रयोगों के द्वारा बच्चों में आई विकृति को शीघ्र ही रोका जा सकता है।

मृत्यु का निवारण असंभव है। हम केवल मृत्यु को सुधारने के ही प्रयत्न करें। मृत्यु के आने के पहले ही मर जायँ ! मृत्यु ही मानव की अन्तिम परीक्षा है। मरने के पहले हम शत्रुता और वासना को नष्ट कर दें। मानव को काल से डर लगता है, किन्तु काल के भी काल परमात्मा से प्रेम करने से काल का यह भय दूर हो जाता है। सच्चे स्वरूपजीवी लोग जीवन और मृत्यु दोनों को समान मानते हैं, अपनी मृत्यु में नई पीढ़ी को अधिक शक्तिशाली बनते देखते हैं।

३३. हास्य और स्वास्थ्य

इस समय जापान में एक सौ से अधिक वर्ष की उम्रवाले एक हजार से भी अधिक नागरिक हैं। इनमें सबसे अधिक उम्र के एक वयोवृद्ध विधुर की आयु ११५ वर्ष की है। किसी समाचार-पत्र के प्रतिनिधि ने उनसे पूछा: 'मेरे बुजुर्ग, आप एक सौ पन्द्रह वर्ष की आयु में भी सदाबहार दिख रहे हैं...... आपके इस सुदीर्घ और स्वस्थ जीवन के पीछे आखिर रहस्य क्या है ?" एक सौ पन्द्रह वर्ष के उस चिर युवा ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा, हास्य......किसी छोटी नगण्य-सी बात पर दुःखी होने के स्थान पर मैं कहकहे लगाकर हँस पड़ता हूँ।

'छोटी नगण्य-सी बात यानी...... कृपया एकाध उदाहरण देकर समझाइयेगा ?' उस पत्रकार ने जिज्ञासा प्रकट की।

'जैसे······· देखिए न, मेरी बीबी जिस दिन मर गई, उस दिन रोने के बदले मैं हँस पड़ा था; अलबत्त मेरे दिल में....' बुजुर्ग ने उत्तर दिया, सो भी हँसते हुए।

संसार में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो हँस सकता है। किसी ने मनुष्य की परिभाषा ही इस प्रकार दी है : 'Man is a laughing animal......' निस्सन्देह ईश्वर ने मनुष्य को हँसने की यह एक विलक्षण शक्ति प्रदान की है। गंभीर से गंभीर प्रकृति का व्यक्ति भी जीवन में कभी दिल खोलकर न हँसा हो-यह बात शायद ही संभव हो।

हास्यवृत्ति ईश्वर-प्रदत्त एक अलौकिक वरदान है। किसी ने तो यहाँ तक खोज की है कि 'Sense of humour' अर्थात् हास्यवृत्ति केवल मनुष्यों में ही नहीं किन्तु हाथी में भी होती है। इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त उल्लेखनीय है। एक छोटी बालिका अपने गाँव में आये

हुए सरकस के जानवरों को देखने के लिए गई थी। जानवरों को खिलाने के लिए वह अपने साथ कुछ फल भी ले गई थी; किन्तु सरकस के हाथियों के पास जाने पर वह इतनी भयभीत हो गई कि उन्हें फल न दे सकी। सरकस के प्रवन्धक ने फलों की टोकरी अपने हाथों में ले ली और उसमें रखी हुई नारंगियाँ वह एक के बाद एक उन हाथियों को देने लगा। उसने छह हाथियों में छह नारंगियाँ वितरित कर दीं। टोकरी में कुछेक नारंगियाँ और भी थीं। यदि प्रवन्धक छठे हाथी से नारंगियाँ बाँटना फिर प्रारम्भ करे तो अन्य हाथियों को यह भी लग सकता था कि उस हाथी को दो नारंगियां दे दी गईं। उनकी ईर्ष्या से बचने के लिए प्रबन्धक फिर उस पहले नम्बरवाले हाथी के पास पहुँचा और वहीं से फिर नारंगियाँ बाँटनी शुरू कीं। नारंगियों का यह दूसरा दौर पूरा करने के बाद भी टोकरी में एक नारंगी बच गई। प्रबन्धक महोदय ने उस नारंगी को हाथ में लेकर ऊपर उठाया और हाथियों को बताया; फिर उसे छीलकर उसकी एक फाँक निकालकर वे स्वयं ही खाने लगे। यह देखकर वे सब हाथी बहुत प्रसन्न हुए। वे सब के सब आपस में कन्धे मिलाकर झूमने लगे। इसका एक अर्थ ऐसा भी लिया जा सकता है कि हाथी के खाने और दिखाने के दो भिन्न-भिन्न प्रकार के दाँत होने के बावजूद वह हँसने के लिए किसी भी प्रकार के दाँतों का उपयोग नहीं करता। हाथी या अन्य किसी भी जानवर के चेहरे से आप पहली नजर में उसके हर्ष या विषाद का अनुमान नहीं लगा सकते। जब कि मनुष्य की इन स्वाभाविक चेष्टाओं को हम तुरंत परख लेते हैं। या उसका अनुमान लगा सकते हैं। रस-मीमांसकों ने एक रस के रूप में हास्य का भी स्वीकार किया है और 'हास' को उसका स्थायी भाव माना है। फिर भी हास्य के स्वरूप, प्रयोजन, हार्द इत्यादि मनोव्यापारों का विश्लेषण करके उन्हें स्पष्ट करना बड़ा दुष्कर कार्य है।

आरोग्यशास्त्र की दृष्टि से रोने की अपेक्षा हँसने के लाभ अधिक बताए गये है। अभी-अभी एक अमरीकी मानस-चिकित्सक द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार हास्य को आरोग्य के लिए सर्वोत्तम व्यायाम बताया गया है। उसके अनुसार हँसने से सरदर्द और रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) जैसे अनेक रोगों से व्यक्ति को मुक्ति प्राप्त हो जाती है। एक लेखक ने अपने विवेचन-ग्रंथ में आयुर्वेदिक दृष्टि से हास्य के विविध लाभों का निरूपण करते हुए लिखा है: 'हँसने से आदमी के फेफड़े मजबूत होते हैं, श्वसन-क्रिया सुधरती है। हास्य के कारण हवा काफी जोर के साथ उदरपटल से टकराती है और फिर निकल जाती है। इससे दीर्घ श्वसन होता है, धड़कनें भी बढ़ती है। फलस्वरूप हृदय अधिक सक्रिय हो उठता है। व्यायाम के अभाव के कारण मंद पड़ी हुई यकृत की प्रवृत्तियों में गति आ जाती है। स्वादुपिण्ड अर्थात् पेंक्रियास-ग्रन्थि औसत रूप और आकार धारण कर लेती है। हास्य से पाचनक्रिया में भी सुधार होता है। ठहाका मारकर हँसने से गर्दन इधर-उधर हिलती-डुलती है, इससे गले और कन्धों के स्नायु मजबूत होते हैं। साथ ही कण्ठ की समीपवर्ती ग्रंथि में होनेवाले आयोडिन तत्त्व का स्राव बढ़ता है। हास्य से जठर में सुधार होता है और आँतों की प्रवृत्ति नियमित होती है।'— एक हास्य-लेखक के लेख से प्रस्तुत पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए हम यह मानकर चलते हैं कि लेखक का आशय उक्त पंक्तियों द्वारा पाठक को हँसाने मात्र का तो कदापि न होगा।

ऐसा भी एक विद्वान का मत है कि हास्य उर्मि-आवेग का विरेचन करके मनुष्य को स्वस्थ और संतुलित बनाता है। काका कालेलकरजी ने भी कहीं लिखा है कि प्रत्येक मनुष्य को अपना दैनिक समय-पत्रक बनाकर उसमें प्रतिदिन एक घण्टा हँसने के लिए भी रखना चाहिए। मुक्त हृदय से हास्य के द्वारा मनुष्य स्वस्थ जीवन जीने में

समर्थ होता है। एक अंग्रेज लेखक थेकरे ने तो बड़ी खीझ के साथ कहा है – People who do not know how to laugh are always pompous and conceited (जो लोग यह नहीं जानते कि कैसे हँसा जाता है, वे आडम्बरी और मिथ्याभिमानी होते हैं।) हास्य केवल जीवन जीने की जड़ी-बूटी ही नहीं है, वरन् जीवन-संग्राम में संघर्ष करने और विजय प्राप्त करने का अमोघ शस्त्र है।

किसी ने गांधीजी से पूछा था कि क्या आप मानते हैं कि विनोद-वृत्ति जीवन का एक अनिवार्य अंग है ? उत्तर में गांधीजी ने स्पष्टत: कहा था कि, "यदि मुझमें विनोदवृत्ति न होती तो मैंने कभी की आत्म-हत्या कर ली होती।"

इसी प्रकार यदि सुकरात (Socrates) में विनोदवृत्ति न होती तो वह अपनी कर्कशा पत्नी झेन्थीपी के साथ रहकर शायद ही जी पाता। सुकरात के हृदय में स्थित हास्यवृत्ति ने ही उसे जीने का बल दिया था। एक बार किसी ने सुकरात से प्रश्न किया : 'आप झगड़ालू और वाचाल स्त्री को बरदाश्त क्यों करते हैं ?' मुस्कराते हुए सुकरात ने उत्तर दिया : 'मेरे भाई, मैं उसे अपनी पूरी समझदारी के साथ लाया हूँ। यही नहीं किन्तु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि मैं अपनी विवाहिता की अच्छी तरह हिफाज़त भी करता हूँ। आपको यह तो मालूम ही होगा कि घोड़ों को प्रशिक्षित करने का व्यवसाय करनेवाले व्यक्ति को स्वयं के लिए तो सबसे अधिक तूफानी घोड़ा रखना पड़ता है, ताकि अन्य घोड़ों को आसानी से काबू में रखा जा सके। मेरा व्यवसाय वादविवाद का है। यही कारण है कि मैंने घर में सबसे ज्यादा वाचाल स्त्री रखी है। यदि मैं धैर्यपूर्वक उसे वाद-विवाद में जीत लूँ तो एथेन्स के शेष लोगों को जीतना मेरे लिए बाएँ हाथ का खेल हो जाता है।"

ऐसा माना जाता है कि अपनी कर्कशा पत्नी के कारण ही सुकरात सदा मुस्कराते रहे और दार्शनिक बन सके थे।

हास्य एक प्रकार का सेफ्टीवाल्व है जिसके माध्यम से आदमी का मानसिक तनाव भाप बनकर उड़ जाता है। आपने अनुभव किया होगा कि दुनिया को हँसानेवाले और स्वयं हँसते रहनेवाले लोग औसत मनुष्य की अपेक्षा अधिक लम्बी आयु प्राप्त करते है। चार्ली चेप्लीन, बर्नाड शॉ, जेरोम के जेरोम, मार्क ट्वेन, जी. पी. श्रीवास्तव, बेढब बनारसी. . . . .

मुझे लगता है कि हास्यकारों के सिर पर भी कोई शाप की छाया मँडराती होगी। संसार को खुलकर हँसानेवाले लेखक मार्क ट्वेन का अपना व्यक्तिगत जीवन अनेक दुःखों और विषमताओं की कहानी है। छोटी अवस्था में ही उन्होंने अपनी आँखों के सामने अपने प्यारे भाई-बहन को दम तोड़ते हुए देखा था। जब वे तेईस वर्ष के हुए, उस समय भी उनके एक प्रिय भाई की मृत्यु हो गई। इन तमाम भयंकर आघात-प्रत्याघातों से गुजरने के कारण ही छोटी अवस्था में उनके सिर के सारे बाल सफेद हो गये थे। मरने के केवल एक वर्ष पूर्व अपनी अतिशय लाड़ली बेटी को भी उन्होंने मरते हुए देखा था। जिंदगीभर परिश्रम करते हुए और असफलताओं को झेलते हुए भी मार्क ट्वेन जीवन की इन सारी विषमताओं पर मरते दम तक हँसते रहे और लोगों को हँसाते रहे।

स्वयं अपने ऊपर हँस सकनेवाला मनुष्य अपनी आयु निश्चय ही बढ़ा सकता है। सचमुच हास्य समुद्र-मंथन से प्राप्त पंद्रहवाँ रत्न है।

आजकल यूरोप में ऐसे कई उदाहरण देखे गये हैं जिनमें हास्य को एक प्रयोग के रूप में थेरपी मानकर उपयोग में लिया जाता है। एक व्यक्ति असाध्य रोगों से पीड़ित था । उस व्यक्ति के जीवन के प्रति सभी डॉक्टर हताश हो चुके थे । वह व्यक्ति हास्यरस की पुस्तकें खरीद लाया । वह इन पुस्तकों को पढ़ने और पढ़कर निरंतर हँसने में अपना समय बिताने लगा । कहते हैं आज भी वह पर्याप्त स्वस्थ जीवन जी रहा है । उसके वजन में कुछ वृद्धि हुई है । अस्तु ।

जिंदगी के बोझ को, हँसकर उठाना चाहिए ।
राह की दुश्वारियों पर, मुस्कराना चाहिए ।।